तीर्थंकर पार्श्वनाथ भक्ति-गंगा

संकलन-सम्पादन व अनुवाद

डॉ० प्रेमसागर जैन,

एम० ए०-हिन्दी, एम० ए०-संस्कृत, पी-एच० डी०
साहित्य शास्त्री, सिद्धान्त शास्त्री, साहित्य रत्न
अध्यक्ष : हिन्दी विभाग (स्नातकोत्तर)
दि० जैन कालिज, बड़ौत (मेरठ)

भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली
संशोधित मूल्य
Rs. 10/-
New Delhi

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला : हिन्दी ग्रन्थांक–१३
ग्रन्थमाला सम्पादक :
डॉ० आ० ने० उपाध्ये, डॉ० हीरालाल जैन, श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन

TIRTHANKARA
PARSVANATHA BHAKTI GANGA
Dr. Premsagar Jain
Bharatiya Jnanpith Publication
First Edition 1969
Price Rs. 5/-

©

भारतीय ज्ञानपीठ

प्रधान कार्यालय
९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता–२७

प्रकाशन कार्यालय
दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी–५

विक्रय कार्यालय
३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली–६

प्रथम संस्करण १९६९

मूल्य पाँच रुपये

मुद्रक–सन्मति मुद्रणालय, वाराणसी–५

अन्तरङ्ग

'विभुर्वृषभसेनाय गीत-वाद्यार्थसंग्रहम् ।
गन्धर्वशास्त्रमाचख्यौ यत्राध्यायः परःशतम् ॥
[आचार्य श्री जिनसेन, आदिपुराण १६।१२०]

—तीर्थंकर श्री वृषभदेवने वृषभसेनको गीत, वाद्य तथा अर्थ संग्रहरूप गान्धर्व विद्याका उपदेश दिया, जिसमें सौ से ऊपर अध्याय (प्रकरण) हैं।

श्रमण संस्कृति युगादिसे भारतकी ऊर्जस्वित् प्राणधारा रही है। यहाँ दिशाओंके श्रोत्र मन्दिरोंके घण्टा-घड़ियालोंसे शब्दायमान हैं और पवनमें गन्धोदककी सुरलोक-दुर्लभ सुरभि आवासित है। अनादि-अतीतकी इस पुण्यपरम्परापर दृष्टिपात करनेसे प्रतीत होता है कि हमारे तीर्थक्षेत्र उतने ही नहीं हैं जितने ज्ञात हैं, अपितु इस भूमिका प्रत्येक रजःकण रत्नत्रयपुरुषोत्तमोंके संचारसे तीर्थभूत है। उनके पवित्र यशःगुणोंका परम भक्तिपूर्वक विशुद्ध संगीतनादके द्वारा गान करनेसे आत्मशान्ति मिलती है, पवित्रताकी संवृद्धि होती है। भावरोगों तथा दुरितोंका क्षय होता है। कर्मनिर्जराके अधिकारी वीतराग परमेश्वरकी स्तुतिके वे सहज परिणाम हैं। वर्तमानकालमें, प्रातः समय आकाशवाणीसे, वन्दना कार्यक्रममें, मंगल प्रभातियोंके, संगीत-विभाग द्वारा प्रसारणसे जनताके पवित्र भव्य मनोबलको आप्यायित किया जाता है। ये सु-पद उसी शृंखलामें अपना योगदान करनेमें क्षमताशील सिद्ध होंगे, ऐसा निर्भ्रान्त विश्वास सहेज कर यह मेघ्य भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित किया जा रहा है। किसी पूर्वानुमतिके बिना, इन मंगल छन्दोंका सार्वजनीन सदुपयोग किया जा सकता है। धर्मानुरागी श्री डॉ० प्रेमसागर जैन द्वारा पवित्र वर्णवर्तिकासे 'तीर्थंकर पार्श्वनाथ भक्ति-गंगा'का संकलन अनुवाद व सम्पादन विद्वत्तापूर्ण किया गया है। आकाशवाणी, विश्वविद्यालय एवं पुस्तकालय-जैसे शिक्षा सम्प्रदायके सभी अंग हमारे उत्साह-संवर्धनमें सहयोगी होंगे, ऐसा विश्वास है।

—*विद्यानन्दमुनि*
बड़ौत

तीर्थंकर पार्श्वनाथ

स सत्य-विद्या-तपसां प्रणायकः, समग्रधीरुग्रकुलाम्बरांशुमान्।
मया सदा पार्श्वजिनः प्रणम्यते, विलीनमिथ्यापथ-दृष्टि-विभ्रमः॥

—आचार्य समन्तभद्रः स्वयम्भूस्तोत्र,

जैनोंके चौबीस तीर्थंकरोंमें पार्श्वनाथ तेईसवें थे। उनका जन्म वाराणसीके उग्रवंशमें हुआ था। बृहदारण्यक उपनिषद्में गार्गी और याज्ञवल्क्यका संवाद दिया हुआ है। उसके एक अंशमें गार्गी ने 'काश्यो वा वैदेहो वा उग्रपुत्रः' कह कर, काशी और विदेहवासियोंको उग्रपुत्र कहा है। बौद्ध जातकोंमें वाराणसीके महाराज ब्रह्मदत्तके पूर्वज उग्गसेन, धनंजय, महासीलव, संयम, विस्ससेन और उदयभद्द बताये गये हैं। हो सकता है कि उग्गसेनके नामपर उग्रवंश चल पड़ा हो। वैसे ये सब इक्ष्वाकुवंशी थे। आवश्यक-चूर्णिके अनुसार, बालऋषभदेवका इक्षुके प्रति आकर्षण देख कर, शक्रेन्द्रने उनके वंशको इक्ष्वाकु नाम दिया था। ऋषभदेवसे ही सभी वंशोंका प्रचलन हुआ। अतः पार्श्वनाथको इक्ष्वाकुवंशी कहो या उग्रवंशी एक ही बात है। उनका गोत्र काश्यप था।

पार्श्वनाथके पिताका नाम विश्वसेन था, ऐसा जैन साहित्यसे सिद्ध है। गुण-भद्राचार्यने उत्तरपुराणमें "वाराणस्यामभूद्विश्वसेनः काश्यपगोत्रजः। ब्राह्मयस्य देवी संप्राप्तवसुधारादिपूजना॥" और वादिराजसूरिने 'श्री पार्श्वनाथ चरित्र'में "भाविनीं भुवनभर्तुर्मातरं मर्त्यलोकतिलकायताकृतिम्। भक्तिबन्धुरमुपाध्वमन्वहं विश्वसेननृपतेर्मनः-प्रियाम्॥" लिखा है। अतः 'जैन साहित्यका इतिहास : पूर्व पीठिका'का यह कथन "जैन साहित्य में पार्श्वनाथ के पिताका नाम अश्वसेन या अस्ससेण बतलाया है। गत शताब्दीमें रची गयी 'पार्श्वनाथपूजन'में पार्श्वनाथके पिताका नाम विस्ससेन दिया है, यथा—'तहां विस्ससेन नरेन्द्र उदार'। हम नहीं कह सकते कि कविके इस उल्लेखका क्या आधार है[1]।" ठीक प्रतीत नहीं होता। जातकों और पुराणोंमें भी 'विस्ससेण' ही मिलता है, अस्ससेण नहीं। पूजन-कर्त्ताका आधार, 'जैन आधार' है, जातक या पुराण नहीं

पार्श्वनाथकी माताका नाम वामादेवी प्रसिद्ध है। 'तिलोयपण्णत्ति'में 'बम्भादेई' दिया हुआ है। यह प्राकृतभाषाका ग्रन्थ है। इसीको उत्तरपुराणमें 'ब्राह्मी' और पार्श्व-नाथचरित्रमें 'ब्रह्मदत्ता' कहा गया है। उस का हिन्दी रूपान्तर वामादेवी ठीक ही है।

---

१. जैन साहित्यका इतिहास : पूर्व पीठिका, पं० कैलाशचन्द्र जैन शास्त्री, वर्णीग्रन्थमाला, वाराणसी, पृष्ठ ११६-१६।

कवि भूधरदास ने अपने 'पार्श्वपुराण'में 'वामा देवी' ही लिखा है। वह अपने समयकी अनिन्द्यसुन्दरी तो थीं ही, निरवद्यवृत्ता भी थीं। वादिराजसूरिका यह कथन, "नैशमेव नयनाभिरामया बध्यते नवसुधारुचे रुचा। विद्ययेव निरवद्यवृत्तया चेतसं च सुदृशा जगत्तमः॥" जैसे उनके समूचे चित्रको उपस्थित ही कर देता है। भूधरदासने भी लिखा है कि "वामादेवीका रूप अनुपम था, जैसे मानो रूपजलधिकी वेलाने ही जन्म लिया हो। शील सम्पदाकी तो निधि ही थीं, सज्जनताकी अवधि थीं और सुबुद्धिकी सीमा थीं। वे महापुरुष रूपी मुक्ताको धारण करने वाली मुक्ता-सीप थीं[1]।"

एक दिन वामादेवीने रात्रिके अन्तिम प्रहरमें सोलह स्वप्न देखे। उनका फल था तीर्थंकरका जन्म। वह वैशाखकृष्ण द्वितीयाका दिन था, प्रातःका समय, विशाखा नक्षत्र, जब महारानीने आनत स्वर्गसे समागत—पार्श्वनाथके जीव आनतेन्द्रको अपनी पवित्र कूखमें धारण किया। अब वह प्राची दिशाकी भाँति कान्ति-युक्त हो सुशोभित हो उठीं। एक ओर देवांगनाएँ उनकी सेवामें रत हुई तो दूसरी ओर रत्नवर्षा भी होने लगी। मोद-भरे वे दिन, उल्लसित लहरोंकी भाँति एक के बाद एक, प्रवाहित होते रहे। नौ माह पूर्ण हुए और पौषकृष्ण एकादशीके दिन, अनिल योगमें पुत्रका जन्म हुआ। फिर, इन्द्रमहोत्सव, सुमेरुपर बालप्रभुका क्षीरसागरके १००८ कलशोंसे स्नपन, आनन्द नाटककी रचना, मंगल गान, नृत्य आदिकी पावन छटाके नाना चित्र जैन साहित्यमें उकेरे गये हैं। एक-से एक आगर और अनुपम। गर्भ और जन्मोत्सवका ऐसा हृदय-ग्राही वर्णन अन्य कहीं देखनेको नहीं मिलता। उस पावन सन्दर्भमें बालकका बालपन बीतने लगा।

पार्श्वनाथ सोलह वर्षके हो गये। उनके शरीरकी कान्ति धानके छोटे पौधेके समान हरे रंगकी थी। वे समस्त लक्षणोंसे सुशोभित थे। नौ हाथ ऊँचा उनका शरीर था। अब वे नवयौवन-सम्पन्न थे। उनके शरीरसे अनुपम तेज फूटता था। एक दिन, वे अपने साथियोंको लेकर वन-क्रीड़ाको गये। वहाँ एक वृद्ध साधु पंचाग्नि तप तप रहा था। अग्निमें डालनेके लिए उसने एक लकड़ी चीरनी चाही, तभी कुमार पार्श्वने उसे रोकते हुए कहा कि इसे मत चीरो, इसमें नाग-नागिनका एक जोड़ा बैठा हुआ है, किन्तु साधु न माना। कुल्हाड़ा चला ही दिया। क्षण-भरमें ही घायल, अन्तिम श्वांस भरते, वे दोनों सामने आ गिरे। पार्श्वनाथने उन्हें 'णमोकार मंत्र' सुनाया, जिससे वे शान्तभाव से मरकर भवनवासी देवोंमें धरणेन्द्र व पद्मावती हुए।

पार्श्वनाथ तीस वर्ष तक कुमार रहे, फिर उन्होंने पौष कृष्णा एकादशीके दिन, प्रातःकालके समय, तीन सौ राजाओंके साथ वीतरागी दीक्षा ले ली। चार माह तक छद्मस्थ अवस्था में विहार करते रहे, तदुपरान्त रामनगरके पास अहिक्षेत्रमें, देवदारु वृक्षके नीचे ध्यानस्थ होकर बैठे। वह शुक्लध्यानकी अवस्था थी। आकाश मार्गसे एक ज्योतिषी देव जा रहा था। वह पूर्वभवका वैरी था। उसने पार्श्वनाथको तप करते

---

१. देखिए पार्श्वपुराण, भूधरदास, जिनवाणी प्रचारक कार्यालय, कलकत्ता, पृष्ठ ४३।

देखकर भीषण गर्जना की। भिन्न-भिन्न व्युत्पात प्रारम्भ कर दिये। सात दिन तक उसके उपसर्गोंका प्रवाह चलता रहा। जब उसने पर्वतोंके टुकड़ोंको गिराना आरम्भ किया, धरणेन्द्र पद्मावतीके साथ आया और अपना फण उनके सिर पर तान दिया। यह देख कर उपद्रवी भाग गया। इस सम्बन्धमें स्वयम्भू स्तोत्रका एक भाव-पूर्ण श्लोक है—

बृहत्फणामण्डलमण्डपेन यं
स्फुरत्तडित्पिङ्गरुचोपसर्गिणम्।
जुगूह नागो धरणो धराधरं
विरागसंध्यातडिदम्बुदो यथा ॥ २ ॥

ध्यानावस्थामें पार्श्वनाथके दो प्रबल शत्रु थे—एक शम्बर नामका ज्योतिषी देव और दूसरा मोह। पहला बाह्य था और दूसरा आन्तरिक। पहलेका अवरोध सम्भव था, दूसरेका नहीं। दूसरा दुर्जय माना जाता है। पहलेका विघात धरणेन्द्र-पद्मावतीने किया और दूसरेका पार्श्वनाथने स्वयं अपने योगरूपी खड्गकी तीक्ष्णधार-से। दूसरा मुख्य है, पहला गौण। भिन्न प्रसंगमें दोनोंका महत्त्व है। पार्श्वनाथने केवल-ज्ञानकी प्राप्तिसे उस आर्हन्त्य पदको प्राप्त किया, जो अचिन्त्य है, अद्भुत है और त्रिलोक की पूजाके अतिशयका स्थान है।

स्वयोगनिस्त्रिंशनिशातधारया
निशात्य यो दुर्जयमोहविद्विषम्।
अवापदार्हन्त्यमचिन्त्यमद्भुतं
त्रिलोकपूजातिशयास्पदं पदम् ॥

आर्हन्त्य पद पाकर वे, सत्तर वर्ष तक भारतके भिन्न-भिन्न स्थानोंमें विहार करते रहे। काशी, कौशल, पांचाल, मरहटा, मारू, मगध, अवंती और अंग-बंग आदिका उल्लेख प्राचीन ग्रन्थोंमें आया है। उनके धर्मोपदेशसे जन-जन लाभान्वित हुआ। बिहार, बंगाल और आसामकी आदि जातियोंमें अब भी, किसी-न-किसी रूपमें पार्श्वपूजाका प्रचलन है। उनमें एक जाति मारंगकुरु (पहाड़का देवता) की पूजा करती है और पारसनाथकी पहाड़ीको ही मारंगकुरु[1] मानती है। बंगालमें आजिमगंज, देउलभीरा और कांटाबोनियाँ आदि स्थानोंपर पार्श्वनाथकी मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं, इससे विदित होता है कि वहाँ पार्श्व-पूजाका प्रचलन था। डॉ० जगदीशचन्द्रने 'भारतीय तत्त्वचिंतन'में लिखा है, "हजारी बाग जिलेमें अवस्थित पार्श्वनाथकी निर्वाणभूमि सम्मेदशिखर, मानभूम, सिंहभूम, वीरभूम और बाँकुड़ा आदि जिलोंसे घिरी हुई है, जिससे मालूम होता है कि यहाँकी रहने वाली अनार्य जातियाँ पार्श्वनाथके उपदेशोंसे प्रभावित हुई थीं। ये जातियाँ अब भी पार्श्वनाथकी उपासक

१. देखिए 'ए मुण्डाज एण्ड देअर कण्ट्री', पृष्ठ ४१-४२।

है[1]।" इन जातियोंमें पार्श्वनाथ मन्त्राधिष्ठातृ देवके रूपमें पूजे जाते हैं। हो सकता है कि इसी आधारपर पारसमणिकी कल्पना हुई हो।

जब पार्श्वनाथकी आयुमें एक माह शेष रह गया, तब वे विहार बन्द कर सम्मेदाचल (बिहार प्रान्त) के शिखरपर छत्तीस मुनियोंके साथ प्रतिमायोग धारण कर विराजमान हो गये। श्रावण शुक्ला सप्तमीके दिन, प्रातःकालके समय, विशाखा नक्षत्रमें, शुक्ल ध्यानके तीसरे तथा चौथे भेदोंका आश्रय ले कर, वे अनुक्रमसे तेरहवें तथा चौदहवें गुणस्थानमें स्थित रहे। फिर यथाक्रमसे, उस समयके योग्य कार्य कर, समस्त कर्मोंका क्षय हो जानेसे मोक्षमें अविचल विराजमान हो गये। तत्काल इन्द्रोंने आ कर, निर्वाण कल्याण मनाते हुए उनकी वन्दना की। आज सम्मेदाचल तीर्थस्थान है। केवल जैन ही नहीं, सभी भारतीय उसकी वन्दना कर अपनेको कृतकृत्य समझते हैं।

श्रद्धा और भक्तिवशात् जैनोंने पार्श्वनाथ हो क्या, किसी भी तीर्थंकरकी ऐतिहासिकता सिद्ध करनेका प्रयत्न नहीं किया। परिणाम हुआ—'जैनधर्म भगवान् महावीरसे प्रारम्भ हुआ'—कहा जाने लगा। पहलेके तेईस तीर्थंकरोंको 'पौराणिक-मात्र' कह कर इतिहासकी परिधिसे निकाल दिया गया। जैन चुप रहे। जर्मन के प्रसिद्ध विद्वान् डॉ० याकोबी, जो जैन आगम ग्रन्थोंके अध्ययनमें ख्याति प्राप्त कर चुके थे, चुप न रह सके। उन्होंने केवल जैन ही नहीं, अपितु बौद्ध ग्रन्थोंके आधारपर भी प्रमाणित किया कि महावीरके पूर्व पार्श्वनाथ ऐतिहासिक पुरुष थे। फिर तो, अनेकानेक विद्वानों-ने खोजा-ढूँढ़ा और पार्श्वनाथकी ऐतिहासिकता सर्वविदित हो गयी।

डॉ० याकोबीने 'स्टडीज इन जैनिज्म, संख्या १, पृष्ठ ६' पर लिखा था, "परम्पराकी अवहेलना किये बिना हम महावीरको जैनधर्मका संस्थापक नहीं कह सकते। उनके पूर्वके पार्श्व (अन्तिमसे पूर्वके तीर्थंकर) को जैनधर्मका संस्थापक मानना अधिक युक्तियुक्त है। पार्श्वकी परम्पराके शिष्योंका उल्लेख जैन आगम ग्रन्थोंमें मिलता है। इससे स्पष्ट है कि पार्श्व ऐतिहासिक पुरुष हैं।" इसके अतिरिक्त उन्होंने 'सेक्रेड बुक्स आव द ईस्ट' (जैनसूत्रास) भाग ४५, पृष्ठ XXI—XXII, में भी पार्श्वनाथकी ऐतिहासिकता सिद्ध की है। उन्होंने बौद्ध पिटकोंका उद्धरण देते हुए लिखा है, "बुद्धसे पहले ही निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय यहाँ मौजूद था। तत्सम्बन्धित उद्धरण बौद्ध साहित्यमें यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं, जब कि निर्ग्रन्थ साहित्यमें बुद्ध और बौद्ध धर्मका कोई उद्धरण नहीं है।" यह सच है कि जब बुद्धका जन्म हुआ, भारतवर्षमें निर्ग्रन्थोंके त्रेसठ सम्प्रदाय प्रचलित थे। दीर्घनिकायके 'सामञ्ञफलसुत्त, पृ० २१' के अनुसार उनमें छह अत्यधिक प्रसिद्ध थे। उनके आचार्य क्रमशः मक्खलिगोशाल, पूरणकाश्यप, अजितकेसकम्बल, प्रकुध कात्यायन, निगंठनाथपुत्त और संजयवेलट्ठिपुत्त थे। जेम्स डी

१. भारतीय तत्त्वचिन्तन, डॉ० जगदीशचन्द्र जैन, बम्बई, पृष्ठ ६२-६३।

आलविसने अपने एक निबन्धमें लिखा था कि इन सब पर जैनधर्मका प्रभाव था। अतः सिद्ध है कि महावीरसे पूर्व जैनधर्म प्रचलित था।

बुद्ध जिस धर्ममें दीक्षित हुए और जिसके अनुसार प्रारम्भमें कठोर तप किया, वह पार्श्वनाथ चातुर्यामधर्म था। उन्होंने मज्झिम निकायके 'महासिंहनाद सुत्त' (पृष्ठ ४८–५०) में अपने प्रारम्भिक तपस्वी जीवनका वर्णन करते हुए तपके चार प्रकार बतलाये हैं—तपस्विता, रूक्षता, जुगुप्सा और प्रविविक्तता। ये चारों तप पार्श्वनाथके चातुर्यामधर्ममें प्रवर्तित थे। यहाँ तक ही नहीं, आचार्य देवसेन-रचित दर्शन-सार (वि० सं० ९९०) में लिखा है कि बुद्धने एक पार्श्वापत्यमुनि पिहिताश्रवसे दीक्षा ली थी और बुद्धिकीर्तिके नामसे उनके शिष्योंमें रहे, बादमें च्युत हो कर रक्ताम्बर धारण कर लिया था—

सिरिपासणाहतित्थे सरयूतीरे पलासणयरत्थो।
पिहियासवस्स सिस्सो महासुदो बुड्ढकित्ती मुणी ॥६॥
तिमिपूरणासणोहि अहिगयपव्वज्जाओ परिब्भट्ठो।
रत्तंबरं धरित्ता पविट्ठयं तेण एयंतं ॥७॥

अर्थ—पार्श्वनाथके तीर्थमें, सरयूनदीके किनारे, पलाशनगरमें पिहिताश्रवका शिष्य बुद्धिकीर्तिमुनि महाश्रुत था, अर्थात् अनेक शास्त्रों का जानकार था। मछलियोंका आहार करनेसे वह आगृत प्रव्रज्यासे भ्रष्ट हो गया और उसने रक्ताम्बर धारण कर एकान्त मतकी स्थापना की।

गौतमबुद्धके माता-पिता पार्श्वनाथधर्मानुयायी हों तो कुछ आश्चर्य नहीं है। अंगुत्तरनिकाय, चतुक्कनिपात, वग्ग ५ में यह उल्लेख पाया जाता है कि 'बप्प' नामक शाक्य निर्ग्रन्थ श्रावक था। वह बुद्धका समकालीन और कपिलवस्तुका ही निवासी था। कपिलवस्तु नेपालकी तराईमें अवस्थित थी। इसी निकायकी अट्ठ कथामें यह भी कहा गया है कि 'बप्प' बुद्धका चाचा था। तो, यह सम्भव है कि माता-पिता भी निर्ग्रन्थ श्रावक हों। वह उद्धरण है—

"एकसमयं भगवा सक्केसु विहरति कपिलवत्थुस्मिं। अथ खो बप्पो सक्को निगण्ठसावको।"[१]

डॉ० धर्मानन्द कौसाम्बीने अपने ग्रन्थ 'पार्श्वनाथा चा चातुर्यामधर्म' में स्पष्ट लिखा है, "गौतम बोधिसत्त्वने आलारके समाधिमार्गका अभ्यास किया था। गृह त्याग कर प्रथम तो वह आलारके ही आश्रममें गये थे। उन्होंने उसके योगमार्गका अभ्यास किया था। आलारने उन्हें समाधिके सात चरण सिखाये। उसके पश्चात् गौतम उद्रक रामपुत्रके पास गये और उससे समाधिका आठवाँ चरण सीखा। उससे उनका समाधान

१. अंगुत्तर अट्ठकथा, सयाम संस्करण, २।४७४।

नहीं हुआ, क्योंकि उस समाधिसे मनुष्यके बीचकी कलह नहीं मिट सकती थी। तब बोधिसत्त्व उद्दक रामपुत्रका आश्रम छोड़कर राजगृह आये। वहाँके श्रमण सम्प्रदायोंमें उन्हें निर्ग्रन्थोंका चातुर्याम संवर विशेष पसन्द आया, क्योंकि बुद्धके द्वारा खोजे गये अष्टांगिक मार्गका समावेश चातुर्याममें हो जाता है।[1]" श्री कौसाम्बीजीने आगे लिखा कि इससे विदित होता है कि बुद्धने पार्श्वनाथके चार यामोंको पूर्ण रूपसे स्वीकार कर लिया था।

प्रज्ञाचक्षु प्रकाण्ड पण्डित सुखलाल संघवीका कथन है कि श्री धर्मानन्दजी कौसाम्बीकी पुस्तक 'पार्श्वनाथा चा चातुर्यामधर्म'का उद्देश्य ही यह बतलाना है कि शाक्यपुत्रने पार्श्वनाथके चातुर्यामधर्मकी परम्पराका विकास किस-किस तरहसे किया था।[2] उनका 'पंचशील' चातुर्यामका ही अपने साँचेमें ढाला हुआ रूप है। पण्डितजीने लिखा है, "खुद बुद्ध अपने बुद्धत्वके पहलेकी तपश्चर्या और चर्याका जो वर्णन करते हैं, उसके साथ तत्कालीन निर्ग्रन्थ आचारका हम जब मिलान करते हैं, कपिलवस्तुके निर्ग्रन्थ श्रावक बप्पशाक्यका दृष्टान्त सामने रखते हैं तथा बौद्ध पिटकोंमें पाये जाने वाले खास आचार और तत्त्वज्ञान-सम्बन्धी कुछ पारिभाषिक शब्द, जो केवल निर्ग्रन्थ प्रवचनमें ही पाये जाते हैं—इन सबपर विचार करते हैं तो ऐसा माननेमें कोई खास सन्देह नहीं रहता कि बुद्धने पार्श्वनाथकी परम्परा स्वीकार की थी।"[3]

जहाँ तक जैन साहित्यका सम्बन्ध है, उसमें पार्श्वनाथकी ऐतिहासिकताके अधिकाधिक प्रमाण उपलब्ध होते हैं। महावीरके माता-पिता पार्श्वपत्यिक थे। आचारांग २, भाव चूलिका ३, सूत्र ४०१में लिखा है, "समणस्स णं भगवओ महावीरस्स अम्मापियरो पासा वच्चिज्ज सयणो वासगा यावि होत्था।" दीक्षा लेनेके उपरान्त महावीर द्वीपालसा नाम के चैत्य में ठहरे थे। इसी चैत्य में महावीरके पिता राजा सिद्धार्थ, जो पार्श्वनाथके अनुयायी थे, प्रायः दर्शनार्थ जाया करते थे। हो सकता है कि यह चैत्य पार्श्वनाथकी मूर्तिसे अधिष्ठित रहा हो। यह असम्भव नहीं है। ईसासे ३००० वर्ष पूर्व, भारतमें मूर्ति-निर्माणकी बात, मोहन-जो-दरोकी खुदाइयोंसे सिद्ध हो जाती है।

महावीरके समय अनेक पार्श्वापत्यिक मौजूद थे। उनकी पार्श्वनाथके चातुर्याम धर्ममें पूर्ण आस्था थी। महावीरने स्वयं पार्श्वनाथके धर्ममें ही दीक्षा ली थी। बारह वर्ष तप कर, केवलज्ञान उपार्जित करनेके अनन्तर उन्होंने चातुर्यामको पंचयाम महाव्रतके रूपमें विकसित किया। पार्श्वनाथके चार याम थे—प्राणातिपातविरमण (अहिंसा) मृषावाद विरमण (सत्य), अदत्तादानविरमण (अचौर्य), परिग्रहविरमण (अपरिग्रह)। महावीरने इसमें ब्रह्मचर्य और जोड़ दिया और पंचयाम-महाव्रतका उपदेश दिया।

१. 'पार्श्वनाथाचा चातुर्यामधर्म', धर्मानन्द कौसाम्बी, पृष्ठ २४।
२. चार तीर्थंकर, पं० सुखलाल संघवी, जैनसंस्कृति संशोधन मण्डल, वाराणसी, पृष्ठ १६५।
३. चार तीर्थंकर, पं० सुखलाल संघवी, पृ० १४०-४१।

उत्तराध्ययन सूत्र में लिखा है, "चाउज्जामो य जो धम्मो, जो इमो पंचसिक्खिओ। देसिओ वद्धमाणेण, पासेण य महामुणी ॥"[1]

प्रश्न तो यह है कि महावीरने ऐसा क्यों किया? इस सन्दर्भमें केशी-गौतम संवादको उद्धृत करना अप्रासंगिक नहीं होगा। उत्तराध्ययन सूत्रके २३वें अध्ययनमें यह संवाद दिया हुआ है। केशीकुमार एक पार्श्वापत्यिक निर्ग्रन्थ युवा साधु था। वह १४ पूर्वोंका जानकार, विद्या तथा मन्त्रशास्त्रमें भी निष्णात था। एक बार, अपने शिष्योंके साथ भ्रमण करता हुआ वह श्रावस्तीके तिन्दुक नामके उद्यानमें ठहरा। उसी समय महावीरके प्रधान शिष्य गौतम भी अपने संघ-सहित वहाँ आये और कोष्ठक उद्यानमें ठहर गये। दोनोंके बहुश्रुत और चरित्रनिष्ठ शिष्योंके मनमें बार-बार शंका उठती थी—"यह धर्म (चातुर्याम) सत्य है या वह (पंचयाम)।" यह देखकर दोनों आचार्योंने आपसमें भेंट करनी चाही। केशीको ज्येष्ठकुलका जानकर, अतः उसके सम्मानार्थ, गौतम उसके पास गये। केशीने मूल प्रश्न उपस्थित किया। गौतमने कहा—"तत्त्वदृष्टिसे चार याम और पाँच महाव्रतोंमें कोई अन्तर नहीं है। इस युगकी कम और उलटी समझ देख कर ही महावीरने ब्रह्मचर्यका पृथक् निरूपण कर चारके स्थान पर पाँच शिक्षाएँ दी हैं। मोक्षका वास्तविक कारण तो आन्तरज्ञान, दर्शन और चारित्र ही है।"[2] केशीने गौतमके उत्तरकी यथार्थता देखकर पाँच महाव्रत स्वीकार कर लिये।

पार्श्वनाथके 'परिग्रह-विरमण' में ब्रह्मचर्य अन्तर्भुक्त था। किन्तु, उसे समझदार ही समझ पाते थे। महावीरके युग तक आते-आते यह समझदारी नितान्त समाप्त हो चली थी। महावीरका समय वक्र-जड़ हो गया था, जब कि पार्श्वनाथका ऋजु और समझदार था। अतः समय देख कर ही महावीरने ब्रह्मचर्यका स्पष्ट और पृथक् उपदेश दिया। डॉ० राधाकुमुद मुखर्जीका यह अभिमत ठीक प्रतीत होता है कि पार्श्व और महावीरके बीचके कालमें भिक्षुओंके नैतिक जीवनका ह्रास हुआ था।[3] इसकी पुष्टि भगवती आराधनाकी—"इंदियकसाययुरुपत्तणेण चरणं तणं व पस्संतो। णिद्धम्मो हु सवित्ता सेवदि पासत्थसेवाओ ॥" पंक्तियोंसे होती है। इसका अर्थ है—पार्श्वस्थ मुनि इन्द्रिय, कषाय और विषयोंसे हार कर चरित्रको तृणके समान समझता है। जो साधु पार्श्वस्थ मुनिकी सेवा करते हैं, वे भी पार्श्वस्थ बन जाते हैं। सूत्रकृतांगमें पार्श्वस्थोंको—एवमेगे उ पासत्था पन्नवंति अणारिया। इत्थीवसं गया बाला जिणसासणपरम्मुहा ॥" कहा गया है। अर्थात् वे अनार्य, बाल, जिनशासन से विमुख और स्त्री-आसक्त होते थे। इस शिथिलाचारको दूर करनेके लिए ही महावीरने 'ब्रह्मचर्य' को 'अपरिग्रह' से नितान्त पृथक् महाव्रतके रूपमें निर्दिष्ट किया। कल्पसूत्र, सुबोधटीका, पत्र ५में लिखा है, "स्त्री अपि

१. उत्तराध्ययनसूत्र, त्रयोविंशतिमध्ययनम्, नेमिचन्द्राचार्यकृत टीका, पत्र २६७–१।
२. उत्तराध्ययन, अ० २३, श्लोक २३–३२।
३. 'Hindu civilisation' डॉ० राधाकुमुद मुकर्जी, 'हिन्दू सभ्यता' अनुवादक डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, पृष्ठ २१६।

परिग्रह एवेति, परिग्रहे प्रत्याख्याते स्त्री प्रत्याख्याता एव, प्रथमचरमजिनसाधूनां तु तथा ज्ञानाभावात् पञ्चव्रतानि ॥" यह ह्रास साधुओंके लिए सुखद था, शायद इसी कारण, उनमें-से बहुतोंने पंचमहाव्रत अंगीकार नहीं भी किये। श्री भगवानदास झावेरी ने लिखा है, "Parsvapatyas, who did not accept the reforms of shri Mahavira, continued to enjoy liberties."[१]

पं० कैलाशचन्दजीने 'जैन साहित्यका इतिहास : पूर्व पीठिका'में, पृष्ठ २२१ पर, एक निष्कर्ष पर पहुँचते हुए लिखा है, "केशी गौतम संवादसे यह बिलकुल स्पष्ट हो जाता है कि भगवान् महावीरके समयमें भी पार्श्वनाथके अनुयायी श्रमण संघ मौजूद थे।" पं० सुखलाल संघवीने 'चार तीर्थंकर' में—महावीर और उनके शिष्य इन्द्रभूति गौतमका कई स्थानोंपर पार्श्वापत्यिकोंसे मिलन होता है—लिखते हुए भगवती, सूत्रकृतांग और उत्तराध्ययन आदिसे, उनके मिलनकी रोचक कथाएँ उद्धृत की हैं। पं० दलसुख मालवणियाने 'जैनप्रकाश'के 'उत्थानविशेषांक'में भेंट करने वालोंकी संख्या ५१० बतलायी है, जिनमें ५३ साधु थे। प्रसंगतः जब-जब पार्श्वनाथके उल्लेखकी आवश्यकता हुई, महावीरने उनके लिए 'पुरुषादानीय' शब्दका उच्चारण किया। 'पुरुषादानीय' का अर्थ कल्पसूत्र, सन्देह विषौषधि टीका, पत्र ११९ में लिखा है, "पुरुषादानीय इति पूज्याः पुरुषश्चासौ पुरुषाकारवर्तितया आनादेयश्चादेयवाक्यतया पुरुषादानीयः ॥" पृथ्वीचन्द्र सूरिने कल्पसूत्रके अपने टिप्पणकमें लिखा है, "पुरुषश्चासौ पुरुषाकारवर्तितया आदानीयश्च आदेयवाक्यतया पुरुषादानीयः, पुरुषविशेषण तु पुरुष एव प्रायस्तीर्थंकर इति ख्यापनार्थम्। पुरुषैर्वा आदानीयः—आदानीयज्ञानगुणतया पुरुषादानीयः।" इसका अर्थ है कि पुरुषादानीय वह पुरुष है, जिसके वाक्य ग्रहण करने योग्य हों, अर्थात् जो ज्ञानगुणसे सम्पन्न हो। यह शब्द प्रायः पूज्य अथवा तीर्थंकर के लिए प्रयुक्त होता है। इस भाँति महावीर पार्श्वनाथको 'पुरिसादानीय' कह कर अपना हार्दिक सम्मान प्रकट करते हैं। और, पार्श्वापत्यिक भी महावीरको पार्श्वनाथके समान ज्ञानगुण-सम्पन्न देखकर उनके संघमें सम्मिलित हो गये।

निष्कर्ष है कि महावीरके युगमें पार्श्वापत्यिक निर्ग्रन्थोंका एक सशक्त संघ था, जो महावीरके संघकी आधारभित्ति बना। संघ ही नहीं, आचार और श्रुतके रूपमें भी पार्श्वनाथीय परम्परा महावीरको प्राप्त हुई, जिसे उन्होंने समयके अनुकूल संशोधित और विकसित किया। उन्होंने समयको देखकर ही चरित्र पर अधिक बल दिया। स्वयं अपने जीवनमें उतार कर आदर्श प्रस्तुत किया। जो साधु उसे न अपना सके, वे मन्त्र, विद्या और बलके आधार पर, कुछ समय तक लोकमें सम्मान पाते रहे, फिर अस्तित्वहीन-से होकर, एक दिन नाथ सम्प्रदायमें अन्तर्भुक्त हो गये।

---

१. 'Comparative and critical study of Mantra Shastra' Shri Mohanlal Bhagwan das Jhaweri, पृष्ठ १५४।

पार्श्वनाथकी ऐतिहासिकताका एक पुरातात्विक प्रमाण है—मथुराका कंकाली टीला। विख्यात कनिंघम साहबने सन् १८७१ में इसके पश्चिमी किनारेका उत्खनन करवाया। उसमें बहुसंख्यक जैनप्रतिमाएँ प्राप्त हुईं। कई पर लेख उत्कीर्ण थे। कनिंघम साहबको ईंटोंकी बनी एक दीवाल भी प्राप्त हुई थी। शिलालेखोंसे उन्हें विदित हुआ कि ईसवीकी पहली-दूसरी शतीमें कंकाली टीलाकी भूमि पर विशाल जैन-स्तूप था। बादमें, फ्यूररको भी वहाँ ४७ फुट व्यासका एक जैनस्तूप और जैनमन्दिरोंके अवशेष मिले थे। अभिलेखोंसे यह स्पष्ट है कि यहाँ कई शती ईसा-पूर्वसे ११वीं शती तक, जैन-स्तूप, मन्दिर और मूर्तियोंका निर्माण होता रहा। फ्यूररने एक प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख पढ़ा था—थूपे देव निमिते। इसका अर्थ है—मूर्तिकी स्थापना देव-निर्मित स्तूपमें की गयी। यह मूर्ति कुशन संवत् ७९ (ई० स० १५७) की है।

इसी सन्दर्भमें श्री जिनप्रभसूरिके 'विविध तीर्थकल्प' की बात कह देना भी प्रासंगिक है। सूरिजी विक्रमकी १४वीं शताब्दीके प्रसिद्ध विद्वान् और तीर्थयात्री थे। उन्होंने भारतके विविध तीर्थोंकी, तीस वर्षसे भी ऊपर यात्रा की। उन-उन स्थानोंके सम्बन्धमें जो साहित्यगत या परम्परा-श्रुत बातें उन्हें ज्ञात हुईं, लिपिबद्ध करते गये। ऐसे ही एक 'मथुरापुरी कल्प'में उन्होंने उपर्युक्त स्तूपको 'देवनिम्मिअथूभ' और 'चतुरशीति महातीर्थ नाम संग्रहकल्प' में 'महालक्ष्मीनिर्मितः श्री सुपार्श्वस्तूपः' लिखा। महालक्ष्मीका पर्यायवाची है—कुबेरा। कुबेर धनका देव माना जाता है। कुबेरा उसकी देवी है। उसने दो साधुओंके चातुर्माससे प्रसन्न होकर, उनकी सदिच्छाको पूर्ण करनेके लिए इस स्तूपका निर्माण करवाया था। यह स्वर्णका बना था और इसमें पंचवर्णके रत्न जड़े थे। "एक बार, भगवान् पार्श्वनाथका समवशरण मथुरा आया, उन्होंने आने वाले दुषमा कालकी कठिनाइयोंकी ओर इंगित किया। फिर, भगवान्के अन्यत्र विहार कर जाने पर, कुबेरा देवीने संघको आमन्त्रित कर, भगवान्की भविष्यवाणीसे परिचित कराया। उसने यह भी कहा—मैं सर्वदा जीवित रह कर, इस नग्न स्तूपकी रक्षा न कर सकूँगी और आगेके आने वाले राजा लोभी होंगे, अतः इस स्तूपको ईंटोंसे ढक देना श्रेयस्कर होगा। संघके सदस्य बाहरसे पार्श्वनाथकी पूजा कर सकेंगे और भीतर संरक्षिका देवी रहेंगी। संघने इस बातको स्वीकार कर लिया और देवीने वैसा ही किया।" ईंटोंके आवेष्टनके बाहर एक पाषाण मन्दिरका निर्माण किया गया और उसमें पार्श्वनाथकी मूर्त्ति स्थापित की गयी।

अन्नया पाससामी केवलिविहारेण विहरंतो महुरं पत्तो। समोसरणे धम्मं साहइ। दूसमाणुभावं च भाविणं पयासेइ। तओ भगवंते अन्नत्थ विहरिए संघं हक्कारिअ भणिअं कुबेराए; जहा—आसन्ना दूसमा परूविआ सामिणा। लोओ राया य लोभग्गत्था होहिन्ति। अहं च पमत्ता न य चिराउसा। तओ उग्घाडयं एयं थूभं सव्वकालं न सक्किस्सामि रक्खउं। तओ संघाएसेण इट्टाहि ढक्केमि। तुम्हेहि वि बाहिरे पाससामी सेलमइओ

पुज्जिअव्वो। जा य अम्ह बइसणए अन्नावि देवी होही सा अब्भितरे पूअं करिस्सइ। तओ बहुगुणं ति अणुमन्निअं संघेण। देवीए तहे व कयं।

मथुरापुरी कल्प, विविधतीर्थकल्प, पृष्ठ १८,

मन्दिरके सम्बन्धमें प्यूररने लिखा है कि—बहुत प्राचीन अक्षरोंमें उत्कीर्ण लेख वाले तोरणके मिलनेसे यह पता चल जाता है कि ईसा-पूर्व १५० में भी मथुरामें जैन मन्दिर था। विद्वान् ईंट-निर्माणको ईसा-पूर्व ६०० वर्ष कूतते हैं। उनका आधार है—तिब्बतीय विद्वान् तारानाथका कथन, जिन्होंने लिखा कि मौर्यकालकी कला यक्षकला कहलाती थी और उससे पूर्वकी कला देव-निर्मित कला। अतः यह सिद्ध होता है कि कंकाली टीलेका जैनस्तूप कम-से-कम मौर्यकालसे पहले अवश्य बना था। स्मिथने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'जैनस्तूप एण्ड अदर एण्टीक्यूटीज ऑव मथुरा'में लिखा कि देव-निर्मित शब्द-से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि इसका निर्माण ईसासे ६०० वर्ष पूर्व हुआ। यह भारतकी सबसे पुरानी बिल्डिंग है।

भगवान् महावीरके निर्वाणके १३०० वर्ष बाद, लगभग ई० सन् ७५० में बप्प भट्ट सूरिका जन्म हुआ। उन्होंने तीर्थका जीर्णोद्धार करवाया। पूजाकी सुविधाके लिए उपवन, कुएँ और अनेक भण्डारोंका निर्माण करवाया। उन्होंने गिरती हुई ईंटोंको देख कर स्तूपको मरम्मतके लिए खोलना चाहा, तो देवीने स्वप्नमें उन्हें ऐसा करनेसे रोका। फिर उन्होंने स्तूपपर चौकोर पत्थरोंका आवरण लगवा दिया।

"तओ वीरनाहे सिद्धि गए साहिएहिं तेरससएहिं वरिसाणं बप्पहट्टि सूरी उप्पण्णो। तेण वि एयं तित्थं उद्धरिअं। पासजिणो पूआविओ। सासय पूअकरणत्थं काणणकूवकोट्टा काराविआ। संघेण इट्टाओ खसंतीओ मुणित्ता पत्थरेहिं वेढाविओ उक्खिलाविउमाढत्तो थूभो। देवयाए सुमिणंतरे वारिओ। न उग्घाडेयव्वो एसु त्ति। तओ देवयावयणेणं न उग्घाडिओ, सुघडिअपत्थरेहिं परिवेडिओ अ।"

मथुरापुरीकल्प, विविधतीर्थकल्प, पृष्ठ १८

इतना ही नहीं, भारतीय इतिहासके अनेक ख्यातिप्राप्त विद्वान् पार्श्वनाथको ऐतिहासिक पुरुष मानते हैं। जार्लकार्पेण्टियरने 'केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव इण्डिया,' जिल्द १, पृष्ठ १५३ पर, 'द हिस्ट्री ऑव जैनाज' में लिखा है, "प्रोफेसर याकोबी तथा अन्य विद्वानोंके मतके आधार पर, पार्श्व ऐतिहासिक पुरुष और जैनधर्मके सच्चे स्थापन कर्ता-के रूपमें माने जाने लगे हैं। कहा जाता है कि महावीरसे २५० वर्ष पूर्व उनका निर्वाण हुआ। वे सम्भवतः ईसा-पूर्व आठवीं शताब्दीमें रहे होंगे।" श्री विमला चरन लॉ ने भी 'इण्डालाजिकल स्टडीज'में, भाग ३, पृष्ठ २३६-३७ पर पार्श्वनाथके ऐतिहासिक पुरुष होनेका समर्थन किया है। डॉ० राधाकुमुद मुकर्जीने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'हिन्दू सिविलाइ-जेशन'में लिखा है कि—"पार्श्वनाथ ऐतिहासिक पुरुष थे क्योंकि उनके अनुयायी महावीर और बुद्धके जीवनकालमें मौजूद थे, यहाँ तक कि महावीरके माता-पिता स्वयं पार्श्वके

उपासक और श्रमणोंके अनुयायी थे।" डॉ० ए० एम० घाटे ने 'हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑव इण्डियन पीपुल', खण्ड २, 'जैनिज्म' शीर्षकके अन्तर्गत पृष्ठ ४१२ पर लिखा है, "पार्श्वका ऐतिहासिकत्व जैन आगम ग्रन्थोंसे सिद्ध है।" 'संस्कृतिके चार अध्याय'में श्री दिनकरजीका कथन है, "तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ थे, जो ऐतिहासिक पुरुष हैं और जिनका समय महावीर और बुद्ध दोनोंसे २५० वर्ष पूर्व पड़ता है।"

पार्श्वनाथ, महावीरसे २५० वर्ष पूर्व हुए, ऐसा उपर्युक्त उद्धरणोंसे सिद्ध है। किन्तु, इस सन्दर्भमें एक शंका उठना सहज स्वाभाविक है—क्या पार्श्वनाथके जन्मसे महावीरका जन्म ढाई सौ वर्ष बाद हुआ, या पार्श्वनाथके निर्वाणसे महावीरका जन्म ढाई सौ वर्ष बाद हुआ, अथवा पार्श्वनाथके निर्वाणसे महावीरको केवलज्ञान ढाई सौ वर्ष बाद हुआ? जैन साहित्य और इतिहासके प्रकाण्ड पण्डित जुगलकिशोर मुख्त्यारका कथन है कि ऐसा कुछ नहीं हुआ। सच यह है कि पार्श्वनाथके निर्वाणसे महावीरका निर्वाण ढाई सौ वर्ष बाद हुआ।[1] अपने समर्थनमें उन्होंने उत्तरपुराणका एक श्लोक उपस्थित किया है—

पार्श्वेशतीर्थसंताने पञ्चाशद्द्विशताब्दके।
तदभ्यन्तरवर्त्यायुर्महावीरोऽत्र जातवान्॥ उत्तरपुराण, ७४।२७९

इसका अर्थ है कि श्री पार्श्वनाथ तीर्थंकरसे ढाई सौ वर्षके बाद, इसी समयके भीतर अपनी आयुको लिये हुए भगवान् महावीर हुए। 'तदभ्यन्तरवर्त्यायुः' इसका द्योतक है। इसका तात्पर्य हुआ कि पार्श्वनाथके निर्वाणसे महावीरका निर्वाण ढाई सौ वर्ष बाद हुआ।

अब, मुनिश्री नगराजजीने अपने नवीनतम ग्रन्थ 'आगम और त्रिपिटक : एक अनुशीलन'में, समस्त सामग्री और विभिन्न परम्पराओंका मन्थन कर निष्कर्ष निकाला है कि महावीरका निर्वाण ५२७ ई० पू० में हुआ। अतः पार्श्वनाथका निर्वाण—७७७ ई० पू० (५२७ + २५० ई० पू०) सिद्ध हो ही जाता है।

तीर्थंकर पार्श्वनाथसे सम्बन्धित विपुल साहित्यका निर्माण हुआ—सभी भारतीय भाषाओंमें चाहे वह प्राकृत हो, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी या अन्य प्रादेशिक भाषा। इस सृजनमें आचार्य जिनसेनका 'पार्श्वाभ्युदय' एक अभूतपूर्व निर्माण है। कविसम्राट् कालिदासके मेघदूतकी प्रत्येक पंक्ति इसमें खप गयी है, जबकि प्रसंग नितान्त भिन्न है। एक पंक्तिको लेकर समस्या-पूर्ति दूसरी बात है और पूरे काव्यको ही अन्य प्रसंगमें समो देना और ही बात है। संस्कृत साहित्यके माने-जाने विद्वान् श्री के० बी० पाठकने लिखा है, "पार्श्वाभ्युदय संस्कृत साहित्यकी एक अद्भुत रचना है। वह अपने युगकी साहित्यिक रुचिकी उपज और आदर्श है। भारतीय कवियोंमें सर्वोच्च स्थान सर्वसम्मतिसे

१. 'जैन साहित्य और इतिहास पर विशद प्रकाश', पं० जुगलकिशोर मुख्त्यार, वीर शासन संघ, कलकत्ता, पृ० ३१।

कालिदासको मिला है। तथापि मेघदूतके कर्त्ताकी अपेक्षा जिनसेन अधिक प्रतिभाशाली कवि माने जानेके योग्य हैं।"[1] आचार्य जिनसेन राष्ट्रकूटके महाराज अमोघवर्षके अत्यधिक सम्माननीय थे। उन्होंने पार्श्वाभ्युदयकी रचना ई० सन् ७८३ में पूर्ण की।

उत्तरपुराणका ७३वाँ पर्व पार्श्वनाथके जीवनसे सम्बन्धित है। किन्तु, एक पौराणिक शैलीमें लिखे जानेके कारण वह काव्य-सौष्ठव नहीं, जो पार्श्वाभ्युदयमें है। उत्तरपुराण एक पुराण है। इतिवृत्तात्मकता ही उसका प्राण है। आचार्य गुणभद्र एक ख्याति-प्राप्त पौराणिक थे। उन्होंने उत्तरपुराणकी रचना सन् ८९७ में समाप्त की थी। वादिराजसूरिका 'पार्श्वनाथ चरित' एक भाव-भीना काव्य है। उसमें यदि रूढ़िबद्धता है तो मौलिकता भी अल्प नहीं। महाकाव्यके सभी गुण उसमें विद्यमान हैं। विरह और संयोगके सन्दर्भमें अनेक ऐसी कल्पनाएँ हैं, जिनका परवर्ती साहित्यपर प्रभाव पड़ा। तत्कालीन युद्धकलाके अनेक चित्र सूरिजीने अपनी कुशल तूलिकासे उकेरे हैं। वे भावोंके अनोखे चित्रकार थे। इस काव्यका निर्माण ई० सन् १०२५ में पूर्ण हुआ था। इसी भाँति, श्री भावदेवसूरिका 'पार्श्वनाथ चरित्र' चरित होते हुए भी एक उत्तमकोटिका काव्य है। उसमें संग्रथित सम्बन्ध-निर्वाह है। सौन्दर्य है, रस है। कथावस्तुमें कहीं-कहीं परिवर्तन अवश्य है, किन्तु इससे कविकी भाव-गरिमामें कोई व्याघात उत्पन्न नहीं हुआ। दृश्योंके चित्र हैं, चित्रोंमें रस है और है एक सरिताका अविच्छिन्न सतत प्रवाह। डॉ० विण्टरनित्सने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'हिस्ट्री ऑव इण्डियन लिटरेचर, भाग ३, पृष्ठ ५१२-१३' पर, श्री भावदेवका समय ई० सन् १२५५ स्वीकार किया है।

मध्यकालीन हिन्दीके एक कवि श्री भूधरदासने भी 'पार्श्वनाथचरित' का निर्माण किया था। बहुत पहले, यह ग्रन्थ पं० नाथूराम प्रेमीके सम्पादनमें हिन्दी ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय, बम्बईसे प्रकाशित हो चुका है। ग्रन्थकी सबसे बड़ी विशेषता है—उसकी मौलिकता। कथाके परम्परानुगत होनेपर भी प्रस्तुत करनेके ढंग, चित्रमयता, उत्प्रेक्षा और दृष्टान्तोंकी छटाने उसे नवीन बना दिया है। 'प्रसाद' तो जैसे उसमें साक्षात् ही हो उठा है। इस सन्दर्भमें भूधरदासको मध्ययुगीन हिन्दीका अन्यतम कवि कहा जा सकता है। वे 'प्रसाद' के राजा ही थे। शायद इसी कारण, पं० प्रेमीकी दृष्टिमें 'पार्श्वपुराण' हिन्दीका एक ही चरित ग्रन्थ है, जिसकी रचना उच्चश्रेणीकी कही जा सकती है।[2] 'पार्श्वपुराण' एक महाकाव्य है, ऐसा उसके परीक्षणसे स्पष्ट हो है। इसकी रचना वि० सं० १७८९, आषाढ़ सुदी ५ को आगरेमें पूर्ण हुई थी। इसमें एक प्रसंग है कि तपस्वी पार्श्वनाथपर कमठके जीवने बहुत बड़ा उपसर्ग किया। पार्श्वने उसे हँसते-हँसते झेल लिया। उसीका एक चित्र यहाँ उपस्थित किया गया है। यदि चित्रांकन उत्तमकाव्यकी कसौटी है, तो यह काव्य भी उत्तम काव्यका ही निदर्शन माना जायेगा—

१. मेघदूत, पाठक-सम्पादित, पूना १९१६, भूमिका—पृष्ठ २३।
२. 'हिन्दी जैन साहित्यका इतिहास', पं० नाथूराम प्रेमी, बम्बई, पृष्ठ ५६।

किलकिलंत बैताल, काल कज्जल छवि सज्जहिं।
भौं कराल विकराल, माल मदगज जिमि गज्जहिं॥
मुंडमाल गल धरहिं लाय लोयननि डरहिं जन।
मुख फुलिंग फुंकरहिं करहिं निर्दय धुनि हन-हन॥
इह विधि अनेक दुर्वेष धरि, कमठ जीव उपसर्ग किय।
तिहुंलोक वंद जिनचन्द प्रति, धूलि डाल निज सीस लिय॥ ८।६८॥

पार्श्वनाथकी भक्तिमें अनेक स्तुति-स्तोत्रोंका निर्माण हुआ, जिनकी गणना नहीं हो सकती। इनमें कुछ कृतियाँ ऐसी हैं, जो केवल धार्मिक दृष्टिसे ही नहीं, अपितु साहित्यिक दृष्टिसे भी उच्चकोटिकी हैं। उनमें भक्तिरस है और देश-कालके परे उनका स्थायित्व निर्विवाद है। 'उवसग्गहर स्तोत्त' प्राकृत भाषामें लिखा गया एक प्रसिद्ध स्तोत्र है। इसमें केवल पाँच पद्य हैं, किन्तु इतने सशक्त कि उनपर कई टीकाएँ रची गयीं। पार्श्वदेवगणि (१२ वीं शताब्दी वि० सं०) की लघुवृत्तिके साथ यह स्तोत्र, 'जैनस्तोत्र संदोह, द्वि० भा०' में छप चुका है। इसके अतिरिक्त, जिनप्रभसूरि, सिद्ध चन्द्रगणि और हर्षकीर्तिसूरिकी टीकाएँ (वि० सं० १४ वीं शताब्दी) भी प्रकाशित हो चुकी हैं। इस स्तोत्रके रचयिता श्री भद्रबाहु, श्रुतकेवली भद्रबाहुसे पृथक् थे। इनका समय छठी शताब्दी वि० सं० का मध्य निश्चित हो है। उन्होंने स्वयं पंचसिद्धान्तिकाके अन्तमें अपना समय वि० सं० ५६२ माना है। यह स्तोत्र मंत्रदृष्टिसे भी अधिक पावन माना जाता है। तीर्थंकर पार्श्वनाथके चरणोंमें समर्पित यह एक पुनीत श्रद्धाञ्जलि है।

'भयहर स्तोत्त' भी प्राकृतकी एक सशक्त रचना है। उसमें २१ पद्य हैं—सभी तीर्थंकर पार्श्वनाथकी भक्तिमें समर्पित। इस स्तोत्रके रचयिता आचार्य मानतुंगसूरि अपने समयके ख्याति-प्राप्त विद्वान् थे। मुनि चतुरविजयजीने उनको हर्षका समकालीन, अर्थात् वि० सं० सातवीं शताब्दीका माना है। डॉ० विण्टरनित्स उन्हें ईसाकी तीसरी शतीका मानते हैं। 'स्वयम्भूस्तोत्र' और 'स्तुति विद्या' दोनों संस्कृतमें लिखे गये स्तोत्र-ग्रन्थ हैं। इनमें पार्श्वनाथसे सम्बन्धित स्तुतियाँ भी हैं। उनमें भाव-विभोर कर देनेकी सामर्थ्य है। इनके निर्माता आचार्य समन्तभद्र लब्धप्रतिष्ठ दार्शनिक और कवि थे। उनके अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। विद्वानोंने उनका समय दूसरी शताब्दी स्वीकार किया है। श्री सिद्धसेन दिवाकरका 'पार्श्वनाथ-स्तवन' भी एक श्रेष्ठ काव्य है। यह बम्बईसे प्रकाशित हो चुका है। डॉ० विण्टरनित्सने उनका समय ईसाकी सातवीं शती माना है। श्री पद्मप्रभ मलधारिदेवका भी पार्श्वनाथस्तोत्र, जिसे लक्ष्मीस्तोत्र भी कहते हैं, प्राप्त हुआ है। उसमें भावोन्मेषकी शक्ति है। भाषा भावानुरूपा है। ऐसा प्रतीत होता है कि कविका आलंकारिक भाषापर अधिकार था। उसमें ९ पद्य हैं। कतिपय देखिए—

यद्विश्वलोकैक गुरू गुरू गुरू
विराजिता येन वरं वरं वरं

तमालनीलांग भरं भरं भरं
पार्श्वफणेराम गिरौ गिरौ गिरौ ॥
संरक्षितो दिग्भुवनं वनं वनं
विराजिता येपु दिवै दिवै दिवै
पादद्वयंनूत सुरा सुरा सुरा
पार्श्वफणेराम गिरौ गिरौ गिरौ ॥
रराज नित्यं सकला कला कला
ममार ब्रह्मो बृजिनो जिनो जिनो
संहारपूज्यं वृषभा सभा सभा
पार्श्वफणेराम गिरौ गिरौ गिरौ ॥
लक्ष्मीर्महस्कल्प सती सती सती
प्रवृद्धकालो विरतो रतो रतो
जरा रुजा जन्म हता हता हता
पार्श्वफणेराम गिरौ गिरौ गिरौ ॥

पद्मप्रभदेव व्याकरण, नाटक और काव्य रचनामें निपुण थे। वे तर्कशास्त्रके तो निधि ही थे। वे समूचे विश्वमें विख्यात थे। उन्होंने उपर्युक्त गम्भीर यमकाष्टककी रचना की थी। मद्रास प्रान्तके पटशिवपुरम् ग्रामके एक शिलास्तम्भसे स्पष्ट है कि श्री पद्मप्रभ मलधारिदेव और उनके गुरु वीरनन्दि सिद्धान्त चक्रवर्ति शक सं० ११०७ या वि० सं० १२४२ में विद्यमान थे। उन्होंने नियमसारकी तात्पर्यवृत्तिकी टीका भी लिखी थी। इस सम्बन्धमें वे आचार्य अमृतचन्द्रकी टीकाशैलीसे प्रभावित थे। उन्होंने इस ग्रन्थमें स्वयं अपनेको 'सुकविजनपयोजमित्र', 'पंचेन्द्रियप्रसर वर्जित' और 'गात्रमात्र परिग्रह' लिखा है।

पार्श्वनाथसे सम्बन्धित ऐसे स्तवन भी उपलब्ध हुए हैं, जिनका प्रत्येक पद्य भिन्न भाषामें रचा गया। उनके रचयिता अनेक भाषाओंके प्रौढ़ विद्वान् थे। दृष्टान्तके लिए श्री धर्मवर्धन (१२वीं शती ईसवी) का 'षड्भाषामय पार्श्वनाथस्तवन' देखा जा सकता है। इसमें संस्कृत, महाराष्ट्री, मागधी, शौरसेनी और पैशाची प्राकृत तथा अपभ्रंशका प्रयोग हुआ है। अपभ्रंशकी दो अन्य महनीय कृतियों—पार्श्वनाथजन्मकलशः और नवफणपार्श्वनमस्कारः का नामोल्लेख 'पाटण ग्रन्थभण्डार' की ग्रन्थ-सूचीमें मिलता है। इनके रचयिता क्रमशः धर्मसूरिशिष्य (१३१०-७३ वि० सं०) और शान्तिभद्र (१४वीं शताब्दी वि० सं०) व्युत्पन्न कवि और सिद्धान्तशास्त्रके पारंगत विद्वान् थे। श्री जयकीर्तिसूरिका 'पार्श्वदेवस्तवनम्' भी अपभ्रंश भाषाकी सामर्थ्यवान् रचना है। इसका प्रकाशन 'जैन स्तोत्रसन्दोह, भाग २' में हो चुका है। मुनि चतुरविजयजीने सूरिजीका समय वि० सं० १४३३-१५०० माना है।

इनके अतिरिक्त, 'विविधतीर्थकल्प' के रचयिता श्री जिनप्रभसूरिका संस्कृतमें

लिखा गया 'पार्श्वनाथस्तव' और सोमसुन्दरसूरिका 'पार्श्वजिनस्तवन' भी प्रसिद्ध है। मदनकीर्ति (वि० सं० १२८५) की 'शासनचतुस्त्रिंशिका' में ८ सिद्धक्षेत्र और १८ अतिशयक्षेत्रोंकी स्तुति की गयी है। उनमें पार्श्वनाथसे सम्बन्धित एकाधिक अतिशयक्षेत्रोंकी भाव-पूर्ण स्तुतियाँ हैं। श्रीमद्विद्यानन्दस्वामीका 'श्रीपुरपार्श्वनाथस्तोत्र' वीर सेवामन्दिर, सरसावासे प्रकाशित हुआ है। स्वामीजीकी यह कृति सदैव ख्याति-प्राप्त रही, आज भी है। पाठक तन्मय हुए बिना नहीं रहता। श्री नयविमलसूरिका 'संखेश्वर पार्श्वनाथस्तवन' भी ऐसा ही है—भाव-भीना और भक्तिरस से ओत-प्रोत। ऐसी ही शतशः कृतियाँ अभी ताड़पत्रों तक ही सीमित हैं। उनकी चर्चाके लिए एक पूरे ग्रन्थकी ही आवश्यकता है।

'तीर्थंकरपार्श्वनाथभक्तिगंगा' में पार्श्वनाथसे सम्बन्धित हिन्दी पदोंका संकलन है। उनकी रचना हिन्दीके मध्ययुगमें हुई थी। उनके रचयिताओंको मैं श्रेष्ठकाव्यका धनी मानता हूँ। इन पदोंमें धर्म है, किन्तु साहित्यरस भी अल्प नहीं है। धार्मिक होने मात्रसे कोई रचना साहित्यिक कोटिसे पृथक् नहीं की जा सकती, ऐसा मैं समझ सका हूँ। विनयपत्रिका और सूरसागर भी धर्मग्रन्थ हैं, किन्तु उन्हें उत्तमकाव्यकी कोटिमें भी गिना जाता है। ऐसे ही ये पद हैं। इनमें पार्श्वनाथकी भक्ति है और रसात्मकता भी। मैं चाहूँगा कि हिन्दीके विद्वान् उन्हें न्यायोचित स्थान दें।

इन पदोंकी शोध-खोजके समय मुझे ऐसा लगा कि जितना जैन पद काव्य आदिनाथ, नेमिनाथ और महावीरके चरणों में समर्पित हुआ, पार्श्वनाथकी भक्तिमें नहीं। अतः भण्डारोंकी हस्तलिखित प्रतियोंका आश्रय अनिवार्य हो गया, मैंने वैसा ही किया और परिणाम-स्वरूप यह शतक पाठकोंके समक्ष प्रस्तुत कर रहा हूँ। यथाशक्य इनका सम्पादन और अनुवाद किया है। ऐसा न कर पाता, यदि पूज्य १०८ मुनिश्री विद्यानन्द जीका सतत प्रेरणादीप प्रकाश न देता। मैं उनके प्रति अतीव आभारी हूँ। भारतीय ज्ञानपीठके लिए क्या कहूँ, वह तो अपना ही है। सत्साहित्यके प्रकाशनमें वह विश्वख्याति प्राप्त करे, ऐसी मेरी हार्दिक भावना है।

यदि यह कृति पाठकोंको रुचिकर हुई तो मैं अपने प्रयासको कृतार्थ समझूँगा।

– डॉ० प्रेमसागर जैन
अध्यक्ष : हिन्दी विभाग
दि० जैन कॉलिज, बड़ौत
(मेरठ)

दीपावली
९–११–१९६९

अनुक्रमणिका

१.	जय जय रिषब आदि जोगीश	१
२.	श्री रिषभ जी कौ ध्यान करौ निसि दिना रे भाई	२
३.	आदि तीर्थंकर देव जिनेसुर नाभि के नंद महासुषदाई·री	२
४.	शिवरमणी जादू डारो	३
५.	कैसे घरि रहु री माई	४
६.	पतितपावन नाम तेरो	५
७.	प्रभु के दरसन कों हम आये	५
८.	मैं तो नरभव बादि गँवायो	६
९.	काहे को देश-दिशांतर धावत	७
१०.	आनंद को कंद किधों पूनम को चंद किधों	७
११.	नरेन्द्रं फणीन्द्रं सुरेन्द्रं अधीसं	८
१२.	जै बोलो पास जिनेश्वर की	८
१३.	जगपति त्योरा ला महाराज	९
१४.	प्रणमि चरण-जुग पास जिनराज जू के	९
१५.	तुम प्रभु अधम अनेक उधारे	१०
१६.	मुख मयंक अवलोकि, रंक रजनीपति लाजै	११
१७.	रे मन भज-भज दीनदयालु	११
१८.	पारस जिन चरन निरख, हरष यों लहायो	१२
१९.	बामा घर बजत बधाई	१२
२०.	आजु मैं देखे पास जिनेन्दा	१३
२१.	जपो जिन पार्श्वनाथ भवतार	१४
२२.	करम-भरम जग-तिमिर-हरन-खग	१४
२३.	पारस-पद-नख-प्रकाश, अरुन वरन ऐसो	१५
२४.	शेष सुरेश नरेश रटैं तोहि	१५
२५.	इन्द्रादि जन्म-स्नान जिनके, करन कनकाचल चढ़े,	१६
२६.	देहो जिनराज देव सेव मोहि आपनी	१६

२७. प्रभु अधम उधारक तुम हो सही १७
२८. सरन मोहि पास जिनंद सरन की १८
२९. दोउ विधि नीकी आय बनी १८
३०. श्री अरिहंत सरन तेरी आयो १९
३१. बारी-बारी जी, बामा जीरा नंदन, करम निकंदन १९
३२. प्रभु तेरी मूरति रूप बनी २०
३३. चितामणि स्वामी संचा साहिब मेरा २१
३४. हां जी मोहि तारो सइयां हो पारस २२
३५. मेरे तौ यही चाव है निति दरसण पाऊं २२
३६. बधाई भई है पारस को हो जी २२
३७. तारण तरण जहाज, स्वामी महाराज २३
३८. स्वामी पास प्रभु थानें पूज्या जी पातिग जाय २३
३९. बिना प्रभु पारसके देखे मेरा दिल बेकरारी है २४
४०. उपसर्ग-हरन तुम नाम अमोल, २५
४१. इन्द्र धरणिन्द्र चक्रवर्ति की विभूति आदि २६
४२. पारस प्रभु तुम नाम जो सुमरै मन-वच-काय २६
४३. ज्ञानपुञ्ज अद्भुत अनौपम, २७
४४. देखो रीति पतंग को २८
४५. सुद्ध ध्यान मैं लीन व्रती चित अहिनिसि वरतै २८
४६. किसके हरिहर किसके ब्रह्मा किसकै दिल मैं राम २९
४७. प्रभु मेरे तुमकुं ऐसी न चहीए, २९
४८. बंदूं पारसराय कुं मन-वच-काय करौं जी, ३०
४९. करिये पारस-ध्यान, पाप कटें भव-भव के ३१
५०. मूरति श्री पासदेव की ३१
५१. जय-जय सुरपति पूज्यपाद ३२
५२. अरिहंत भज शिवदातारं नाशित मिथ्या तिमिरमपारं ३२
५३. भोर भयो मन-वच-तन करि पारस चरणां चित ल्यावो ३३
५४. तुम गरीब के निवाज मैं गरीब तेरो ३४
५५. गहला रे नर गहला है ३४
५६. मोहनी मोपै टोना कीनां हे, ३५
५७. सामरिया के नाम जपे तैं ३५
५८. गौडी प्रभु पारस पूजिये हो ३६
५९. हौ बलि पास सिवदातार ३६
६०. जिन्ह के वचन उर धारत जुगल नाग ३७

६१. जनम-जलधि-जलजान जान जनहंस-मानसर ३८
६२. पास अनादि अविद्या मेरी ३८
६३. जपि माला पारसनाथ की ३९
६४. हमको प्रभु श्रीपार्स सहाय ४०
६५. भोर भयो भज पारसनाथ ४०
६६. पंच परम गुरु सुमरौ, सारद गुरु अवधारौ ४१
६७. सो जयो पास जिनेन्द्र पातक हरन जग चूड़ामनी ४२
६८. लागी मैंडी प्रीति तु साडे नाल ४३
६९. ऐसो प्रभु पाय विसारत क्यों रे ४३
७०. निरखि छवि आनंद भयो छै अमंद ४४
७१. प्रभु थांका जी दरस को ४४
७२. श्री जिनवर म्हांनै लागै प्यारा ४५
७३. श्री जिनराय दयानिधि नामीं ४५
७४. तब इन्द्रादि लगे थुति करन ४६
७५. प्रात भयो सुमरि देव पुण्यकाल जात रे ४७
७६. वा घड़ी कौन सी हो देखूं पारस नैनां ४८
७७. इततैं निकसीं सुमति राधिका उततैं पारस राई ४८
७८. भौंदू धन-हित अध करै ४९
७९. पारस प्रभु बिसारि कैं हौं भरम्यौ चिरकाल ४९
८०. जाप जपौ भावै ताप तपौ ५०
८१. मोहि लगनि लागी हो ५१
८२. अरे तोकौं कैसें करि समझाऊँ ५१
८३. सुष संपति दायक सुर-नर-नायक ५२
८४. तुम सेवो भविजन पास जिनंद कौं ५२
८५. हो पारस जिन भविकंज बोध दिन ५३
८६. बहुत जतन समझावन जियकुं ५४
८७. मोह मीर मतवालो, काल कोतवाल कालो ५४
८८. स्वामी बीनती एक करै तुम्ह दास ५५
८९. अश्वसेन नृप पिता देवि वांमा सुमाता ५६
९०. जय विश्वसेन कुल गगन चंदहूँ प्रणमूं वामादेवि नंद ५६
९१. मुदित महद्धिक देवन साथ ५७
९२. चेतन अपनो रूप निहारो ५८
९३. मोह सत्रु बलवान है ५८
९४. अहो पास जिनराजदास ५९

९५. अहो नगर में लोक अति करै जो उछाह ५९
९६. मैं अजान मतिहीन भेद नहिं पाइयौ ६०
९७. मन मेरो उमग्यो जिन गुण गायबो ६१
९८. जहाँ है संजोग तहाँ होत है वियोग सही ६२
९९. सुनदा क्यों नहिं वे गुणधार पुकार ६२
१००. जन्मे जिनराज जब हरषे तीन लोकहु ६३
१०१. राम कहो, रहमान कहो कोऊ ६३
उवसग्गहर स्तोत्त ६४
पार्श्वनाथ स्तोत्र ६५
पार्श्वनाथ स्तुति ६६

■

श्री पार्श्वजिन-स्तवन

तमाल-नीलैः सघनुस्तडिद्गुणैः
प्रकीर्ण-भीमाशनि-वायु-वृष्टिभिः ।
बलाहकैर्वैरि-वशैरुपद्रुतो
महामना यो न चचाल योगतः ॥ १ ॥

बृहत्फणा-मण्डल-मण्डपेन यं
स्फुरत्तडित्पिङ्ग-रुचोपसर्गिणम् ।
जुगूह नागो धरणो धराधरं
विराग-संध्या-तडिदम्बुदो यथा ॥ २ ॥

स्व-योग-निस्त्रिंश-निशात-धारया
निशात्य यो दुर्जय-मोह-विद्विषम् ।
अवापदार्हन्त्यमचिन्त्यमद्भुतं
त्रि-लोक-पूजातिशयास्पदं पदम् ॥ ३ ॥

यमीश्वरं वीक्ष्य विधूत-कल्मषं
तपोधनास्तेऽपि तथा बुभूषवः ।
वनौकसः स्व-श्रम-वन्ध्य-बुद्धयः
शमोपदेशं शरणं प्रपेदिरे ॥ ४ ॥

स सत्य-विद्या-तपसां प्रणायकः
समग्रवीरुग्मकुलाम्बरांशुमान् ।
मया सदा पार्श्वजिनः प्रणम्यते
विलीन-मिथ्यापद-दृष्टि-विभ्रमः ॥ ५ ॥

—आचार्य समन्तभद्र

मोहमहातमदलन दिन, तप लछमीभरतार।
ते पारस परमेश मुझ, होहु सुमतिदातार॥
वामानन्दन कल्पतरु, जयो जगतहितकार।
मुनिजन जाकी आश करि, जांचैं शिवफलसार॥

—भूधरदास : पार्श्वपुराण

[१]

जय जय रिषब आदि जोगीश, जय जय अजित अषै पद ईस ।
जय जय संभव संभव हरी, जय अभिनन्दन आनंद करी ॥
जय जय सुमति सुमति के दांनि, जय जय पदम परम रस षांनि ।
जय जय सुपासु काटन जग पासि, जय जय चंद परम सुष रासि ॥
जय जय नमि दमि दारिद रोर, जय जय नेमि मदन मद मोर ।
जय जय पारस पावन नाम, जय जय वर्द्धमान सिवधाम ॥
इकमैं इक गुन कीयो बषान, ए सब मैं सब ही परवान ।
जैसे दीपग होंहि अनेक तमहर उदौ करन विधि एक ॥
स्तुति कही मनराम यह अपनी बुधि उनमान ।
दोष सबै कीज्यौ षिमां तुम अपार गुन थांन ॥

[मनराम, मनराम विलास, ह. लि. प., जयपुर]

[१] प्रथम योगीश्वर ऋषभदेवकी जय हो, अक्षय पदके ईश अजित नाथ की जय हो। संसारका प्रत्येक वैभव त्यागने वाले संभवनाथकी जय हो, परमानन्द भोगनेवाले अभिनन्दन नाथकी जय हो। सुमतिके देनेवाले सुमतिनाथकी जय हो, परमरस की खान पदमप्रभुकी जय हो। संसारका जाल काटनेवाले सुपार्श्वनाथकी जय हो, परम सुखके धनी चन्द्रप्रभुकी जय हो। भयावह दारिद्रयका दमन करनेवाले नमिनाथकी जय हो, मदनके भी मदको मरोड़नेवाले नेमिनाथकी जय हो। पवित्र जिनका नाम है ऐसे पार्श्वनाथकी जय हो, शिवधामको प्राप्त करनेवाले वर्द्धमानकी जय हो।

जैसे नाना प्रकारके दीपक अन्धकारका हरण करते हैं, किन्तु प्रकाश करने-की विधि सबमें समान रूपसे एक-सी होती है, वैसे ही यहाँ यद्यपि एक तीर्थङ्करमें मैंने एक गुणका बखान किया है, किन्तु सबमें ये सब गुण हैं।

कवि मनरामका कथन है कि हे प्रभु! मैंने अपनी लघु बुद्धिके अनुसार यह स्तुति की है, आप अपार गुणोंसे संयुक्त हैं, अतः हमारे सब दोषोंको क्षमा कीजिए।

[२]

श्री रिषभ जी को ध्यान करो निसि दिना रे भाई
नेक के निहारत अनेक पाप जाई।
पीतवरण चित्तहरण कंचन कंचन छवि छाई
धनुष पंचसै प्रमान तन की ऊँचाई ॥ श्री रिषभ जी० ॥
भोग त्यागि जोग लियो षडासन ठहराई
लंबित कर कलपतरु सुसाषा उपमाई।
नासा पर नैनन को दिष्टि निश्चलाई
आप चिदानन्द रूप माहिं लौ लगाई ॥ श्री रिषभ जी० ॥
शुक्लध्यान अग्नि जग्यो अग्नि काष्ठ ओर वग्यो
दिवस मध्य सूर मानौं विसफुलिंगाई।
सुभ कल्याण करि सुरेश निज थानक जाई
जगत नमत चरण कमल सीस कौं नवाई ॥ श्री रिषभ जी० ॥

[जगतराम, पदसंग्रह, ह. लि. प्र.; बड़ौत]

[३]

आदि तीर्थंकर देव जिनेसुर नाभि के नंद महासुषदाई री
अधम उधारक भविदधि तारक वदन कमल देषत अघजाई री ॥
आदि तीर्थंकर० ॥

---

[२] हे भाई ! तुम रात-दिन आदि तीर्थङ्कर श्री रिषभदेवजीका ध्यान किया करो, क्योंकि उनकी ओर थोड़ा-सा ही देखनेपर अनेक पाप दूर हो जाते हैं। उनका चित्तको हरनेवाला पीतवर्ण है, मानो उसीको प्राप्त कर कंचनका अणु-अणु इतना सुन्दर आभासित होता है। उनके शरीरकी ऊँचाई पाँच सौ धनुष प्रमाण है। उन्होंने असीम भोग त्याग कर योग धारण किया है और खड़े होकर ही तप-साधना की है। उनके लम्बे-लम्बे हाथ कल्पवृक्षकी सुन्दर शाखाओंके समान हैं। उन्होंने अपने नेत्रोंकी दृष्टि नासिकाके अग्रभागपर टिका रखी है और अपने चिदानन्द रूपमें लौ लगा ली है। उनके शुक्ल ध्यानकी अग्निमें कर्मरूपी काठ जलकर भस्म हो गये हैं। उनकी ध्यानाग्नि ऐसी प्रतीत होती है जैसे मानो दिनके मध्य सूर्य स्फुलिङ्गें छोड़ रहा हो।

भगवान्‌के पवित्र जन्म कल्याणकको सम्पन्न कर इन्द्र अपने स्थानपर चला गया। जगतराम सिर झुकाकर भगवान्‌के चरण-कमलोंको नमस्कार करते हैं।

[३] महाराज नाभिरायके पुत्र—आदि तीर्थङ्कर जिनेश्वरदेव महान् सुख देने वाले हैं। वे अधमोंका उद्धार करनेवाले और संसाररूपी समुद्रसे पार कर देने वाले हैं। उनके मुख-कमलका दर्शन करते ही पाप दूर हो जाते हैं।

भ्रमत-भ्रमत बहु काल चतुरगति कहूँ न थिरता पाई।
चरण-कमल कौ ध्यान धरत ही ततछिन सिवथान वसाई री ॥
आदि तीर्थंकर० ॥

सकल विकार रहित सुभ मूरति आरति हरत सब जीव छकाई।
आये हरि प्रभु सरन तिहारी रतनत्रय मारग सुबताई री ॥
आदि तीर्थंकर० ॥

[नवल, पदसंग्रह, ह. लि. प्र. महावीरजी]

[४]

शिवरमणी जादू डारो
वैरागी भयौ प्रभु म्हारो।
तोरणतैं रथ फेरि दियो प्रभु
पशु-फंद निरवारो ॥ शिवरमणी० ॥
अध्रुवादि भावन भावत
लौकांतिक सुजस उचारो।
भूषण वसन डारि गिरि ऊपर
पंच महाव्रत धारो ॥ शिवरमणी० ॥
पंचसमिति त्रयगुप्ति सहित जु
सुख वारिधि विस्तारो।
निजानंद अनुभव रस में
छकि भयौ जगतैं न्यारो ॥ शिवरमणी० ॥

यह जीव चारों गतियोंमें सतत घूमता रहा, उसे कहीं स्थिरता नहीं मिली, किन्तु आदि प्रभुके चरण कमलका ध्यान धारण करते ही—तत्काल उसे मोक्ष प्राप्त हो गया।

हे प्रभु! आपकी पवित्र मूर्ति सम्पूर्ण विकारोंसे रहित है और प्राणियोंके दुःखोंको नितान्त दूर करनेवाली है। जब इन्द्र आपकी शरण आये, आपने उन्हें रत्नत्रय-का श्रेष्ठ मार्ग बता दिया।

[४] राजमतीका कथन है कि हमारे प्रभु नेमीश्वर पर शिवरमणीने जादू कर दिया है, इसी कारण वे वैरागी हो गये हैं। प्रभु विवाह करने आये थे, किन्तु इस जादूके कारण ही उन्होंने वन्दनवार–विवाह-द्वारसे अपने रथको फेर दिया और भोजनार्थ कटनेके लिए जो पशु बँधे थे, उनका बन्धन खोल दिया। स्वयं वैराग्य धारण कर लिया।

उसी समय अध्रुवादि भावनाओंको भाते हुए लौकान्तिक देवोंने प्रभु नेमीश्वरके सुयशका उच्चारण किया। प्रभुने वस्त्राभूषणोंको उतार फेंका और गिरिनार पर जाकर

काज होय उन के ढिग सजनी
उन बिन कोउ न हमारो।
मानिक जग असार लखि करि
रजमति शरण विचारो॥ शिवरमणी०॥

[मानिकचन्द, पदसंग्रह, ह. लि. प्र., बाबा दुलीचन्द भण्डार]

[५]

कैसे धरि रहु री माई
यह दिन नेम पिया गिरि जात॥ कैसे०॥
जाके चरन कमल नख ऊपर
कोटिक काम लजात॥ कैसे०॥
सांवरो सूरति देखन कारन
कल न परत दिन रात।
अनुरागी जिय मेरो उन सौं
ज्यौं षटपद जलजात॥ कैसे०॥
हमकौं त्यागत ढील न कीन्ही
शिवतिय अधिक सुहात।
मैं न तजौंगी जोधा क्यूं हूं
स्याम सलोनो गात॥ कैसे०॥

[जोधराज, पदसंग्रह, ह. लि. प्र., जयपुर]

पंचमहाव्रत धारण कर लिये। उन्होंने पंचसमिति और त्रयगुप्तियाँ लेकर अपने सुख-रूपी समुद्रका विस्तार किया। इस भाँति निजानन्द अनुभव रसमें छक कर वे समूचे संसारसे न्यारे हो गये।

राजीमतीका कथन है कि हे सखी! उनके पास ही हमारा काम बन सकता है। उनके बिना हमारा कोई नहीं है। कवि मानिकके अनुसार संसारको असार देखकर ही राजीमतीने प्रभुकी शरणमें जानेका विचार किया।

[५] राजीमतीने कहा कि हे भाई! इस दिन मैं घर कैसे रह सकती हूँ, जबकि पिया नेमीश्वर तप करने गिरिनारपर जा रहे हैं। उनके चरण-कमलों और नखोंके ऊपर करोड़ों कामदेव लजा जाते हैं। उनकी साँवली सूरत देखनेके लिए मुझे दिन-रात चैन नहीं पड़ता। मेरा हृदय उनसे ऐसे अनुराग करता है, जैसे भौंरा कमलसे। उन्होंने हमको छोड़ते हुए जरा भी ढील नहीं की, अर्थात् थोड़ी भी देर नहीं लगायी, उन्हें शिवतिय (मोक्ष-वधू) अधिक सुहाती है—अच्छी लगती है, किन्तु मेरी भी प्रतिज्ञा है कि मैं उस श्याम सलोने शरीरवालेको किसी भी प्रकार छोड़ूंगी नहीं।

[६]

पतित पावन नाम तेरो
अहो प्रभु कर्म घेर् यो तन मेरो।
हौं पतित तुम पतित उधारन
लाज विरद को वेरो ॥ पतित० ॥
और पतित अनेक उधारे
अर्द्धनाम कियो जु निवेरो।
यातैं सरन पारस अब तेरो
तू साहिब हौं चेरो ॥ पतित० ॥

[जगतराम, पदसंग्रह, ह. लि. प्र., बड़ौत]

[७]

प्रभु के दरसन कों हम आये
आवत ही दुषदुंद नसाये।
देषि दरस दोउ नैन सिराये
निरषि-निरषि पुनि-पुनि ललचाये ॥ प्रभु० ॥
सीस धारि करि चरणन नाये
नमत-नमत तेउ न अघाये।
हियें हरषि तन अंग न माये
तब सुर भरि रसना गुण गाये ॥ प्रभु० ॥
अंग-अंग तन पुलकि नचाये
अब सब काज सरे मनभाये।

---

[६] हे प्रभु ! तुम्हारा नाम पतितपावन है और मुझे कर्मोंने घेर लिया है। मैं पतित हूँ, तुम पतितोंका उद्धार करनेवाले हो, यह तुम्हारी प्रतिज्ञाके निर्वाहका समय है। तुमने अनेक पतितोंका उद्धार किया है, तुम्हारे आधे नामने ही उन्हें भव-उदधिके पार लगा दिया। इसी कारण हे पार्श्वप्रभु ! मैं आपकी शरण में आया हूँ, आप साहिब हैं और मैं आपका दास हूँ।

[७] हम प्रभुके दर्शनार्थ आये हैं, आते ही हमारे दुःख-द्वन्द्व नष्ट हो गये। प्रभुको देखकर हमारे दोनों नेत्र शीतल हो गये और ज्यों-ज्यों देखते हैं और अधिक देखनेको ललचाते हैं। तृप्त नहीं होते।

सिरको पकड़कर बारम्बार प्रभुके चरणोंमें झुकाते हैं, किन्तु यह अघाता नहीं, और-और झुकना चाहता है। हृदयको इतनी प्रसन्नता मिली है कि अंग शरीरमें समाते नहीं, तब जिह्वा सुर भर-भरकर प्रभुके गुण गा उठती है। अब मनभाये सब

जगतराम सेवग सरसाये
तीनलोकपति पारस पाये ॥ प्रभु० ॥

[जगतराम, पदसंग्रह, ह. लि. प., बधीत]

[८]

मैं तो नरभव बादि गंवायो ।
न कियो जप-तप-व्रत विधि सुंदर
काम भलो न कमायो ॥ मैं तो० ॥
विकट लोभतें कपट कूट करी
निपट विषे लपटायो ।
विकट कुटिल सठ संगति बैठो
साधु निकट विघटायो ॥ मैं तो० ॥
कृपण भयो कछु दान न दीनो
दिन-दिन दाम मिलायो ।
जब जोवन जंजाल पड्यो तब
पर-त्रिया तनु चित लायो ॥ मैं तो० ॥
अंत समै कोउ संग न जावत
जूठहि पाप लगायो ।
कुमुदचन्द कहें चूक परी मोही
पारस पद-जस नहिं गायो ॥ मैं तो० ॥

[कुमुदचन्द, पदसंग्रह, ह. लि. प., जयपुर]

काम पूरे हो गये है और शरीर प्रसन्न होकर अपने अंग-अंगको नचा रहा है। कवि जगतरामका कथन है कि तीन लोकपति पारस प्रभुको प्राप्तकर यह सेवक सब प्रकारसे फल-फूल रहा है।

[८] भक्त कवि कुमुदचन्दका कथन है कि मैंने अपना नर-भव व्यर्थ ही खो दिया—न तो जप किया, न तप और न विधि-पूर्वक व्रत ही धारण किये, अर्थात् कोई अच्छा काम नहीं किया।

भयंकर लोभके कारण कपट-भरी कूट चातुरी बरतता रहा और विषय-भोगोंमें नितान्त निमग्न बना रहा। मैं विकट, कुटिल और मूर्खोंकी संगतिमें बैठा, साधुओंके निकट भी नहीं गया। कंजूस बनकर मैंने कुछ भी दान नहीं दिया, प्रतिदिन रोकड़ा मिलाता रहा। यौवनके जालमें पड़कर मैंने सदैव दूसरेकी स्त्रीमें मन लगाया। अन्त समय कोई साथ नहीं जाता, मैं व्यर्थ ही पाप कमाता रहा। कुमुदचन्द कहते हैं कि मुझसे भूल हो गयी, मैंने पारस प्रभुके चरणोंका यश नहीं गाया।

[९]

काहे को देश-दिशांतर धावत, काहे रिझावत इंद-नरिंद ।
काहे को देवि औ देव मनावत, काहे को शीस नवावत चंद ॥
काहे को सूरज सों कर जोरत, काहे निहोरत मूढ मुनिन्द ।
काहे को शोच करै दिन रैन तू, सेवत क्यों नहिं पार्श्व जिनंद ॥

भगवतीदास 'भैया', ब्रह्मविलास, बम्बई]

[१०]

आनंद को कंद किधों पूनम को चंद किधों,
देखिए दिनंद ऐसो नंद अश्वसेन को ।
करम को हरै फंद भ्रम को करै निकंद,
चूरै दुख द्वन्द सुख पूरै महाचैन को ॥
सेवत सुरिंद गुन गावत नरिंद भैया,
ध्यावत मुनिंद तेहू पावें सुख ऐन को ।
ऐसो जिन चन्द करे छिन में सुछंद सु तो
ऐक्षित को इंद पार्श्व पूजों प्रभु जैन को ॥

[भगवतीदास 'भैया', अहिछिति पार्श्वनाथ स्तुति, ब्रह्मविलास]

---

[९] हे जीव ! तू देश-देशान्तरोंमें क्यों दौड़ता फिरता है, क्यों इन्द्र और नरेन्द्र-को रिझानेकी कोशिश करता है । तू क्यों देवी और देवताओंको मनाता है, क्यों चन्द्रको सिर झुकाता है । तू क्यों सूर्यके हाथ जोड़ता है—नमस्कार करता है, क्यों मूर्ख मुनीन्द्रोंके निहोरे करता है । तू दिन-रात चिन्ता क्यों करता रहता है । तू पार्श्व जिनेन्द्रकी सेवा क्यों नहीं करता । अर्थात् एक पार्श्व जिनेन्द्रकी सेवा करनेसे तू सब चिन्ताओंसे निर्मुक्त हो सकता है ।

[१०] अश्वसेनके नन्द (पुत्र) ऐसे दिखाई पड़ते हैं जैसे कि मानो आनन्द वहींसे जन्म लेता है, जैसे कि मानो वे पूर्णमासीके चन्द्र ही हैं, जैसे कि मानो वे सूर्य हैं । वे कर्म के फन्देको हर लेते हैं, अर्थात् काट-कूटकर दूर कर देते हैं, भ्रमको तो जड़मूलसे नष्ट करनेमें समर्थ हैं, दुःखोंके समूहको चूर-चूर कर डालते हैं और पूर्ण सुख देकर महाशान्ति प्रदान करते हैं । 'भैय्या' भगवतीदासका कथन है कि देवोंके इन्द्र उनकी सेवा करते हैं, मानवोंके राजा-महाराजा उनके गुन गाते हैं और जो बड़े-बड़े मुनि उनका ध्यान लगाते हैं, उन्हें सतत सुख मिलता है । ऐसा जिनचन्द्र जो क्षण-भरमें सुख-शान्ति प्रदान करता है, वह तो ऐक्षितका इन्द्र पार्श्व जैन प्रभु है, मैं उसकी पूजा करता हूँ ।

[११]

नरेन्द्रं फणीन्द्रं सुरेन्द्रं अधीसं
सतेन्द्रं सु-पूजैं भजैं नाय शीसं ।
मुनीन्द्रं गणेन्द्रं नमो जोडि हाथं
नमो देवदेवं सदा पार्श्वनाथं ॥ १ ॥
गजेन्द्रं मृगेन्द्रं गह्यो तू छुड़ावै
महा आगतैं नागतैं तू बचावै ।
महावीर तैं युद्ध में तू जितावै
महारोग तैं बँधतैं तू छुड़ावै ॥ २ ॥
तुही कल्पवृक्षं तुही कामधेनुं
तुही दिव्यचितामणि नाग एनं ।
पशु नर्क के दुःख तैं तू छुड़ावै
महास्वर्ग तैं मुक्ति में तू बसावै ॥ ३ ॥

[धानतराय, पार्श्वनाथस्तोत्र, पदसंग्रह, कलकत्ता]

[१२]

जै बोलो पास जिनेश्वर की ॥
जुगल नाग जिहि जरता राख्या,
पदवी दी है फणीश्वर की ॥
बालपणें जिहि दीख्या लीनी,
लक्ष्मी छोड़ि नरेश्वर की ॥

---

[११] नरों, नागों और देवोंके शतशः इन्द्र शीश झुकाकर जिसकी पूजा-आराधना करते हैं, तथा बड़े-बड़े मुनि और गणधर जिसे हाथ जोड़कर नमस्कार करते हैं, ऐसे देवोंके देव पार्श्वनाथको सदा नमस्कार हो ।

हे प्रभु ! मृगेन्द्र (सिंह) के द्वारा पकड़े गये गजराजको तूने ही छुड़ाया था, अग्नि-ज्वालामें जलते नाग-दम्पतिको भी तूने ही बचाया था । युद्धमें महान् वीर व्यक्तिसे भी तू ही जिताता है और भयंकर रोगके बन्धनको भी तू ही काटता है ।

हे भगवन् ! तू ही कल्पवृक्ष है, तू ही कामधेनु है, तू ही दिव्य चिन्तामणि और तू ही नाग-दम्पति है (धरणेन्द्र-पद्मावती) । तू पशुयोनि तथा नरकके दुःखोंसे छुड़ाता है और तू ही महान् स्वर्गसे आगे मोक्षमें ले जाकर बसाता है ।

[१२] जिनेश्वर पार्श्वनाथकी जय बोलो—अर्थात् उनकी जय-जयकार करो, जिन्होंने जलते हुए नाग-जुगलको बचाया और उन्हें फणीश्वरकी पदवीसे सुशोभित किया । उन्होंने राजाके वैभवको छोड़कर बचपनमें ही दीक्षा ले ली थी । उन्होंने

केवलज्ञान उपाय भयो है,
जो ही सिद्धि मुनीश्वर को ॥
कीर्त्तिसुरेन्द्र नमैं तसु पद कूं,
नितप्रति पूजि गणेश्वर की ॥

[सुरेन्द्रकीर्त्ति मुनीन्द्र, प्राचीन गुटका, महावीर जी]

[१३]

जगपति त्योरा ला महाराज
बिड़द विचारो ला महाराज ॥
मैं अपराध अनेक किया जो,
माफ करो गुणराज ॥
और देवता सब ही देख्या
खेद सहो बिन काज ॥
थाको जस तो सुर-नर गावै,
पावै पद सिव-काज ॥
देवाब्रह्म चरणां चित ल्यावै,
सेवग करि हित काज ॥

[देवाब्रह्म, पार्श्वजिनस्तोत्र, ह० लि० प्र०, महावीर जी]

[१४]

प्रणमि चरण-जुग पास जिनराज जू के,
विघिन कै चूरण हैं पूरण हैं आस के ।

केवलज्ञान उपात्त कर लिया था जो मुनीश्वरोंका लक्ष्य था । सुरेन्द्रकीर्ति कहते हैं कि नित्यप्रति गणेश्वरकी पूजा करके मैं उन प्रभुके चरणोंमें सिर झुकाता हूँ ।

[१३] हे जगपति ! अपना विरद विचारो न ! हमें तारो न ! अर्थात् अपना तारनेका विरद विचारो—अपनी प्रतिज्ञापर विचार करो, फिर तो हमें तार ही दोगे । हे गुणराज ! हमने बहुत अपराध किये हैं, उन्हें क्षमा करो, क्योंकि तुम गुणोंके प्रतीक हो । और सब देवताओंको देख लिया—उनकी सेवा कर व्यर्थ ही कष्ट सहन किया, अर्थात् उनकी सेवाका परिश्रम व्यर्थ गया । तुम्हारा यश तो सुर और नर सभी गाते हैं, उन्हें शिवपद प्राप्त हो जाता है । हे प्रभु ! देवाब्रह्म तुम्हारे चरणोंमें अपना चित्त लगाता है । आप सेवकका कल्याण करो ।

[१४] पार्श्व जिनराजके दोनों चरणोंमें—जो विघ्नोंको नष्ट करते हैं और

दिढ दिलमांझि ध्यान धरि श्रुतदेवता को,
सेवे तें संपूरत हैं मनोरथ दास के ॥
ज्ञानदृगदाता गुरु बड़े उपगारी मेरे,
दिनकर जैसे दीपै ज्ञान परकास के ।
इनके प्रसाद कविराज सदा सुखकाज,
सवीये बनावत हैं भावना विलास के ॥

[लक्ष्मीवल्लभ, भावनाविलास, ह. लि. प्र., दिल्ली]

[१५]

तुम प्रभु अधम अनेक उधारे, ढील कहा हम बारो जी ॥
तारन तरन विरद सुन आयो, और न तारणहारो ।
तुम बिन जनम मरण दुख पायो, कर्म न आवै पारो जी ॥ तुम प्रभु० ॥
मो गुण अवगुण प्रति मत जावो, अपनी ओर निहारो ।
अंजन-से पल में ही सुतारे, और कहा अधिकारो जी ॥ तुम प्रभु० ॥
मैं बिनती करहूँ त्रिभुवनपति, मेरो कारिज सारो ।
चंदखुस्याल सरन चरनन की सो भवपार उतारो जी ॥ तुम प्रभु० ॥

[खुशालचन्द काला, पार्श्वजिनस्तुति, ह. लि. प्र., बड़ौत]

आशाओंको पूरते हैं, प्रणाम कर और दिलमें उनका दृढ़ता-पूर्वक ध्यान धारण कर। श्रुतदेवताकी सेवा करनेसे दासके मनोरथ पूरे हो जाते हैं। मेरे गुरु बड़े उपकारी हैं—वे ज्ञानरूपी नेत्रोंको प्रदान करते हैं और सूर्यके समान ज्ञान प्रकाशसे दैदीप्यमान रहते हैं। इन्हींके प्रसादसे कविराज लक्ष्मीवल्लभ सुख प्राप्त करनेके लिए 'भावना-विलास' के सवैये बनाते हैं। 'भावना-विलास' एक ग्रन्थका नाम है।

[१५] भक्त विनती करते हुए कहता है कि हे प्रभु! तुमने अनेक अधमोंका उद्धार किया है, फिर हमारी बार ही ढील क्यों कर रहे हो। आपका विरद तारनतरन है, अर्थात् आपकी प्रतिज्ञा दूसरोंको तारनेकी है। इसी विरदको सुनकर मैं आपके पास आया हूँ, और कोई ऐसा तारनहार नहीं है। मैंने अभी तक तुम्हारी भक्ति नहीं की, इसी कारण जन्म-मरणके दुख भोगता रहा और कर्मोंको पार नहीं कर सका। आप मेरे गुण और अवगुणोंपर मत जाइए—उनकी नाप-तौल न कीजिए, उनका लेखा-जोखा न लगाइए, आप तो अपनी ओर देखिए कि आपने हर किसीको तारनेकी प्रतिज्ञा की है। आपने अञ्जन चोर-से पापीको पल-भरमें तार दिया, इससे अधिक और क्या हो सकता है। हे तीनों लोकोंके पति! मैं विनती करता हूँ कि मेरा कार्य सम्पन्न कर दो। खुशालचन्द आपके चरणोंकी शरणमें है, उसे भवसे पार उतार दो।

[१६]

मुखमयंक अवलोकि, रंक रजनीपति लाजै।
नाम-मंत्र परताप, पाप पन्नग डर भाजै।
जय अश्वसेन कुलचन्द जिन, शक्र-चक्र पूजत चरन।
तारो अपार जलधि तें, तुम तरंड तारन तरन॥
बाघ सिंह वश होंहि, विषम विषधर नहिं डंकै।
भूत प्रेत वैताल, व्याल वैरी मन नहिं शंकै।
शाकिनि डाकिनि अगिनि, चोर नहिं भय उपजावें॥
रोग सोग सब जाहिं, विघन नेरे नहिं आवें।
श्री पार्श्वदेव के पद कमल, हिये धरत निज एक मन।
छूटें अनादि बंधन बंधे, जौन कथा विनसै विघन॥

[भूधरदास, पार्श्वपुराण, बम्बई]

[१७]

रे मन भज-भज दीनदयालु,
जाको नाम लेत इक छिन मैं, कटैं कोट अघ जाल॥रे मन०॥
इन्द फनिन्द चक्रधर गावैं, जाको नाम रसाल।
जाको नाम ज्ञान परकासै, नासै मिथ्या जाल॥रे मन०॥

---

[१६] भगवान् पार्श्वनाथका मुखचन्द्र देखकर बेचारा चन्द्र लजा जाता है। उनके नाम-मन्त्रके प्रतापसे पापरूपी नाग डर कर भाग जाता है। इसका अर्थ है कि पार्श्वप्रभुका नाम जपनेमें इतना बल है कि पाप टिक नहीं पाते। वाराणसी के महाराज अश्वसेनके कुलके लिए चन्द्रके समान जिनेन्द्र पार्श्वनाथकी जय हो। अनेक इन्द्र उनके चरणोंकी पूजा करते हैं। ऐसे हे प्रभु! तुम जीवोंको इस भव-समुद्रसे तारनेमें सर्वोत्कृष्ट हो, मुझे भी इस अपार सागरसे पार लगा दो। तुम्हारी कृपासे बाघ और सिंह वशमें हो जाते हैं, भयंकर नाग भी डस नहीं पाते। भूत, प्रेत, बैताल और व्याल जैसे शत्रुओंसे भी मनमें शंका उत्पन्न नहीं होती। शाकिनी, डाकिनी, आगिनी और चोरका डर नहीं लगता। रोग-शोक सब पलायन कर जाते हैं और विघ्न समीप फटक भी नहीं पाते। उन पार्श्वदेवके चरण कमलोंको जो एकनिष्ठ होकर हृदय में धारण करता है, उसके अनादि काल से बंधे बन्धन छूट जाते हैं। उनकी कथा से विघ्न विनष्ट हो जाते हैं।

[१७] रे मन! तू बारम्बार उस दीनदयालु पार्श्वप्रभुको भज, अर्थात् उन का भजन कर, जिसका नाम लेते ही एक क्षण में करोड़ों अघजाल—पाप-चक्र कट जाते हैं। जिसके रसीले नामको इन्द्र (देवराज), फणीन्द्र (नागराज) और चक्रधर

जाके नाम समान नहिं कछु, ऊरध मध्य पताल ।
सोई नाम जपी नित द्यानत, छोड़ि विषय विकराल ॥रे मन०॥

[द्यानतराय, द्यानतपद-संग्रह, कलकत्ता]

[१८]

पारस जिन चरन निरख, हरष यों लहायो ।
चितवत चन्दा चकोर ज्यों, प्रमोद पायो ॥टेक॥
ज्यों सुन घनघोर शोर, मोर हर्ष को न छोर ।
रंक निधि समाज राज पाय मुदित थायो ॥पारस०॥
ज्यों जन चिर छुधित कोय, भोजन लखि सुखित होय ।
भेषज गदहरन पाय, सहज सुहरषायो ॥ पारस० ॥
वासर भयो धन्य आज, दुरित दूर परे भाज ।
शांत दशा देख महा, मोहतम पलायो ॥ पारस० ॥

[दौलतराम, दौलतपद संग्रह, कलकत्ता]

[१९]

बामा घर बजत बधाई, चलि देखि री माई ॥ टेक ॥
सुगुनरास जग-आस भरन तिन, जने पार्श्व जिनराई ।

(चक्रवर्त्ती) राजा भी गाते हैं । जिसका नाम ज्ञान-प्रदाता है और जिस के नामसे मिथ्या-जाल नष्ट हो जाता है । जिसके नामके समान, ऊर्ध्व, मध्य और पाताल लोकमें अन्य कुछ नहीं है, अर्थात् जिस के नामकी तुलना नहीं हो सकती । कवि द्यानतराय कहते हैं कि भयानक विषय-वासनाओंको छोड़ कर मैं वही नाम प्रतिदिन जपता हूँ ।

[१८] पार्श्वजिन के चरण देखकर ऐसा आनन्द प्राप्त हुआ, जैसा कि चन्दाको देखते हुए चकोरको मिलता है, जैसा कि बादलके बहुत अधिक शोरको सुन कर मोरके हर्ष का पारावार नहीं रहता और जैसी कि किसी रंकको राज्य वैभव प्राप्त कर अत्यधिक प्रसन्नता होती है । यह हर्ष ऐसा ही है जैसा कि चिरकालसे भूखे किसी व्यक्तिको भोजन देखकर होता है और जैसा कि कोई रोगी व्यक्ति रोग-नाशक औषधि पा कर सहज रूपमें ही सुखी हो जाता है । प्रभुकी महाशान्त दशा देख कर आजका दिन धन्य हुआ, पाप दूर भाग गये और मोह रूपी अन्धकार भी पलायन कर गया ।

[१९] एक सखी दूसरीसे कहती है कि हे माई ! चल, देखें आज बामादेवी-के घर बधाई बज रही है । उन्होंने अनेकानेक श्रेष्ठ गुणोंसे सम्पन्न और जगकी

श्री ह्री धृति कीरति बुद्धि लछमी, हर्ष अंग न माई ॥१॥
बरन-बरन मनि चूर सची सब, पूरत चौक सुहाई।
हा-हा हू-हू नारद तुम्बर, गावत श्रुति सुखदाई ॥ चलि० ॥२॥
तांडव नृत्य नटत हरिनट तिन, नख-नख सुरी नचाई।
किन्नर कर धर बीन बजावत, दृगमनहर छबि छाई ॥ चलि० ॥३॥
दौल तासु प्रभु की महिमा, सुरगुरु पै कहिय न जाई।
जाके जन्म समय नरकन में, नारकि साता पाई ॥ चलि० ॥४॥

[दौलतराम, दौलतपदसंग्रह, कलकत्ता]

[२०]

आजु मै देखे पास जिनेन्दा।
सांवरे गात सोहामनि मूरति, शोभित शीस फणेन्दा ॥ आजु० ॥
कमठ महामद भंजन रंजन भविक चकोर सुचंदा।
पाप तमोपह भुवन प्रकाशक, उदित अनूप दिनेंदा ॥ आजु० ॥
भुविज-दिविज-पति दनुज दिनेसर सेवितपद अरविन्दा।
कहत कुमुदचन्द होत सबै सुख, देखत बामानन्दा ॥ आजु० ॥

[कुमुदचन्द्र, पदसंग्रह, ह० लि० प्र०, जयपुर]

आशाओंको पूर्ण करनेवाले जिनराई पार्श्वनाथको जन्म दिया है, इससे छः देवियों—श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मीके अंगोंमें हर्ष समाता नहीं है। सब इन्द्राणियाँ नाना रंगोंके मणि-चूर्णसे सुख-दायक चौकको पूर रही हैं, नारदके तुम्बुर (एक वाद्य विशेष) में-से हा-हा, हू-हू की ध्वनि निकल रही है और शारदा सुखदायी गीत गा रही है। इन्द्र नटके रूपमें ताण्डव नृत्य कर रहा है, उसके प्रत्येक नाखून पर देवियाँ थिरक रही हैं। नेत्र और मनको हरण करने वाली छबिसे भरे किन्नर हाथोंमें वीणा पकड़ कर बजा रहे हैं। कवि दौलतराम कहते हैं कि उस प्रभुकी महिमा सुरगुरु (बृहस्पति) भी वर्णन नहीं कर पाते, जिसके जन्म-समय नरकोंमें नारकियों-को भी कुछ समयके लिए सुख प्राप्त हुआ था।

[२०] आज मैंने जिनेन्द्र पार्श्वनाथको देखा। उनका गात साँवला और मूर्त्ति सुहावनी है तथा सिर पर फणेन्द्र (नागराज=धरणेन्द्र) विराजमान हैं। वे असुर कमठके बड़े-चढ़े घमण्ड को नष्ट करने वाले, किन्तु भविकजन (भव्यपुरुष) रूपी चकोरको चन्द्रके समान आनन्दित करने वाले हैं। वे अनुपम सूर्यकी भाँति उदित हो कर, पापरूपी अन्धकारसे ढके संसारको प्रकाशित करते हैं। नरेन्द्र, देवेन्द्र, दनुज और सूर्य उनके कमल-जैसे चरणोंकी सेवा करते हैं। कवि कुमुदचन्द कहते हैं कि वामादेवीके नन्दन पार्श्वप्रभुके दर्शन-मात्रसे सब सुख उत्पन्न हो जाते हैं।

[२१]

जपो जिन पार्श्वनाथ भवतार ।
अश्वसेन बामा कुल मण्डन, बाल ब्रह्म अवतार ॥ जपो० ॥
नीलमणि सम सुन्दर सोभे, बोध सुकेवलधार ।
नवकर उन्नत अंग अतिदीपे, आवागमन निवार ॥ जपो० ॥
अजरामरनु दुख निवारण, तारण भवोदधिवार ।
विबुध वृंद सेवे शिरनामी, पाले पंचाचार ॥ जपो० ॥
कलियुग-महिमा मोटो दीसे, जिनवर जगदाधार ।
मानव मनवांछित फल पामे, सेवक जन प्रतिपाल ॥ जपो० ॥
सिद्ध स्वरूपी शिवपुर नायक, नाथ निरंजन सार ।
शुभचन्द्र कहे करुणा कर स्वामी, आपो संसार पार ॥ जपो० ॥

[शुभचन्द्र, पदसंग्रह, द. जि. प्र., जयपुर]

[२२]

करम-भरम जग-तिमिर-हरन-खग,
उरग-लखन-पग शिव-मग-दरसो ।
निरखत नयन भविक जल बरखत,
हरखत अमित भविक जन सरसो ॥

---

[२१] संसारसे पार करने वाले जिनेन्द्र पार्श्वनाथको जपो । वे बनारसके महाराजा अश्वसेन और महारानी बामादेवीके कुलको मण्डित करने वाले तथा बाल ब्रह्मके अवतार हैं, अर्थात् बाल्यकालसे ही पूर्ण ब्रह्मचारी हैं । वे नीलमणिके समान सुन्दर हैं और केवलज्ञानके धारण करने वाले हैं । उनका शरीर नौ हाथ ऊँचा है । वे जीवको आवागमनके चक्रसे निकालने वाले हैं । वे अजरामरोंको, अर्थात् देवोंके दुःखको दूर कर, उन्हें भव-समुद्र से पार करते हैं और वे (देव) भी सिर झुका कर सेवा करते हैं तथा पंचाचार पालते हैं । हे जिनवर ! हे जगदाधार ! यह संसार कलियुग-के प्रभावसे बहुत अधिक प्रभावित दिखाई देता है, उसमें आप अपने सेवकोंका प्रतिपालन कीजिए, जिससे वे मनोवांछित फल प्राप्त कर सकें । हे सिद्धस्वरूपी ! हे शिवपुर नायक ! हे नाथ निरञ्जन ! कवि शुभचन्द्र प्रार्थना करते हैं कि आप की करुणा से ही हम संसार पार कर सकते हैं, अन्यथा नहीं ।

[२२] संसार का अन्धकार—कर्मरूपी भ्रम, उसे हरनेके लिए जो सूर्यके समान हैं, जिनके चरणोंमें शेषनाग झुका रहता है और जिन्होंने मोक्षमार्गका दर्शन कर लिया है, ऐसे पार्श्वप्रभुकी ओर देखते हैं तो आत्मरस बरसता दिखाई देता है,

मदन-कदन-जित परम धरम हित,
सुमिरत भगत भगत सब डरसी।
सजल जलद-तन मुकुट सपत फन,
कमठ दलन जिन नमत बनरसी ॥

[बनारसीदास, नाटक समयसार, बम्बई]

[२३]

पारस-पद-नख-प्रकाश, अरुन वरन ऐसो ॥ टेक ॥
मानों तप कुंजर के, सीस को सिंदूर पूर,
राग दोष कानन कौं, दावानल-जैसो ॥ पारस० ॥
बोधमई प्रातकाल, ताको रवि उदयलाल,
मोक्षवधू-कुचप्रलेप, कुंकुमाभ तैसो ॥ पारस० ॥
कुशलवृक्ष दल उलास, इहि विधि बहु गुणनिवास,
भूधर को भरहु आस, दीन दास के-सो ॥ पारस० ॥

[भूधरदास, भूधरविलास, बम्बई]

[२४]

शेष सुरेश नरेश रटैं तोहि, पार न कोई पावै जू ॥ टेक ॥
कापै नपत व्योम विलसत सौं, को तारे गिन लावै जू ॥ शेष० ॥

जिस से भव्यजन रूपी तालाब भर कर प्रफुल्लित हो उठता है। भगवान् परम धर्मके हेतु कामदेवको नष्ट कर जीत लेते हैं। भक्त जन जब उनका स्मरण करते हैं तो सब भय दूर भाग जाते हैं। उन प्रभुका शरीर जल-भरे बादलके समान कान्तिवान् है, उनके सिर पर सात फणवाले सर्प का मुकुट लगा रहता है। वे कमठ नामके असुर-को दल डालते हैं। कवि बनारसी दास उनके चरणोंमें नमस्कार करते हैं।

[२३] पार्श्वप्रभुके पैरोंके नखोंसे फूटने वाला प्रकाश ऐसे लालवर्णका है, जैसे मानों तपरूपी हाथी के सिर पर लगा सिन्दूर का ढेर हो अथवा राग-द्वेष रूपी जंगलमें लगी दावाग्नि हो। प्रभुके लालवर्णका नख-प्रकाश ऐसा लगता है, जैसे कि हर किसीको जगानेवाले प्रातःकालका सूर्योदय ही लालवर्णका हो अथवा मोक्षरूपी वधूके कुचोंपर कुंकुमका प्रलेप हो। इतना ही नहीं वह पाटल वृक्षके विकसित पत्तों-सा प्रतीत होता है। इस प्रकार वह नाना गुणोंसे संयुक्त है। भूधरका कथन है कि मैं आपका दीन दास हूँ, मेरी आशा पूरी करो।

[२४] हे प्रभु ! शेषनाग, देवेन्द्र और नरेन्द्र तुम्हारी महिमा का वर्णन करते हैं, किन्तु वह वर्णनातीत है, अतः कोई पार प्राप्त नहीं कर पाता। यहाँ कवि प्रभु की

कौन सुजान मेघ बूंदन की संख्या समुझि सुनावे जू ॥ शेष० ॥
भूधर सुजस गीत संपूरन, गनपति भी नहीं गावे जू ॥ शेष० ॥

[भूधरदास, भूधरविलास, बम्बई]

[२५]

इन्द्रादि जन्मस्नान जिनके, करन कनकाचल चढ़े ।
गन्धर्व देवन सुयश गाये, अपसरा मंगल पढ़े ॥
इहि विधि सुरासुर निज नियोगी, सकल सेवाविधि ठही ।
तो पार्श्वप्रभु मो आस पूरो, चरन सेवक हों सही ॥

[भूधरदास, 'तुम तारन तरन भव निवारन भविक मन आनन्दनो' विनती]

[२६]

देहो जिनराज देव सेव मोहि आपनो ।
देत जो सुबुद्धि कौं कुबुद्धि की उथापिनी ॥
हौं तौ महापातिगो कहौं न अस सातिगी ।
सुनिहै तेरी भक्ति जो अनेक पाप कांपिनी ॥ देहो जिन० ॥
विसनादिक वासना चुकात तो उपासना ।
सुवासना सरूप ताहि भक्ति की चुचापिनो ॥ देहो जिन० ॥

महिमाके 'वर्णनातीत' को विभिन्न दृष्टान्तोंसे पुष्ट करता है। उसका कथन है कि कौन बालिस्तोंसे आकाशको नाप सकता है, कौन आसमानके तारोंकी गणना कर सकता है, ऐसा चतुर कौन है जो बादलोंसे बरसने वाली बूंदोंकी संख्या समझ कर सुना दे, ठीक इसी प्रकार गनपति (गणधर) भी प्रभुके सम्पूर्ण सुयश गीतों को गाने में समर्थ नहीं है।

[२५] जिन पार्श्वप्रभुका जन्मकालीन स्नान करनेके लिए इन्द्रादिक देव कनकाचल (सुमेरु पर्वत) पर चढ़े थे, गन्धर्वदेवोंने जिनका सुयश गाया था और अप्सराओंने मंगलगीत पढ़ा था, इस प्रकार सुरासुर (देव और असुर) ने जिनकी अपने-अपने नियोगके अनुसार सब प्रकार से सेवा की थी, वह पार्श्वप्रभु मेरी आस पूरी करें, मैं उनके चरणोंका सेवक हूँ।

[२६] हे जिनराज देव ! मुझे अपनी सेवा करनेका अवसर दो। आप ऐसी सुबुद्धि देनेवाले हैं जो कुबुद्धिको जड़मूलसे उखाड़ फेंकती है। मैं तो महापापी हूँ, अच्छी बात तो न कभी कहता हूँ और न कभी करता हूँ। अब आपकी भक्तिकी महिमा सुनी है, जो अनेक पापोंको कँपानेवाली है। आपकी उपासनासे विषयवासना रूप इच्छा चुक जाती है अर्थात् समाप्त हो जाती है और उससे सुवासना-सरूप भक्ति सदैव चूती रहती

कर्मनि के घेरि मोहि राषत हैं जेर कियें ।
ताहि देन त्रास जो हुतास रूप तापिनी । देहो जिन० ॥
इन्द्रादिक देव अरु नरेन्द्रादिक मानवी ।
तिन्हौं की सुषसोम मापिबे को यह मापिनी ॥ देहो जिन० ॥
पूरो जगरामदास आस प्रभू पासनाथ ।
पावौं नाममंत्र के जपावन को जापिनी ॥ देहो जिन० ॥

[जगराम, पदसंग्रह, ह० लि० प्र०, बड़ौत]

[२७]

प्रभु अधम उधारक तुम हो सहो,
जबतें सुनी नाग जुग तारे हां जी,
प्रभु मोहि प्रतीति भई अबही, प्रभु० ॥१॥
जबतें सापि सुनी अंजन को हां जी,
प्रभु तुम दुविधा रंच न रही,
याही विरद भरोसा पर,
अब जगतराम तेरी सरन गही, प्रभु० ॥२॥

[जगतराम, पदसंग्रह, ह० लि० प्र०, बड़ौत]

है । कर्म घिराव करके मुझे पस्त किये रहते हैं, उनको तौसनेके लिए आपकी भक्ति अग्निके समान संताप देनेवाली है। इन्द्रादिक देव और नरेन्द्रादिक मानवोंके सुखोंकी सीमा को नापनेके लिए आपकी भक्ति मानो एक पैमाना ही है । अर्थात् इन्द्र और नरेन्द्र आपकी जितनी भक्ति करते हैं, उसी हिसाबसे सुख प्राप्त कर पाते हैं । कवि जगरामका कथन है कि हे प्रभु पार्श्वनाथ ! इस दासकी आस पूरी कर दो । आस यही है कि आपके नाम-मंत्रकी जाप जपनेके लिए मुझे एक जाप प्राप्त हो जाये । अर्थात् दिल ऐसा बदल जाये कि सदैव आपका नाम लेता रहा करूँ ।

[२७] हे प्रभु ! तुम अधमोंका उद्धार करनेवाले हो । मैंने तो जबसे सुना है कि तुमने नाग-युगलको तारा है, मुझे आपमें पूर्ण विश्वास जम गया है । उस पर भी, जबसे अंजन चोरकी साक्षी सुनी तबसे तो रंच-मात्र भी दुविधा नहीं रही । भगवान्‌ने अंजन-जैसे अधम, पापी चोरको तार दिया था । इससे विदित हो गया कि भगवान्‌का विरद (प्रतिज्ञा) ही पापियोंको तारनेका है । इसी विरदके भरोसे पर जगत रामने आपकी शरण ग्रहण की है ।

[२८]

सरन मोहि पास जिनंद सरन की ॥
कमठ मान भंजन सिवरंजन,
अर वसु करम दलन की ॥ सरन० ॥
जुगल नाग जिन जरत उबारे,
संकट दाह हरन की ॥ सरन० ॥
लालविनोदी गही सरना गति,
अब कहो काके डरन की ॥ सरन० ॥

[विनोदीलाल, पदसंग्रह, ह० लि० प्र०, बड़ौत,]

[२९]

दोउ विधि नीकी आय बनी
मानुष जनम कुल उत्तम पायौ
ध्यावौ नाम धनी, दोउ विधि० ॥१॥
यह औसर तोकूं फिरि नाहीं
सोधि बुद्धि अपनी, दोउ विधि० ॥२॥
चैनविजै पावै पारस प्रभु
पूजैं मुकति ठनी, दोउ विधि० ॥३॥

[चैनविजय, पदसंग्रह, ह० लि० प्र०, बड़ौत]

---

[२८] जिन्होंने कमठके मानको नष्ट कर दिया, जो सदैव मोक्षके आनन्दको भोगते हैं और जिन्होंने कर्मरूपी शत्रुको दल डाला है, मैं उन पार्श्व जिनेन्द्रकी शरणमें जाता हूँ। जिन्होंने जलते हुए नाग-युगलको उबारा था और उनके दाहके संकटको हरा था अर्थात् दूर किया था। विनोदीलालने अब उन्हींकी शरण ग्रहण की है, भला कहो तो अब किससे डरनेकी आवश्यकता है। पार्श्व प्रभुकी शरणमें जानेसे सब भय पलायन कर जाते हैं।

[२९] दोनों प्रकारसे अच्छा काम हुआ है—एक तो मनुष्य योनिमें जन्म हुआ और दूसरे उत्तम कुल मिला, अतः अब प्रभुका नाम ध्याओ। हे जीव! तुझको यह अवसर फिर नहीं मिलेगा, अपनी बुद्धिको शुद्ध कर ले। कवि चैनविजयका कथन है कि तूने पार्श्व प्रभुको पा लिया है। तुझे अवश्य ही मुक्ति प्राप्त होगी।

[३०]

श्री अरिहंत सरन तेरो आयो, श्री अरिहंत० ॥
सेठ धनञ्जय स्तोत्र रच्यो जब
ताके सुतको विष उतरायो,
मानतुंग के बन्धन तोरे
वादिराजको कोढ गुमायो, श्री अरिहंत० ॥
कुमुदचन्द प्रभु पारस भेटयो
सागर में श्रीपाल बचायो
समंतभद्र सिव को नहिं वंदे
चंदा प्रभु तबही प्रगटायो, श्री अरिहंत० ॥
भक्त सहाय करो बहुतेरी
तिनको कथन पुरान बतायो,
भई प्रतीति सुनो जब महिमा
तब जगराम चरण चित लायो, श्री अरिहंत० ॥

[कुमुदचन्द्र, पदसंग्रह, ह० लि० प्र०, बड़ौत]

[३१]

बारो-बारो जो बामां जो रा नंदन करम निकंदन
मेरो तन तुम पर बारो जो ॥ टेक ॥
आसासेणराय कुलमंडन उग्रवंस अवतारो जो ॥ बारो० ॥

---

[३०] हे प्रभु अरिहंत देव ! मैं तुम्हारी शरणमें आया हूँ। सेठ धनञ्जयने आपका स्तोत्र रचा, उसके पुत्रका विष उतर गया। हे प्रभु ! आपने ही मानतुंगाचार्यके बन्धन तोड़े और मुनि वादिराजका कोढ़ दूर किया। कुमुदचन्द्रका कथन है कि पार्श्व-प्रभुसे भेंट होने पर ही समुद्रमें फँसे श्रीपाल बच पाये थे। आचार्य समन्तभद्र शिवकी वन्दना नहीं करना चाहते थे तो पार्श्व प्रभुकी कृपासे ही शिवकी पिण्डीसे चन्द्रप्रभुकी मूर्ति प्रकट हो गयी थी। आपने अपने भक्तोंकी बहुत सहायता की, ऐसा पुराणोंमें बताया गया है। जब आपकी ऐसी महिमा सुनी तो पूर्ण विश्वास हो गया और जगत-रामने आपके चरणोंमें अपना चित्त लगाया।

[३१] हे वामा देवीके नन्दन ! कर्मोंको नष्ट करनेवाले पार्श्वप्रभु ! मेरा शरीर तुम्हारे ऊपर बार-बार न्यौछावर होता है। तुम महाराजा अश्वसेनके कुलको

नाग-नागनी नाम सुमरतां सुर-पद पाय विचारी जी।
मन-वचन मों भवियन श्री पारस जिनंद सुषकारी जी। बारी० ॥
जब प्रभु तेरो नाम जु जान्यौ आनदेव सब टारी जी।
अंजन-से पलमाहिं उधारे कमठ दियो पद भारी जी ॥ बारी० ॥
जोवनराम करै प्रभु विनती दोउ कर जोरि तुम्हारो जी।
तुमहौ तीन लोक के ठाकुर कुमति कुसंग निवारी जी ॥ बारी० ॥

[जगजीवन, पदसंग्रह, ह० लि० प्र०, बड़ौत]

[३२]

प्रभु तेरी मूरति रूप बनी
अंग-अंग की अनुपम सोभा
वरनै न सक्र फनी, प्रभु० ॥
सकल विकार रहित बिन अम्बर
सुन्दर सुभ करनी।
निराभरण भासुर छबि लाजत
कोटि रतन तरनी, प्रभु० ॥
वसुरस रहित शांत रस राजत
बलि यह साधपनो।
जाति विरोध जंतु जिह देखत
तजत प्रकृति अपनो, प्रभु० ॥

मण्डित करनेवाले हो और तुम्हारा जन्म उग्रवंशमें हुआ है। नाग-नागनीने ज्यों ही तुम्हारे नामका स्मरण किया कि उन्हें सुर-पद प्राप्त हो गया। मन-वचन-कर्मसे स्मरण करनेवाले भव्य जीवोंको पार्श्वजिन अत्यधिक सुखकारी हैं। हे प्रभु! जब आपके नामकी महिमा विदित हुई तब हमने अन्य देवोंकी पूजा-भक्ति त्याग दी। आपने अंजन-जैसे पापीको पल-भरमें ही तार दिया और कमठ-जैसे अपराधीको भी भारी पद प्रदान किया। हे प्रभु! जगजीवन दोनों हाथ जोड़कर तुम्हारी विनती करते हैं, तुम तीनों लोकोंके ठाकुर हो, कुमति और कुसंगका निवारण करो।

[३२] हे प्रभु! तुम्हारी मूर्ति अत्यधिक रूपमय है। अंग-अंगकी शोभा अनुपम है—ऐसी कि इन्द्र और शेषनाग भी वर्णन नहीं कर सकते। तुम सम्पूर्ण विकारोंसे रहित दिगम्बर हो। तुम्हारे कार्य पवित्र हैं। आभरण-रहित तुम्हारी छवि ऐसी चमकती है कि कोटि-कोटि रत्नोंकी चमक भी फीकी पड़ जाती है। आठ रस-रहित केवल शान्त-रस ही तुममें विराजता है, मैं तुम्हारे इस साधुपने पर बलिहार होता हूँ। आपके दर्शन

दरसन दुरित हरै भव-संकट
सुर-नर मन-मोहनी।
रूपचन्द कहा कहौं महिमा
त्रिभुवन मुकुट मनी, प्रभु० ॥

[रूपचन्द, पदसंग्रह, ह० लि० प्र०, बड़ौत]

[३३]

चिंतामणि स्वामी सांचा साहिब मेरा
सो कहरै तिहुं लोक का, उठिलो जिये नाम सवेरा ॥ चिंतामणि० ॥
सूर समान उदोत है जग तेज प्रताप घनेरा
देषत मूरति भाव सों मिटि जाय मिथ्यात अंधेरा ॥ चिंतामणि० ॥
दीनदयाल निवारिये दुष संकट जोनि बसेरा
मोहि अभैपद दीजिये फिरि होय नहीं भव फेरा ॥ चिंतामणि० ॥
बिम्ब विराजै आगरै थिर थान थप्यो सुभवेरा
हाथ जोरि विनती करै बनारसी वंदा तेरा ॥ चिंतामणि० ॥

[बनारसीदास, पदसंग्रह, ह० लि० प्र०, बड़ौत]

करते ही जन्तु अपना जातिगत विरोध छोड़ देते हैं। आपका दर्शन देव और मनुष्य दोनोंके मनको मोहित करता है तथा पाप और संसारकी बाधाओंको हरनेवाला है। हे त्रिभुवनके मुकुटमणि ! अर्थात् तीनों लोकोंमें सर्वोत्कृष्ट ! रूपचन्द आपकी महिमाका क्या वर्णन करे, वह तो वर्णनातीत है।

[३३] कविका संकेत आगरेके चिन्तामणि पार्श्वनाथकी मूर्तिकी ओर है। उसका कथन है कि चिन्तामणि स्वामी हमारा सच्चा साहिब है। वह तीनों लोकका मालिक है। प्रातः उठते ही उसका नाम लेना चाहिए। उसका सूर्यके समान प्रकाश है। संसारमें उसका प्रतापरूपी तेज बहुत अधिक फैला हुआ है। भाव-पूर्वक उस मूर्तिको देखते ही मिथ्यात्वरूपी अन्धकार मिट जाता है। हे दीनदयालु ! मेरी इस योनिमें जिस दुःख-संकटने बसेरा कर लिया है उसे दूर कर दीजिए। मुझे अभय कर दीजिए। फिर इस संसारमें मेरा आना रुक जायेगा। आगरेमें जो बिम्ब विराजमान है, वह शुभ वेलामें अपने थान पर स्थापित किया था। बनारसीदास हाथ जोड़कर विनती करते हैं कि यह बनारसी तुम्हारा दास है।

[३४]

हां जो मोहि तारो सइयां हो पारस, मोहि० ॥ टेक ॥
भवदधि भंवणमांहि तैं, मोकूं करगहि वेग उबारो ॥ सइयां० ॥
विधि वसितैं बहुविधि अघ कीने, सो सब नाहिं निहारों ॥ सइयां० ॥
पतित उधारक, पतित रटत हैं, दीजे रूप तिहारो ॥ सइयां ॥

[रूपचन्द झांवड़ा, पदसंग्रह, ह० लि० प्र०, जयपुर]

[३५]

मेरे तो यही चाव है निति दरसण पाऊं ।
चरण कमल सेंवु सदा मठाजो जीव रमाऊं ॥ मेरे० ॥
ये जी मन पंकज के महल में प्रभु पास बसाऊं ।
निपट नजीकह रहु चरणं चित लाऊं ॥ मेरे० ॥
ये जी अन्तर जीमां जोवकुं अनंत गुंण गाऊं ।
आनन्द के प्रभु पास जी बहु और न ध्याऊं ॥ मेरे० ॥

[आनन्द, पदसंग्रह, ह० लि० प्र०, जयपुर]

[३६]

बधाई भई है पारस की हो जो
नेनन लखि हरषाय ॥ टेक ॥

---

[३४] हे पारस स्वामी ! मुझे तार दो, इस भव-समुद्रकी भँवरोंसे मुझे हाथ पकड़कर उबार लो । दुर्भाग्यवशात् मैंने नाना पाप किये हैं, उनकी तरफ़ मत देखो । तुम पतित-उधारक हो, अर्थात् पतितोंका उद्धार करनेवाले हो और यह पतित आपकी रट लगाये हुए है, अतः अपना रूप देकर अपने समान बना लीजिए ।

[३५] मेरे हृदय में यही एक चाव है कि नित्य पार्श्वप्रभुके दर्शन प्राप्त करूं । सदैव उनके चरण-कमलोंकी सेवा करूं और जहाँ वे निवास करते हैं, वहाँ ही अपने जी को रमाऊं । मेरे जीमें यही है कि अपने मनरूपी कमलके महलमें प्रभुको समीप बसा लूं, जिससे कभी वियोग न हो, सदैव दर्शन पाता रहूँ । उनके अत्यधिक नजदीक रहकर उनके चरणोंमें चित्त लगाऊं, यही मेरे मनमें है । मैं चाहता हूँ कि हृदयके भीतर बसे उस परमात्माके अनन्त गुण गाता रहूँ । कवि आनन्दका कथन है कि इस भाँति पार्श्व-प्रभुके अतिरिक्त किसी अन्यको न ध्याऊं ।

[३६] पार्श्वप्रभुकी बधाई बज रही है । नेत्रोंसे उन्हें देखकर हृदय हर्षित हो

बनि आई सब मौज री
मुख कही न जाय।
हो जो बिछुरत बनि नहीं आय ॥ बधाई० ॥
दुख खोया सब जनम को
आनन्द बढ़ाय ॥
हो जो मैं तो वसुविधि पूजूं पांय ॥ बधाई० ॥

[आनन्द, पदसंग्रह, ह० लि० प्र०, जयपुर]

[३७]

तारण तरण जहाज, स्वामी महाराज ॥ टेक ॥
अन्यदेव मैं बहुतहि सेये
सरयो एक न काज ॥ स्वामी० ॥
अब मैं प्रभु तुम भेद पिछान्यो
इन भव अवर न काज ॥ स्वामी० ॥
शीस नवाय मैं तोकूं पुकारत
सुनिये प्रगट अवाज ॥ स्वामी० ॥
पारसमणि थे हीराचन्द के
शरण गहे की राखो लाज ॥ स्वामी० ॥

[हीराचन्द, पदसंग्रह, ह० लि० प्र०, महावीर जी]

[३८]

स्वामी पास प्रभु थानै पूज्या जो पातिग जाय ॥ स्वामी० ॥ टेक ॥
अष्ट द्रव्य करि जे नर पूजें

जाता है। मुझे सब मौज प्राप्त हो गयी है, ऐसी मौज जो मुखसे कही भी नहीं जा सकती। अब तो प्रभुसे बिछुड़ते नहीं बनता, अर्थात् सदैव उनके समीप रहकर देखते रहनेको जी करता है। प्रभुने जनम-जनमका मेरा दुःख खो दिया। मुझे तो परमानन्द प्राप्त हो रहा है। ओ भाई! मैं तो आठों द्रव्योंसे उनके चरणोंको पूजूंगा।

[३७] पार्श्वप्रभु भव-समुद्रसे तारनेके लिए जहाजके समान हैं। अन्य देवोंकी मैंने बहुत सेवा की किन्तु एकभी काम पूरा नहीं हुआ। अब हे प्रभु! मैंने आपका भेद समझ लिया है, मुझे किसी दूसरे देवसे कोई कार्य नहीं, अर्थात् अब मैं आपको छोड़कर किसी अन्य देवकी सेवा नहीं करूंगा। शीश झुकाकर मैं केवल आपको पुकारता हूँ, मेरी इस स्पष्ट पुकारको सुन लीजिए। हीराचन्दका कथन है कि आप पारसमणि हैं, अतः शरण गहेकी लाज रख लीजिए।

[३८] हे पार्श्वप्रभु! आपके पूजनेसे ही पाप जा सकते हैं, अन्यथा नहीं। जो

सुठ मन वच काय,
इन्द्र चन्द्र चक्री की संपति
तुम पूजें तैं पाय ॥ स्वामी० ॥
तुम पूजन तैं मानुष हो है
श्रावग कुल में आय,
सत संगति अरु भगति तिहारी
भव-भव में ये पाय ॥ स्वामी० ॥
अधम उधार जगत के त्राता
तुम बिन और न साय,
चंदकिसन तुम इम जांचत है
जामन मरन मिटाय ॥ स्वामी० ॥

[किसनचन्द,-पदसंग्रह, ह० लि० प्र०, महावीर जी]

[३९]

बिना प्रभु पारस के देखे मेरा दिल बेकरारी है ॥ बिना प्रभु० ॥
चौरासी लाख में भटक्यो बहुत सी देह धारी है ।
मुसीबत जो पड़ी मुझपै उन्हों को खुद निहारी है ॥ बिना प्रभु० ॥
घेरा मैं कर्म आठों ने गले जंजीर डाली है ।
बिरद तारन सुना प्रभु का हकीकत सब गुजारी है ॥ बिना प्रभु० ॥
जगत के सभी देव देखे सभी के लोभ भारी है ।
कोई क्रोधी कोई मानी किसी ने सेयी नारी है ॥ बिना प्रभु० ॥

मनुष्य अष्ट द्रव्योंसे, उत्तम मन-वचन-कायके साथ, आपकी पूजा करता है, वह इन्द्र, चन्द्र और चक्रवर्ती तककी सम्पत्ति प्राप्त कर लेता है। तुम्हारी पूजा करनेसे यह जीव मनुष्य योनिमें ही जन्म लेता है और उसमें भी श्रावक कुल प्राप्त करता है। इतना ही नहीं, भव-भवमें वह सत-संगति और तुम्हारी भक्ति पाता है। तुम अधमोंका उद्धार करनेवाले और संसारके रक्षक हो, तुम्हारे बिना और कोई स्वामी नहीं है। किशनचन्द आपसे ऐसी याचना करते हैं, जिससे जन्म-मरण मिट जाये।

[३९] पार्श्वप्रभुको देखे बिना मेरा दिल बेकरार रहता है। मैं चौरासी लाख योनियोंमें भटकता फिरा, बहुत-सी देह धारण की और मुझ पर जो मुसीबतें पड़ीं, उन्हें, मैंने खुद देखा है। आठों कर्मोंने मुझे घेर लिया है और मेरे गलेमें जंजीर डाल दी है। आपका तारनेका बिरद सुना, अर्थात् प्रतिज्ञा सुनी कि आप हर किसीको तार देते हैं, तो मैंने अपनी हकीकत (वास्तविकता) आपके सामने निवेदन कर दी है। मैंने संसारके और सब देव देख लिये हैं—भुगत लिये हैं, सबको भारी लोभ है, कोई क्रोधी है, कोई

प्रभु हैं देव देवनि कैं विपत्ति सागर निवारी है।
पनाको कुसंगति सो टालो यही अरज हमारी है ॥ बिना प्रभु० ॥

[पना, पद संग्रह, ह० लि० प्र०, महावीर जी]

[४०]

उपसर्ग-हरन तुम नाग अमोल,
मंत्र-जंत्र तुम्हि मन फोल।
जैसे बज्र परबत परहार,
तुम नाम मंत्र हो विषापहार ॥
नाग-दमण तुम नाग सहाय,
विषधर विष नासनराय।
तुम सुमरे भव जो चित लाय,
विष पीवे अमृत हो जाय ॥
नाम सुधार सब रषे जहाँ,
पाप पंक मल नासै तहाँ।
जैसे पारस बेसे लोह,
तुम गुनत कंचन-सम होहि ॥

[अचलकीर्ति, विषापहार स्तोत्र, ह० लि० प्र०, जयपुर]

घमण्डी है और किसीने नारियोंका सेवन किया है। हे प्रभु ! आप देवोंके देव हैं, विपत्ति रूपी समुद्रसे पार करनेवाले हैं, इसलिए आप कवि पनाकी कुगति दूर कर दीजिए। उसका कथन है कि यही उसकी अरज (प्रार्थना) है।

[४०] हे प्रभु ! आपका अमोल नाम उपसर्ग (आफत-विपत) हरनेवाला है। मन्त्र-जन्त्र तुम्हारे मनके खेल हैं। जैसे वज्र पर्वत पर प्रहार कर उसे चूर-चूर कर देता है, वैसे ही तुम्हारा नाम-मन्त्र विषका हरण कर लेता है। तुम भयंकर नागोंका दमन करनेवाले हो और देवी पद्मावती तथा धरणेन्द्र जैसे नाग योनिके देवोंकी सहायता भी करते हो। जो जीव चित्त लगाकर तुम्हारा स्मरण करता है, वह यदि विष पी लेता है तो अमृत बन जाता है। जो कोई आपके नामको श्रेष्ठ प्रकारसे धारण करके रखता है, उसके पाप रूपी कीचड़का मैल रह नहीं पाता, नष्ट हो जाता है। तुम पारसमणिके समान हो और यह जीव लौहकी तरह है, तुम्हें गुनते ही अर्थात् तुम्हारे गुण गाते ही वह कंचनके समान हो जाता है।

[४१]

इन्द्र धरणिन्द्र चक्रवर्ति की विभूति आदि
आनि पुनि फणनाथ कहाँ लौं बखानिहौं।
तिहारी टहल कीये जो पै इह पाइअ तौ
यामैं कछू अधिकार तिहारो न आनिहौं॥
चेरी वह रावरी है हौं हूँ जब चेरो भयौ
मिले चेरो चेरे सों सुभाव वाको मानिहैं॥
करिहौ कर ग्रहन मुकतिपति अपएँ सों
मनराम रावरी कृपा हौं तब जानिहौं॥

[मनराम, मनरामविलास, ह० लि० ग्र०, जयपुर]

[४२]

पारस प्रभु तुम नाम जो सुमरै मन-वच-काय।
बात पित्त कफ रोग सब छिन में जायं पलाय॥
त्वं नाम मंत्र भूतादिक व्यंतर नासै।
त्वं नाम मंत्र नहि संपति संग त्यागै॥
त्वं नाम मंत्र सेवत ही सिधि दासी।
त्वं नाम मंत्र आत्म अनुभव अभ्यासी॥
त्वं नाम मंत्र चिंतामणि रतन स्वामी।
त्वं नाम मंत्र ध्यावत होइ सुर्ग गामी॥

---

[४१] हे फणनाथ ! यदि आपकी टहल करनेसे इन्द्र, धरणेन्द्र और चक्रवर्तीकी अवर्णनीय विभूति प्राप्त हो जाये, तो इसमें मैं आपका उपकार तो कुछ भी नहीं समझूँगा। विभूति आपकी चेरी है और जब मैं भी आपका दास हो गया, तो दासी दाससे स्वाभाविक रूपमें ही मिल जावेगी, क्योंकि दोनोंका स्वभाव एक है, यह मिलन आपने कराया ऐसा तो मैं नहीं मानूँगा। हे मुकतिपति ! आप जब हमारा हाथ अपने हाथसे पकड़ लेंगे तब मैं आपकी कृपा समझूँगा, अन्यथा नहीं।

[४२] हे पारस प्रभु ! मन-वच-कायसे जो कोई तुम्हारे नामका स्मरण करता है, क्षण-भरमें उसके वात-पित्त-कफ रोग दूर हो जाते हैं। तुम्हारा नाम एक मंत्र है, उसके प्रभावसे भूतादिक व्यन्तर नष्ट हो जाते हैं और संपत्ति संग नहीं छोड़ती। तुम्हारे नाम मंत्रको जपते ही सिद्धि दासी हो जाती है और जीव आत्मानुभवका अभ्यासी हो जाता है। तुम्हारे नाम मंत्रके बलसे चिन्तामणि रत्न प्राप्त हो जाता है और

त्वं नाम मंत्र प्रभु पार्स जगत विख्याता।
त्वं नाम मंत्र प्रभु पार्स मोक्ष दाता ॥
भवसागर अति हो गह्वर, नाना दुख जल माहिं।
प्रभु तुम नाम जिहाज विन, आनि सरण कोइ नाहिं ॥

[मनराम, बिनती, ह० लि० प्र०, महावीर जी.]

[४२]

ज्ञानपुञ्ज अद्भुत अनौपम
देव दिवापन तुम को छाजे।
कोटि सुरिज चरनन दुति लाजे
स्याम साहिब देषत दुति भाजे ॥
सब बकसत त्रिभुवन-पति तुम हो
वाणी अति सुन्दर धुनि गाजे ॥ स्याम० ॥
इन्द्र नरेन्द्र धरणेन्द्र नमत तुम
तारण विरद जगत तुम बाजे ॥ स्याम० ॥
बैनौं करि कहीए किम महिमा
अचिरजकारी पास विराजै ॥ स्याम० ॥

[अजयराज, पदसंग्रह, ह० लि० प्र०, जयपुर]

मरनेपर स्वर्ग लोक मिलता है। हे पार्श्व प्रभु। तुम्हारे नाम मंत्रके प्रतापसे पुरुष विश्व प्रसिद्ध हो जाता है। इतना ही नहीं, तुम्हारा नाम मंत्र मोक्ष-सुख-जैसे परम सुखको देनेवाला है। इस भवसागरमें बहुत गहरा जल भरा है, उसमें पड़ा हुआ यह जीव नाना दुःख झेल रहा है। हे प्रभु! तुम्हारे नामरूपी जहाजके बिना और कोई शरण देनेवाला नहीं है।

[४२] हे देव! आप अद्भुत अनुपम ज्ञानपुंज हैं और ज्ञानका दिव्यप्रकाश आपको शोभा देता है। करोड़ों सूर्य आपके चरणोंकी द्युति (चमक) के समक्ष लज्जित हो जाते हैं, आपके श्यामरूपको देखते ही वे द्युति-हीनसे प्रतीत होने लगते हैं। हे प्रभु! आप त्रिभुवनपति हैं और सबके अपराधोंको क्षमा कर देते हैं। आपकी वाणी दिव्य ध्वनिकी तरह खिरती है। इन्द्र, नरेन्द्र और धरणेन्द्र आपके सामने झुक-झुक कर नमस्कार करते हैं। संसार में आपका तारण विरद प्रसिद्ध है, अर्थात् आप हर किसीको तार देनेकी अपनी प्रतिज्ञा पूरी करते हैं। वचनोंसे आपकी महिमा कैसे कही जा सकती है, वह अवर्णनीय है। पार्श्व प्रभु सदैव अचिरजकारी रूपमें विराजते हैं। उनकी महिमा आश्चर्यजनक है।

[४४]

देखो रीति पतंग की
नैक न संका उर लाइ।
दीपग नेतर जानि कै
समस्त देह जराइ॥
कुरंग भयो बसि राग कै
सुनत न नैक अघाइ।
मरण कीयो वाही घरी
सन्मुख गोलो खाइ॥
दान सील तप भावना
इत्यादिक उर लाइ।
नवल प्रीति पारस तैं करो
त्यौं अमरापुर जाइ॥

[नवल, पदसंग्रह, इ० लि० प्र०, जयपुर]

[४५]

सुद्ध ध्यान मैं लीन व्रती चित अहिनिसि वरतै,
सुद्धात्म माहि अचल दीपक लौ जरतैं,
सरीरादि वहि भाव माहि चिता समूह तजि,
निराकार अविकार सार आत्मरस कौं भजि,

[४४] पतंगेकी रीति देखो कि अपने हृदयमें थोड़ी भी शंका लाये बिना, दीपक को अन्य न समझ कर अपनी समस्त देह जला डालता है। अर्थात्, उसे अपना समझ कर, निःशंक होकर उसके समीप जाता है और इस प्रेममें अपनी समस्त देह जला डालता है।

कहीं वीणा बज रही थी। हिरण उसके रागके वशीभूत हो गया। निरन्तर सुनते हुए भी वह अघाता नहीं था। सामनेसे गोली आयी और वह उसी समय मर गया। अर्थात् उसे अपने प्रेममें शरीर गँवाना पड़ा।

कवि नवलका कथन है कि दान, शील और तप आदिकी भावना हृदयमें लाकर पारस प्रभुसे ऐसा ही प्रेम करो, जिससे तुम्हें अमरपुर प्राप्त हो।

[४५] शुद्धात्माके शुद्ध ध्यानमें रात-दिन लीन रहता हुआ व्रती अचल दीपककी लौकी तरह जला करता है।

शरीरादिकसे उत्पन्न चिन्ता-समूहको त्यागता हुआ और निराकार, अविकार, सारभूत आत्मरसको भजता हुआ मैं राग-द्वेष-रहित हो जाऊँगा, मुझमें सकल मोहका

राग द्वेस बीते सकल मोह अंश नाहीं रहैं,
मैं नमन करौं पार्स चरन कौं सुद्ध सुमन निश्चल रहैं ॥

[सुन्दरदास, सुन्दरविलास, ह० लि० प्र०, दिल्ली.]

[४६]

किसके हरिहर किसके ब्रह्मा किसके दिल में राम ।
मोरा दिल में तू वस्यौ साहिब शिव नौ ठांम ॥
माता वांमा धन्न पिता जसु श्री अश्वसेन नरेश ॥
जनमपुरी बानारसी धन-धन कासी नो देस ॥

[सुखदेव, काशी स्तुति, ह० लि० प्र०, जयपुर]

[४७]

प्रभु मेरे तुमकूं ऐसो न चहोए ॥
सघन विघन घेरत सेवक कूं
मौन धरी क्यों रहोए ॥ प्रभु० ॥
विघन-हरन सुख-करन सबनि कूं
चित चितामनि कहीए ।
असरन-सरन अबन्धु कृपा-सिंधु को
विरद नीवहोए ॥ प्रभु० ॥

अंश भी नहीं रह जायेगा । इस प्रकार अपने शुद्ध श्रेष्ठ मनमें अडिग रह कर मैं पार्श्व प्रभुके चरणोंमें नमस्कार करता हूँ ।

[४६] किसीके दिलमें हरिहर, किसीके दिलमें ब्रह्मा और किसीके दिलमें राम रहते हैं, किन्तु मेरे दिलमें शिव रूप हे पार्श्वनाथ ! आप रहते हैं ।

आपकी माता वामादेवी और आपके पिता नरेश अश्वसेन धन्य हैं, जिन्होंने ऐसे पुत्रको जन्म दिया । वह नगरी वाराणसी और वह काशी देश भी धन्य है, जहाँ आपका जन्म हुआ ।

[४७] एक भक्त कवि उपालम्भ देते हुए कहता है कि हे प्रभु ! तुमको ऐसा नहीं चाहिए कि बड़े-बड़े विघ्न आपके सेवकको घेर लें और आप मौन धारण करके चुप रह जायें । आप उस समय मौन क्यों धारण कर लेते हैं ।

आप विघ्नोंके हरनेवाले और सबको सुख देनेवाले कहलाते हैं । हृदयकी इच्छाओंको पूरा करनेके लिए आप चिन्तामणिके समान कहे जाते हैं । आप अशरणको शरण देनेवाले और अबन्धुके लिए कृपासिन्धुके रूपमें प्रसिद्ध हैं, तो फिर आप अपने इस विरदका हमारे ऊपर भी निर्वाह कीजिए ।

हम तो हाथ बिकाने पारस के
अब जो करें सो सहोए।
तो भनि कुमुदचन्द कहैं
सरनागति की सरम जु गहोए॥ प्रभु०॥

[कुमुदचन्द, पदसंग्रह, ह० लि० प्र०, बड़ौत]

[४८]

बंदूं पारसराय कुं मन-वच-काय करौं जो
तुम माता तुम तात तुम ही परम धणी जो॥ १॥
तुम जग सांचा देव, तुम सम और नहीं जी
तुम सम कहूं न दीठ, गदगद नैन भरौं जी॥ २॥
भाव भगति बहु लीन, इन्द्राणी नित्य करै जी।
अंग विशेष बनाय, थेई थेई तांन तनैं जी॥ ३॥
तुम हो दीनदयाल, मम दुख दूर करो जी।
भूल्यौ मोहि उबारि, मैं तुम सरन गह्यो जो॥ ४॥
कनककीर्ति करि भाव, श्रो जिन भक्ति रचै जी।
पढ़ें सुनैं नर नारि, सुरगां सुक्ख लहैं जी॥ ५॥

[कनककीर्ति, पदसंग्रह, ह० लि० प्र०, बड़ौत]

हम तो पारसके (आपके) हाथ बिक गये हैं, जो कुछ करेंगे सहना ही पड़ेगा। कुमुदचन्दका कथन है कि शरणागतिकी शरम तो निबाहिए, अर्थात् शरणमें आये हुए व्यक्तिकी लज्जा तो रख लीजिए।

[४८] मैं भगवान् पार्श्वनाथको मन-वचन-कर्मसे वन्दना करता हूँ। हे प्रभु! तुम ही माता हो, तुम ही पिता और तुम ही स्वामी हो। संसारमें तुम्हीं एक सच्चे देव हो, तुम्हारे समान और कोई नहीं है—मुझे तो दिखाई नहीं दिया, तुम्हें देखकर नेत्र गद्गद हो जाते हैं। भावसे भरी भक्तिमें लीन होकर इन्द्राणी नित्य अंग-विशेष बना-बनाकर थेई-थेईकी तान भरती है। हे प्रभु! तुम दीनदयालु हो, मेरे दुख दूर करो, भ्रममें भूले मुझको उबार लो, मैं आपकी शरणमें आया हूँ। कनककीर्तिका कथन है कि सच्चे भावसे जो जिनेन्द्रकी भक्ति करता है, पढ़ता अथवा सुनता है, उसे स्वर्गका सुख प्राप्त होता है।

[४९]

करिये पारस ध्यान, पाप कटैं भव-भव के
यामैं बहोत भलाई हो ॥ करिये० ॥
धरम कारिज कीबे या बिरियां मोरे प्यारे
आलसो नींद निवारी हो ॥ करिये० ॥
तन सुधि करिकैं मन थिर कीज्यो हो प्यारे
जिनप्रभु का नाम उचारी हो ॥ करिये० ॥
जगजीवन प्रभु कों, या विधि ध्यावो हो प्यारे
ये ही शिव-सुख कारी हो ॥ करिये० ॥

[जगजीवन, पदसंग्रह, ह० लि० प्र०, बड़ौत]

[५०]

मूरति श्री पासदेव की
मेरे नैनन माहि बसो जी ॥ टेक ॥
अद्भुत रूप अनौपम है छबि
राग-दोष न तनक सो ॥ मूरति० ॥
कोटि मदन वारूं या छबि पर
निरखि-निरखि आनन्द झर बरसी ॥ मूरति० ॥
जगजीवन प्रभु की सुनि वांणी
सुरति मुकति मग दरसी ॥ मूरति० ॥

[जगजीवन, पदसंग्रह, ह० लि० प्र०, बड़ौत]

---

[४९] पार्श्व प्रभुका ध्यान करनेसे भव-भवके पाप कट जाते हैं, हे जीव ! इसमें तुम्हारी बहुत भलाई है। हे मेरे प्यारे ! इस समय आलस्यमें डालनेवाली नींदको छोड़कर धर्मका काम करो। तनको सावधान करके और मनको स्थिर करके जिनेन्द्रके नामका उच्चारण करो। जगजीवनका कहना है कि इस प्रकार प्रभुका ध्यान करो, वह ही शिव-सुखका देनेवाला है।

[५०] श्री पार्श्व प्रभुकी मूर्ति मेरे नेत्रोंमें बसके रह गयी है। उनका रूप अद्भुत है और उनकी छबि अनुपम है, उनमें थोड़ा भी राग-द्वेष नहीं है। उनकी छबि-पर करोड़ों कामदेवोंको न्यौछावर किया जा सकता है। उसे देख-देख कर आनन्द तो जैसे झड़ बनकर बरस उठता है, अर्थात् आनन्द सतत प्राप्त होता है। जगजीवनका कथन है कि प्रभुकी वाणी सुनकर यह जीव मोक्षमार्ग के दर्शन कर लेता है—उसे मोक्षका रास्ता स्पष्ट दिखाई देने लगता है।

[५१]

जय जय सुरपति पूज्यपाद, जय जय मुनि शिखिगण मेघनाद ।
जय जन्म जलधि तारन तरंड, जय परमाद्भुत सुख मणि करंड ॥
जय विनुत सुरासुर मनुजपाल, जय जय नाशि तव सुकर्म जाल ।
आनन्दीकृत मुनिजन सरोज, जय जय केवललक्ष्मी पयोज ॥
जय जय जय भव्य सरोज सूर, जय नाशित मिथ्या तिमिर पूर ।
जय निजानन्द दायक जिनेश, जय दुखतिमिर नाशन दिनेश ॥
जय दुष्ट कर्म कानन कुठार, त्रिभुवन पति पूजित नष्ट मार ।
चिंतामणि संन्निभ देव देव, तव चर्ण सपर्या देहि एव ॥

[पारसदास, पार्श्वजयमाल, पारस विलास, इ० लि० प्र०, जयपुर]

[५२]

अरिहंत भज शिवदातारं नाशित मिथ्या तिमिरमपारं ॥ अरिहंत० ॥
इष्टमभीष्ट सौख्यकृच्छिष्टमनिष्टहरं संत्रासितमारं ॥ अरिहंत० ॥
त्रिभुवनेशनुतपदमभिवन्द्यं नाशितदुखं जगदाधारं ॥ अरिहंत० ॥

---

[५१] इन्द्रसे पूजे गये हैं पैर जिनके ऐसे पार्श्वप्रभुकी जय-जय होवे । पार्श्वनाथकी दिव्यध्वनि मुनिरूपी मयूरोंके समूहोंके लिए मेघोंके नादके समान है । भगवान् जन्म-मरण रूपी समुद्रसे तारनेके लिए नौकाके समान है और परम अद्भुत सुख रूपी मणिकी तो मंजूषा (रत्नपेटिका) ही है ।

सुर, असुर और मनुष्योंके राजा जिनके समक्ष विनत होते हैं और जिन्होंने कर्म-जालको नष्ट कर दिया है, ऐसे पार्श्वप्रभुकी जय-जय होवे । जिन्होंने मुनि जनरूपी सरोजोंको आनन्दित कर दिया है और जो केवलज्ञानरूपी लक्ष्मीके लिए स्वयं कमलके समान हैं, उनकी जय होवे । वे पार्श्व प्रभु भव्यजनरूपी कमलोंके लिए सूर्यके समान हैं, उनसे मिथ्यात्वरूपी अन्धकार-प्रवाह नष्ट हो जाता है । वे जिनेश निजानन्द (आत्मानन्द) देनेवाले हैं, दुःखरूपी अन्धकारको नष्ट करनेके लिए सूर्यके समान हैं । भगवान् पार्श्वनाथ दुष्ट कर्म रूपी जंगलको काटनेके लिए कुठार-तुल्य हैं, वे त्रिलोक-पतियोंसे पूजित हैं और उन्होंने कामदेवको नष्ट कर दिया है, उनकी जय-जय होवे ।

हे देवदेव ! तुम चिन्तामणिके समान हो, मुझे अपने चरणोंकी भक्ति प्रदान कीजिए ।

[५२] हे जीव ! मिथ्यात्वरूपी अपार अन्धकारको नष्ट करनेवाले और मोक्ष देनेवाले अरिहंतकी भक्ति कर । वे अर्हन्त देव अभीष्ट सुख देनेवाले, कठिन से कठिन अनिष्ट हरनेवाले और 'काम' को तो नितान्त भयभीत करनेवाले हैं । त्रिभुवनके ईश उनके चरणोंमें झुक-झुक कर वन्दना करते हैं, वे दुःखोंको नष्ट करनेवाले और समूचे

स्यात्पदचिद् मितमतिगम्भीरं मतं देशितं येन सुसारं ॥ अरिहंत० ॥
चिंतामणि कल्पतरुमपरं भक्त्या पार्श्वदास त्रातारं ॥ अरिहंत० ॥

[पारसदास, पारसविलास, ह० लि० प्र०, जयपुर]

[५३]

भोर भयो मन-वच-तन करि पारस चरणां चित ल्यावो ॥ टेक ॥
सेज त्यागि करि अंग सुद्धता विधितें द्रव्य बनावो ।
जल-चंदन कूं आदि लेयकैं जिन पद पूज रचावो ॥ भोर० ॥
पूजा करो देव गुरु जन की च्यार भावनां भावो ।
तप संजम कूं धारि भविक ज्यूं भव-भव पाप नसावो ॥ भोर० ॥
बानीं सुनो दिगम्बर गुरु की उरमैं अरथ उचावो ।
दान च्यार विधि देय भक्ति तैं दुषनि कूं तरि जावो ॥ भोर० ॥
आनंदकंद चिदानंद आतम के गुण क्यूं नहिं धारो ।
यह उपदेश धारि दृढ़ पारस ज्यूं शिव के सुष पावो ॥ भोर० ॥

[पारसदास, पारसविलास, ह० लि० प्र०, जयपुर]

विश्वके आधारभूत हैं। स्यात् और चित् केवल इन दो को लेकर जिन्होंने अत्यधिक गम्भीर और श्रेष्ठ सार-संयुक्त मतका उपदेश दिया है और जो दूसरे कल्पवृक्ष तथा चिन्तामणि ही हैं तथा जो पारसदास (कवि) जैसे अपने भक्त दासोंकी सदैव रक्षा करते हैं, ऐसे अर्हन्त पार्श्वनाथकी भक्ति कर।

[५३] हे जीव ! प्रातः होते ही मन-वचन और शरीरसे भगवान् पार्श्वनाथके चरणोंमें अपना चित्त लगाओ। शैय्या त्याग कर और अंगोंको शुद्ध कर (स्नान कर) विधि-पूर्वक जल-चन्दन आदि अष्ट द्रव्योंकी रचना कर भगवान्के चरणोंकी पूजा करो। इतना ही नहीं चार भावना भाते हुए एक भव्य पुरुषकी भाँति तप-संयमको धारण कर देव-गुरुकी पूजा करो और भव-भवके अपने पाप नष्ट कर लो।

दिगम्बर गुरुकी वाणी सुनो और हृदयमें उसके अर्थका मनन करो, चार प्रकार के दान, भक्ति-पूर्वक देकर सब दुःखोंसे तर जाओ। हे जीव ! तुम उस आत्माके गुण क्यों नहीं ग्रहण करते जो आनन्दकन्द और चिदानन्द है। इस उपदेशको दृढ़ता-पूर्वक धारण करनेसे पार्श्व प्रभुके समान तुम-भी मोक्ष-सुख पा सकते हो।

यहाँ 'पारस' शब्दका अर्थ 'पारस कवि' भी लिया जा सकता है, अर्थात् पारस कविका कथन है कि इस उपदेशको मजबूतीके साथ धारण करनेसे तुम भी मोक्ष-सुख पा सकते हो।

[५४]

तुम गरीब के निवाज मैं गरीब तेरो।
तुम समान कीजे प्रभु सुण जे दुख मेरो ॥ टेक ॥
दीनबन्धु दयासिन्धु नाम सुन्यो तेरो।
मेरो वसु कर्मनि को मेटो उरझेरो ॥ तुम० ॥
तारक भवि जीवन को ज्ञायक जगकेरो।
मेरे तुम नायक प्रभु मैं हूँ तुम चेरो ॥ तुम० ॥
मैं तो निज रूप भूलि कर्मनि को घेरो।
विषयन रस रक्त भयो रह्यो नाहिन तेरो ॥ तुम० ॥
पूर्व पुण्य के प्रताप सरण गह्यो तेरो।
कर्मनि को बंध मेरो पार्श्व प्रभु उधेरो ॥ तुम० ॥

[पारसदास, पारसविलास, ह० लि० प्र०, जयपुर]

[५५]

गहला रे नर गहला है जिनपद सुमरण बिन तू गहला है ॥ टेक ॥
मात तात सुत नाती गोती ये मतलब के सब पैला है।
तू न किसी का कोउ नहीं तेरा फेरता फिरै अकेला है ॥ गहला० ॥
क्रोध लोभ छल मान विषय मद इन सेती तू लषि मैला है।
पूजा दान सील तप संजम जिन सुमरण बिन तू अहला है ॥ गहला० ॥

---

[५४] हे पार्श्वप्रभु ! तुम गरीबोंका भला करनेवाले हो और मैं गरीब हूँ तथा तुम्हारा भक्त हूँ। हे प्रभु ! मेरा दुःख सुन कर मुझे अपने समान कर लीजिए। मैंने आपका दीनबन्धु तथा दयासिन्धु नाम सुना है, आप मेरी आठ कर्मोंकी उलझन समाप्त कर दो। आप भव्य जीवोंके तारक (तारनेवाले) और संसारके ज्ञायक (जानने वाले) हैं, आप मेरे स्वामी हैं, मैं आपका दास हूँ। मैं अपने निज रूपको भूल कर कर्मोंके घेरेमें बंध गया हूँ, इसी कारण विषयभोगोंके रसमें अनुरक्त हूँ और अब आपका भक्त नहीं रह सका हूँ। पूर्व पुण्यके प्रतापसे आपकी शरण पकड़ी है, हे पार्श्वप्रभु ! मेरे कर्मोंके बन्धको उधेर दो—खोल दो।

[५५] हे नर ! जिनेन्द्रके चरणोंके स्मरणके बिना तू पागल है। माता-पिता, पुत्र, नाती और अपने गोत्रमें उत्पन्न हुए लोग सब स्वार्थके सम्बन्धी हैं। न तू किसी का है और न कोई तेरा है, तू अकेला ही इस संसारमें फिर रहा है, इसे समझ ले।

क्रोध, लोभ, छल, मान, विषय और मद इन सबके कारण तू मैला दिखाई पड़ता है। पूजा, दान, शील, तप, संयम और जिनेन्द्रके स्मरण बिना तू दुःखी है। मैं समझता

मैं समझावूं सो उर धरिलै निश्चै शिवपुर का गैला है।
भजि जिन पास आज तजि पर संबंध सो ही फैला है॥ गहला०॥

[पारसदास, पारसविलास, ह० लि० प्र०, जयपुर]

[५६]

मोहनी मोपै टोना कीनां हे॥ टेक॥
बच तुमरे तब बिसरि गयो मैं
नाम मंत्र न गहो, नां कीनां हे, मोहनी०॥ १॥
पर जड को सम्बन्ध पायकैं
हित में चित नहिं दीनां, कीनां हे मोहनी०॥ २॥
अब तुम सरन गही प्रभु पारस
मोह विजय कर लीनां, कीनां हे मोहनी०॥ ३॥

[पारसदास, पारसविलास, ह० लि० प्र०, जयपुर]

[५७]

सामरिया के नाम जपेतैं, छूट जाय भव-भामरिया॥ साम०॥
दुरित दुरित पुन पुरत गुन, आतम को निधि आगरियाँ।
विघटत है परदाह झट, गटकत समरस गागरियाँ॥ साम०॥
कटत कलंक कर्म कलसायन, प्रगटत शिवपुर डागरियाँ।
फटत घटाघन मोह छोह हट, प्रगटत भेद ज्ञान धरियाँ॥ साम०॥

है, उसे हृदयमें धारण कर ले, तुझे निश्चय रूपसे शिवपुरका मार्ग प्राप्त हो जायेगा। तू पर-सम्बन्ध (अनात्म सम्बन्ध, शरीरादिसे सम्बन्ध) छोड़ कर, जिनेन्द्र पार्श्वनाथकी भक्ति कर।

[५६] मोहनी (माया) ने मुझ पर जादू कर दिया है। इस कारण हे प्रभु! मैं तुम्हारे वचनोंको भूल गया और मैंने तुम्हारा नाम-मंत्र ग्रहण नहीं किया। पर शरीरादिक जड़के सम्बन्धको पाकर मैंने अपने हित (आत्मचिंतन) में चित्त नहीं दिया। हे पारस प्रभु! अब मैंने तुम्हारी शरण पकड़ी है और मोहको जीत लिया है।

[५७] सामरिया—श्यामवर्णके पार्श्वप्रभुका नाम जपनेसे भव-भ्रमणसे छुटकारा मिल जाता है। दुरित—पाप दूर जाते हैं—छिप जाते हैं। और, शुद्धातमका खजाना प्रगट हो जाता है। कर्मोंकी दाह झटसे चुक जाती है। 'समरस'की गागर गटक जाता है, अर्थात् परम रसमें आकण्ठ निमग्न हो जाता है। कलंकसे भरे हुए कर्म कलेश कट जाते है अथवा कर्म-कलंककी जंजीरें कट जाती हैं और शिवपुरके रास्ते दिखाई देने लगते हैं। मोह और लोभके घटाघन—बड़ी-बड़ी घटाओंसे संयुक्त बादल

कृपा कटाक्ष तुमारी ही तैं, जुगल नाग विपदा टरियाँ।
धार भये सो मुक्ति रमावर, दौल नमै तुव पागरियाँ ॥ साम० ॥

[दौलतराम, दौलत पदसंग्रह, कलकत्ता]

[५८]

गौडी प्रभु पारस पूजिये हो, मनधर परम सनेह, गौडी० ॥ टेक ॥
सकल करम भय भंजनो हो, पूरै वांछित आस।
तास नाम नित लीजिये हो, दिन दिन लीला-विलास, गौडी० ॥
केवल पद महिमा लखो हो, धरहु सुथिरता ध्यान।
ज्ञानमाहिं उर आनिये हो, इहिविधि श्री भगवान, गौडी० ॥
और सकल विकलप तजो हो, राखहु प्रभु सों प्रीति।
आप सरवर ए करें हो, यहै जिनंद की रीति, गौडी० ॥
जाके वदन विलोकते हो, नासै दूर मिथ्यात।
ताहि नमहुँ नित भाव सों हो, पास जगत विख्यात, गौडी० ॥

[भगवतीदास 'भैया', ब्रह्मविलास, बम्बई]

[५९]

हौ बलि पास सिव दातार ॥
पास बिस हरउ सह जिनवर,
जगत प्राण आधार ॥ हौ० ॥

फट जाते हैं और भेदज्ञानकी तहें खुल जाती हैं। हे प्रभु! तुम्हारे कृपा-कटाक्ष ही से दोनों नागोंकी विपत्ति टली थी। संसारसे जिनका उद्धार हो गया है ऐसे हे मुक्तिके रमावर! दौलतराम तुम्हारे चरणोंमें झुकता है अर्थात् वन्दना करता है।

[५८] मनमें परम स्नेह धारण कर गौडी पार्श्वनाथकी पूजा करनी चाहिए। वह लीला-विलास (यहाँ लीलासे तात्पर्य आध्यात्मिक लीलासे है, उसमें सतत विलसने वाला) प्रभु सब कर्मोंके भयको नष्ट करनेमें समर्थ है और सभी अभीष्ट मनोकामनाओंको पूरा करता है, उसका नाम प्रतिदिन लेना श्रेयस्कर है। कैवल्य पद-की महिमा समझो और स्थिरता-पूर्वक ध्यान धारण करो तथा ज्ञानकी विधि अपना कर उस श्री भगवान् को अपने हृदय में ले आओ। सम्पूर्ण अन्यान्य विकल्पों को त्याग कर केवल प्रभुसे प्रेम रखो, तो वे भगवान् तुम्हें अपने समान कर लेंगे, यही जिनेन्द्रकी रीति है। जिसके मुखका दर्शन करते ही मिथ्यात्व नष्ट हो जाता है, उस संसार-प्रसिद्ध पार्श्वप्रभुको प्रतिदिन भाव-पूर्वक नमस्कार करो।

[५९] मैं मोक्ष देने वाले श्री पार्श्व जिनेन्द्रपर बलिहारी होता हूँ। हे पार्श्व जिनवर! हमारे सहायक हो कर, हममें जो विष है, उस का अपहरण कर लो। तुम

थावर जंगम रूप बिसहर,
मूल अक्षर सार।
भूत प्रेत पिसाच डाकिनि,
साकिनी भयहार ॥ हौ० ॥
रोग सोग वियोग भयहर,
मोह मल्ल विदार।
कमठ-कृत उपसर्ग सर्गनि,
अचलित योग विचार ॥ हौ० ॥
फणिप पद्मावती पूजित,
पाद पद्म दयालु।
रूपचन्द जनु राख लीजे,
सरण ऊभौ पाल ॥ हौ० ॥

[रूपचन्द, पदसंग्रह, इ० लि० प्र०, जयपुर]

[६०]

जिन्ह के वचन उर धारत जुगल नाग,
भये धरनिंद पद्मावति पलक में।
जाके नाम महिमासों कुधातु कनक करै,
पारस पखान नामी भयो है खलक में॥
जिन की जनमपुरी नाम के प्रभाव हम,
अपनो स्वरूप लख्यो भान सो झलक में।

संसारके प्राणाधार हो। तुम मूलाक्षर ॐ रूप हो और स्थावर तथा जंगम जिस किसीमें विष व्याप्त है, उसे दूर कर देते हो। तुम भूत, प्रेत, पिशाच, डाकिनी और शाकिनीके भयको हटाने वाले हो। रोग, शोक और वियोगका भी हरण करते हो तथा मोह रूपी मल्ल (पहलवान)को विदीर्ण कर डालते हो। तुम कमठासुर-द्वारा किये गये उपसर्गों के बीच भी अचल योग धारण कर बैठे हो। तुम्हारे कमल-जैसे चरणोंकी धरणेन्द्र-पद्मावती ने पूजा की है, तुम अत्यधिक दयालु हो। कवि रूपचन्द कहते हैं कि अपने जन अर्थात् भक्तकी रक्षा कीजिए, आप तो शरणागतका सदैव पालन करते हैं।

[६०] जिनका उपदेश हृदयमें धारण करनेसे नाग-दम्पति पल (क्षण) भर में धरणेन्द्र-पद्मावती हो गये, जिसके नामकी महिमासे कुधातु (बुरी धातु—लोहा आदि) भी स्वर्ण हो जाती है, जो पारस पखान (पारसमणि) के नामसे संसार-भर-में विख्यात है, जिनकी जन्मपुरी (वाराणसी) के नामके प्रभावसे हम भी (बनारसीदास) अपने सही स्वरूपको देखनेमें समर्थ हो सके हैं और वह स्वरूप सूर्य-

तेई प्रभु पारस महारस के दाता अब,
दीजे मोहि साता दृगलोला की ललक में ॥

[बनारसीदास, नाटक समयसार, बम्बई]

[६१]

जनम-जलधि-जलजान जान जनहंस-मानसर ।
सरव इन्द्र मिलि आन, आन जिस धरहिं सीस पर ॥
पर-उपकारी बान, बान उत्थपइ कुनय गन ।
घन सरोजवर भान, भान मम मोह तिमिर घन ॥
घनवरन देह दुख-दाह हर, हरखत हेरि मयूर-मन ।
मनमथ-मतङ्ग-हरि पासजिन, जिन विसरहु छिन जगत जन ॥

[भूधरदास, जैनशतक, कलकत्ता]

[६२]

पास अनादि अविद्या मेरी, हरन पास परमेशा हैं ।
चिद्विलास सुखरास प्रकाश वितरन त्रिभुवन-दिनेशा हैं ॥ टेक ॥
ऋषि मुनि यति अनगार सदा तिस, सेवत पाद कुशेसा है ।
वदन चन्द्र तें झरै गिरामृत, नाशन जन्म कलेशा है ॥ पास० ॥

की झलकके समान प्रकाशवन्त है, वे ही प्रभु पार्श्वनाथ महारस (आत्मरस) के दाता हैं, मुझे भी साता (शुद्धोपयोग) दें, ऐसी प्रार्थना है। मैं प्रभुके दर्शनके लिए सदैव ललकता रहता हूँ ।

[६१] जिस पार्श्वप्रभुको जन्म-मरण रूपी समुद्रका जलयान (नौका) समझ कर और हृदय रूपी मानसरोवरका राजहंस जान कर, सब इन्द्र आ-आ कर अपने सिर पर धारण करते हैं। जिसकी आदत दूसरोंका उपकार करनेकी है, साथ ही जिसका स्वभाव कुनीतियोंके समूहोंको जड़मूलसे उखाड़ फेंकनेका भी है, जो प्रभु एक ओर तो सूर्यके समान श्रेष्ठ कमलोंको विकसित करता है तो दूसरी ओर मोहरूपी घने अंधकारको विदीर्ण भी करता है, जिसका वर्ण बादलके समान है और इसी कारण जो संसारी जीवोंके दुःख रूपी संतापका हरण करता है, जिसे देखते ही जीवोंका मयूर मन हर्षित हो जाता है और जो कामदेव रूपी हाथीके लिए सिंहके समान है, ऐसे हे जिनेन्द्र देव ! संसारी जीवोंको क्षण-भरके लिए भी विस्मरण मत करो। अर्थात् आपके स्मरण रखनेसे वे तर जायेंगे।

[६२] मेरे पास अनादि कालसे अविद्या है, उसको हरण करने वाले पार्श्व-प्रभु परमेश्वर हैं। वे चिद्विलास रूप हैं, अर्थात् चैतन्यके विलासमें सदैव निमग्न रहते हैं। वे तीनों लोकोंके लिए सूर्यके समान हैं। जिस प्रकार सूर्य प्रकाश वितरण करता है, वैसे ही वे सुख के समूह रूप प्रकाश फैलाते हैं। कुशासनपर बैठने वाले ऋषि,

नाम मंत्र जे जपैं भव्य तिन, अघहित नशत अशेषा हैं।
सुर अहमिन्द्र खगेन्द्र चन्द्र है अनुक्रम होंहि जिनेशा हैं॥ पास०॥
लोक अलोक ज्ञाय ज्ञायक पै, रत निज भाव चिदेशा हैं।
सेवक जन तारक, मारक मोह न द्वेषा है॥ पास०॥
भव-समुद्र-विवर्द्धन अद्भुत पूरन चन्द्र सुवेशा है।
दौल नमै पद तासु, जासु शिवथल समेद अचलेशा है॥ पास०॥

[दौलतराम, दौलत पदसंग्रह, कलकत्ता]

[६३]

जपि माला पारसनाथ की॥ टेक॥
भजन सुधारस सों नहिं धोई, सो रसना किस काम की॥ जपि०॥
सुमरन सार और सब मिथ्या, पटतर धूँवा धाम की।
विषम कमान समान विषय सुख, काय कोथली चाम की॥ जपि०॥
कर्म वैरि अहनिशि छल जोवैं, सुधि न परत पल जाम की।
भूधर कैसे बनत विसारैं, रटना पूरन राम की॥ जपि०॥

[भूधरदास, भूधरविलास, कलकत्ता]

मुनि, यति और साधु उनके पैरोंकी सेवा करते हैं। उनके मुख चन्द्रसे वाणी रूपी अमृत झरता है, जिससे संसारमें बारम्बार जन्म लेनेका कष्ट दूर हो जाता है। जो भव्य जीव उनका नाम मंत्र जपता है, उसके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। सुर, अहमिन्द्र, खगेन्द्र और चन्द्र सभी जिनेन्द्रके पीछे-पीछे चलते हैं। वे जानने योग्य लोक और अलोकको जानते हैं, परन्तु वे शुद्ध चैतन्यके ईश सदैव अपने भावमें ही रत रहते हैं। वे सेवकोंके तारने वाले, मोहके मारने वाले, और द्वेष-रहित हैं। पार्श्वप्रभु पूर्णचन्द्र के समान सुन्दर और अद्भुत हैं, जिन्हें देखकर संसारके जीवोंका आनन्द बढ़ने लगता है। जिन पार्श्व प्रभुका निर्वाण-स्थल सम्मेद शिखर है, दौलतराम उनके चरणोंमें नमस्कार करते हैं।

[६३] तीर्थंकर पार्श्वनाथकी माला जपो। उनका बारम्बार नाम लो। जो रसना (जिह्वा) उनके भजनरूपी सुधारस (अमृत) से नहीं धोयी गयी, वह किस काम-की, अर्थात् व्यर्थ है। पार्श्वनाथका स्मरण ही जीवनका सार है और सब कुछ मिथ्या है, जैसे धुँआका घर झूठा होता है। रात-दिन कर्म रूपी दुश्मन छल-कपट करता रहता है और उस भुलावेमें पल और यामको भी सुधि नहीं रहती है। भूधरदासका कथन है कि पूर्ण रामकी रट विस्मरण करने से काम कैसे बन सकता है। अर्थात् पूर्ण राम (आत्म ब्रह्म) का भजन छोड़ देने से कोई व्यक्ति मोक्षरूपी लक्ष्यकी सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता।

[६४]

हम को प्रभु श्रीपार्स सहाय।
जाके दरशन देखत जब ही, पातक जायं पलाय ॥ हम० ॥
जाको इंद फनिंद चक्रधर, वंदै सीस नवाय।
सोई स्वामी अंतरजामी भव्यनि को सुखदाय ॥ हम० ॥
जाके चार घातिया बीते, दोष जु गये विलाय।
सहित अनन्त चतुष्टय साहब, महिमा कही न जाय ॥ हम० ॥
ताकी या बड़ो मिल्यो है हमको, गहि रहिये मन लाय।
द्यानत औसर बीति जायगो, फेर न कछू उपाय ॥ हम० ॥

[द्यानतराय, द्यानतपदसंग्रह, कलकत्ता]

[६५]

भोर भयो भज पारस नाथ, सफल होंहि तेरे सब काज।
धन सम्पति मन वांछित भोग, सब विधि आन बनैं संयोग ॥ भोर० ॥
कल्पवृक्ष ताके घर रहैं, कामधेनु नित सेवा बहैं।
पारस चितामणि समुदाय, हितसों आय मिलैं सुखदाय ॥ भोर० ॥
दुर्लभतें सुलभ्य ह्वै जाय, रोग-सोग-दुख दूर पलाय।
सेवा देव करैं मनलाय, विघन उलट मंगल ठहराय ॥ भोर० ॥

---

[६४] हमको श्री पार्श्व प्रभुकी ही सहायता है, जिनके दर्शन करते ही पाप भाग जाते हैं और इन्द्र, फणीन्द्र (शेषनाग), चक्रधर (चक्रवर्ती) सिर झुका कर वन्दना करते हैं। वही स्वामी अन्तर्यामी हैं और भव्य जीवोंको सुख देने वाले हैं। जिस प्रभु के चार घातिया कर्म नष्ट हो गये हैं, १८ दोष विलीन हो गये हैं और जो अनन्त चतुष्टय सहित है, उसकी महिमा कैसे कही जाये, अर्थात् वर्णनातीत है। वह प्रभु हमको प्राप्त हुआ है, यह हमारा बड़ा सौभाग्य है, मन लगा कर उसे पकड़ रखना चाहिए, फिर तो अवसर बीत जायेगा और कोई उपाय शेष नहीं रह जायेगा।

[६५] प्रातः होते ही पार्श्वप्रभुका भजन कर, तेरे सब काम सफल हो जायेंगे—धन, सम्पत्ति और मनोवांछित भोगोंका संयोग सब प्रकारसे प्राप्त होगा। उसके घरमें कल्पवृक्ष लग जायेंगे और कामधेनु नित्यप्रति सेवामें तल्लीन रहेगी। भगवान् पार्श्वनाथ चिन्तामणि हैं, उनके कारण सुख देने वाले समूह आ जुटते हैं। दुर्लभ कार्य सुलभ हो जाते हैं। रोग-शोक और दुःख दूर पलायन कर जाते हैं। देव मन लगा कर सेवा करते हैं और विघ्न लौट कर मंगल रूप परिणत हो जाते हैं। द्यानत,

डांयन भूत पिशाच न छले, राज चोर को जोर न चले।
जस आदर सौभाग्य प्रकास, द्यानत सुरग मुकति पद वास ॥ भोर० ॥

[द्यानतराय, द्यानत पदसंग्रह, कलकत्ता]

[६६]

पंच परमगुरु सुमरौ, सारद गुरु अवधारी।
पारस श्री जिणेश्वर, सरण तिहारी ॥ टेक ॥
सरण तिहारी राखो लाज हमारी।
मोहि भवसों पार उतारी ॥ पारस० ॥
जुगल नाग जिन जरत उबारे
मन्त्र सुनायो नवकारी हो ॥ पारस० ॥
बहुत भोग बिरकत भये स्वामी
मन वैराग विचारी हो ॥ पारस० ॥
तिन प्रसाद धरणेन्द्र पद्मावती।
पायो पद सुभकारी हो ॥ पारस० ॥
कमठ मान भंजन करि प्रभु जी
राख्या मन अतिभारी हो ॥ पारस० ॥
जे तुम नाम जपे निसि वासर,
तुम गुण को महिमा बरनन कूं।
को समर्थ संसारी हो ॥ पारस० ॥

[सुखालचन्द काला, चौबीस तीर्थंकरों की विनती, ह० लि० प्र०, बड़ौत]

भूत और पिशाच छल नहीं पाते, राज्यमें चोरोंका जोर नहीं रहता। यश और आदर प्राप्त होते हैं तथा सौभाग्य चमकने लगता है। कवि द्यानत कहते हैं कि अन्तमें स्वर्ग ही नहीं, मुक्ति पद भी प्राप्त हो जाता है।

[६६] पंच परमेष्ठीका स्मरण कर, शारदा और गुरुको हृदयमें धारण करता हुआ, हे पार्श्वजिनेश्वर! मैं आपकी शरणमें आया हूँ। हमारी लाजकी रक्षा कीजिए और हमें भव-समुद्रसे पार उतार दीजिए। जिन प्रभुने अग्नि में जलते हुए दो नागोंको नवकार मन्त्र सुना कर उबार दिया और जो मनमें वैराग्य धारण कर बहुत प्राप्त भोगोंसे विरक्त हो गये, उन प्रभुके प्रसादसे धरणेन्द्र और पद्मावतीने शुभकारी पद प्राप्त किया, कमठके मानको नष्ट कर, उनके (धरणेन्द्र-पद्मावती) के मनकी अभिलाषा पूर्ण की। कोई यदि रात-दिन तुम्हारा नाम जपे, फिर भी ऐसा कौन संसारी है जो तुम्हारे असीम गुणोंकी महिमाका वर्णन कर सके। अर्थात् गुण इतने अधिक हैं कि उनकी पूरी महिमाका वर्णन करनेमें कोई भी जीव समर्थ नहीं है।

[६७]

सो जयो पास जिनेन्द्र पातक हरन जग चूड़ामनी ॥ टेक ॥

निज मरन देखि अनंग डरप्यो, सरन ढूढत जग फिरयो ।
कोई न राखै चोर प्रभु को, आय पुनि पांयन गिरयो ।
यों हार निज हथियार डारे, पुहुप-वर्षा मिस भनी ।
सो जयो पास जिनेन्द्र पातक हरन जग चूड़ामनी ॥

चन्द्रार्चि-चय छबि चारु चंचल, चमर-वृन्द सुहावने ।
ढोलैं निरन्तर जच्छ नायक, कहत क्यों उपमा बने ।
यह नीलगिरि के शिखर मानो, मेघझर लागी घनी ।
सो जयो पास जिनेन्द्र पातक हरन जग चूड़ामनी ॥

दुति देखि जाकी चांद शरमे, तेजसों रवि लाजए ।
अब प्रभामंडल जोग जग में कौन उपमा छाजए ।
इत्यादि अतुल विभूति मण्डित, सोहये त्रिभुवन धनी ।
सो जयो पास जिनेन्द्र पातक हरन जग चूड़ामनी ॥

[भूधरदास, पार्श्वपुराण, कलकत्ता]

---

[६७] पापोंको हरने वाले, संसारमें चूड़ामणि रूप अर्थात् सर्वश्रेष्ठ पार्श्व जिनेन्द्र सदैव जयवंत हों । अपनी मौत देख कर अनंग (कामदेव) भयभीत हुआ और समूचे संसारमें शरण ढूँढ़ता फिरा, किन्तु किसीने शरण नहीं दी । अन्तमें वह पार्श्व प्रभुके चरणोंमें आ गिरा, उसने पुष्प-वर्षाके बहाने अपने सब हथियार डाल दिये, उसे शरण मिल गयी ।

चन्द्रकी चाँदनीके समूहमें जैसी छवि और चंचलता होती है, वैसे ही सुहावने चमर-वृन्दोंको यक्ष-नायक पार्श्व प्रभु पर सदैव डुलाते रहते हैं । उसकी उपमा नहीं दी जा सकती । ऐसा लगता है जैसे नीलगिरि (नीले पहाड़)के शिखर पर मेघोंकी झड़ी लगी हो । पार्श्व प्रभु काले होनेके कारण नीलगिरिके समान हैं और वर्षाके पानीका रंग सफेद होता है, अतः वह चमर वृन्दके तुल्य है ।

जिस की द्युति देख कर चाँद भी शरमा जाता है और जिस के तेज से सूर्य भी लज्जित हो जाता है । उसके प्रभामण्डलके योग्य जगमें कौन-सी उपमा शोभा दे सकती है, अर्थात् कोई नहीं, वह अनुपम है । इस प्रकारकी अतुल विभूतियोंसे मण्डित हो कर वे त्रिभुवन धनी पार्श्व प्रभु शोभायमान होते हैं ।

[६८]

लागी मैंडो प्रीति तु साढ़े नाल
तुझनू मिहरि कछू नहीं आंदी
मैंडा दिल बेहाल, लागी मैंडो० ॥
निरषिय सानूं पासि पास प्रभु
भंजि विरह जंजाल, लागी मैंडो० ॥
जग साहिब तुझनों जग अरबंदा
करि मैंडो प्रतिपाल, लागी मैंडो० ॥

[जगतराम, पदसंग्रह, ह० लि० प्र०, बड़ौत]

[६९]

ऐसो प्रभु पाय विसारत क्यों रे
सुर नर मुनि जन ध्यावत जाकौं
चंद चकोर मीन जल ज्यों रे ॥ ऐसो प्रभु० ॥
तीन लोक की संपति जेती
तू चाहत अपने घर ल्यों रे
कहो किन नें पाई कहु कैसें
जिन पाई तिन सुमरन सों रे ॥ ऐसो प्रभु० ॥
पारस कों छांड़ि आंन कौं सेवत
कांच ग्रहण मणि छांडत ज्यों रे
जगतराम कोउ कैसेहि समझो
श्रीगुरु को तौ सिष्या यों रे ॥ ऐसे प्रभु० ॥

[जगतराम, पदसंग्रह, ह० लि० प्र०, बड़ौत]

---

[६८] हे प्रभु ! मेरा प्रेम तो आपसे लगा है, किन्तु आपने मुझ पर कुछ कृपा नहीं की, इसलिए मेरा दिल बेकरार है।

हे पार्श्वप्रभु ! अपनी शरणमें आये इस भक्तको साक्षात् दर्शन दीजिए, जिससे उसका विरहका घेरा समाप्त हो।

हे जगके साहिब ! तुमने जगपर कृपा की है। मेरा भी प्रतिपालन कीजिए।

[६९] हे जीव ! चकोरके चन्द्र और मीन (मछली) के जल-ध्यानकी भाँति देव, मनुष्य और मुनि जिस का ध्यान लगाते हैं, उस प्रभु को पा कर भी तू भुलाता क्यों है ? तीनों लोकमें जितनी सम्पत्ति है, तू उस सबको अपने घरमें लाना चाहता है, किन्तु समझ उसे कोई कैसे प्राप्त कर पाता है, उसे जिस किसीने पाया, केवल सुमिरनके बल पर। पार्श्व प्रभुको छोड़ कर जो अन्य किसी देवकी सेवा करता है, वह मानो मणिको छोड़ कर काँचको ही ग्रहण करता है। जगतरामका कथन है कि कोई कैसे ही समझे, श्री गुरु महाराजकी तो यही शिक्षा है।

[७०]

निरखि छबि आनंद भयो छै अमंद ॥ टेक ॥
जैसें कमल भानु लखि फूलै
ज्यौं कुमदनी लखि चंद ॥ निरखि० ॥
संकट विकट कट्यौ अब मेरो
दूरि भयौ सब फन्द ।
अब नहिं अशुभ कर्म मोंहि घेरै
प्रगट भयो शुभ वृन्द ॥ निरखि० ॥
सब भव सुधरि गयो अब मेरो
पायो सिव सुख-कन्द ।
रूप सांवरो निसि दिन घट में
राजो पास जिनचन्द ॥ निरखि० ॥

[रूपचन्द, पदसंग्रह, इ० लि० प्र०, जयपुर]

[७१]

प्रभु थांका जी दरस की
लगन हिये लागी ॥ टेक ॥
ध्यानारूढ विराजत मूरति
सुख ममता रस पागी ॥ प्रभु थांका ॥
देखत ही अघ पटल विलाये
सुमति सरस उर जागी ॥ प्रभु थांका ॥
रूप पास को निरखि छक्योचित
आज भयो बड़भागो ॥ प्रभु थांका ॥

[रूपचन्द, पदसंग्रह, इ० लि० प्र०, जयपुर]

---

[७०] पार्श्वप्रभु की छबि देखकर अमंद (बहुत अधिक) आनन्द प्राप्त हुआ, ठीक वैसे ही, जैसे सूर्यको देखकर कमल और चन्द्रमाको देखकर कुमुदिनी फूल जाती है। प्रभु के दर्शनसे मेरा सब भयंकर संकट कट गया और सब फन्दे दूर हो गये। अब शुभ कर्म प्रकट हो गये हैं, अतः अशुभ कर्म मुझे घेर नहीं सकते। अब तो मेरा सम्पूर्ण भव ही सुधर गया क्योंकि मैं ने मोक्ष के मूल को प्राप्त कर लिया है। अब सांवला रूप है जिस का, ऐसा पार्श्व जिनचन्द रात-दिन मेरे हृदय में वास करता है, अर्थात् मैं सदैव उसका स्मरण करता रहता हूँ।

[७१] हे प्रभु ! आपके दर्शनकी हृदयमें लगन लगी है। आपकी ध्यानारूढ़ मूर्ति विराजमान है और उसका मुख समता रसमें पगा हुआ है। उसे देखते ही पापोंके समूह विलीन हो गये और रसमें पगी सुमति हृदयमें जाग उठी। पार्श्व प्रभुके रूपको देख कर चित्त छक गया और आज मैं बड़भागी हो गया।

[७२]

श्री जिनवर म्हांने लागै प्यारा
केवलज्ञान विराजित भाविकों
भवदधि पार उतारन हारा ॥ श्री जिन० ॥
परम अखंडित परमातम प्रभु
कर्म पंक तैं न्यारा ।
अचल अबाधित सत चित् आनन्द
गुण अनन्त अविकारा ॥ श्री जिन० ॥
त्रिभुवन-नाथ विरद तारक है
सिव सुख के दातारा ।
वेद विख्यात बली व्रत प्रभु को
महिमा अगम अपारा ॥ श्री जिन० ॥
धरम धुरंधरु परम पूज्य प्रभु
हरि है भवि दुख भारा ।
कहै दीप प्रभु ऐसे तुम
द्यौ अविनासी सुख सारा ॥ श्री जिन० ॥

[दीपचन्द, पदसंग्रह, ह० लि० प्र०, जयपुर]

[७३]

श्री जिनराय दयानिधि नामों मोकूं तुम सम करहु अकामी ॥ श्री० ॥
विसन अन्याय पाप लति हरिये शुचि रतनत्रय में रुचि धरिये ।
पर परणति सों कुराह मिटावो निज परणति गति मेरी पारो ॥ श्री० ॥

---

[७२] श्री जिनवर मुझे प्यारा (अच्छा) लगता है, क्योंकि वह सदैव केवलज्ञानसे सुशोभित रहता है। वह संसाररूपी समुद्रसे पार उतारने वाला है। प्रभु परम अखंडित है, परमातम है, क्योंकि वह कर्मरूपी कीचड़से नितान्त पृथक् हो चुका है। वह अचल है, अबाधित है, सच्चिदानन्द है, अनन्त गुण वाला है और अविकार है। वे प्रभु तीनों लोकोंके नाथ हैं और संसारसे तारनेका उनका विरद है, वे शिव-सुख (मोक्ष-सुख) के देने वाले हैं। कठोर दुर्धर्ष व्रतोंको धारण करनेवाले प्रभुकी अपार अगम्य महिमा वेदोंमें भी विख्यात है। वे परम पूज्य प्रभु धर्म धुरन्धर हैं और संसारके भारी-भारी दुःखों को हरने वाले हैं। कवि दीपचन्द कहते हैं कि ऐसे हे प्रभु ! तुम अविनाशी सुख मुझे दो।

[७३] हे श्री जिनराज ! तुम नामी दयानिधि हो, अर्थात् दया करने वालेके रूपमें तुम्हारा नाम जगत्प्रसिद्ध है। मुझको आप निष्काम बना कर अपने समान कर लो।

विषय भोग, अन्याय और पाप करनेकी मेरी आदत है, उसे दूर कर दीजिए

तुम ढिग वा तुम वचन सुनत उर वीतरागता जचत जगत गुर।
जब होय विरह विषय संगि रचि है या कुवांणि मेट्या हम बचि हैं॥श्री०॥
भक्ति तुमारी तब लूं चावूं जबलूं सिवपुर वास न पावूं।
अंत समाधि मरण तुम सेवा द्यौ निरविघ्न पार्श्व जिनदेवा॥ श्री०॥

[पारसदास, पारसविलास, ह० लि० प्र०, जयपुर]

[७४]

तब इन्द्रादि लगे थुति करन। जय जिनवर सब आरत हरन॥
त्रिभुवन भवन दीप उनहार। धन्य देव तेरो अवतार॥
बिन स्नान तुम निर्मल नित्त। अंतर बाहिर सहज पवित्त॥
हम मज्जन विधि कीनो आज। निज पवित्रकरन जिनराज॥
तुम जगपति देवन के देव। तुम जिन स्वयंबुद्ध स्वयमेव॥
तुम जगरक्षक तुम जग तात। तुम बिनकारन बन्धु विख्यात॥

और ऐसा कीजिए कि पवित्र रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र) में मेरी रुचि उत्पन्न हो। पर परणतिके कारण कुमार्ग पर मैं चलने लगा हूँ, उस कुमार्ग को मिटा दीजिए और 'निजपरणति' (आत्म परणति) की ओर मोड़ दीजिए। हे जगद्गुरु! तुम्हारे समीप रहते हुए अथवा तुम्हारे वचन सुनते हुए हृदयमें वीतरागता-की बात जँच जाती है, किन्तु जब विषयभोगोंकी संगतिसे मेरा छुटकारा हो जायेगा, और जब कुवाणी में मेरा रंचना (मन लगना) समाप्त हो जायेगा, तब मैं समझूँगा कि मैं बच गया, अर्थात् सांसारिक विपत्तियोंसे छूट गया।

हे पार्श्व जिनदेव! मैं आपकी भक्ति तब तक चाहता हूँ, जब तक मुझे शिवपुर (मोक्ष) का वास प्राप्त न हो जाये। आपकी सेवासे मेरा अन्त निर्विघ्न समाधि मरणपूर्वक हो, ऐसा वरदान दीजिए।

[७४] सुमेरु पर्वतपर सद्यःजात तीर्थंकर पार्श्वनाथका, क्षीरसागरके १००८ कलशोंसे स्नपन करवानेके उपरान्त इन्द्रादिक उसकी स्तुति करने लगे।

हे जिनवर! आप सब दुःख हरने वाले हैं, आपकी जय हो। तीनों लोकोंमें देदीप्यमान दीपकोंके समान आपकी दीप्ति है। हे देव! तुम्हारा अवतार हुआ, धन्य है।

हे प्रभु! तुम स्नानके बिना ही नित्य निर्मल हो, तुम्हारा अन्तर और बाहर सहज स्वाभाविक रूपसे ही पवित्र है। आज हमने आपका जो स्नान कराया है, वह तो हे जिनराज! हमारे अपने पवित्र करनेके लिए है। हे जगपति! तुम देवोंके देव हो, तुम जिन हो और तुम स्वयं स्वयंबुद्ध हो। तुम संसारकी रक्षा करने वाले और

तुम गुनसागर अगम अपार। थुतिकर कौन जाय जन पार॥
सुच्छम ज्ञानी मुनि नहिं तरैं। हम से मंद कहा बल धरैं॥
नमों देव अशरन आधार। नमो सर्व अतिशय भण्डार॥
नमो सकल शिवसंपतिकरन। नमो नमो जिन तारन तरन॥

[भूधरदास, पार्श्वपुराण, कलकत्ता]

[७५]

प्रात भयो सुमरि देव पुण्यकाल जात रे।
चूकत जे औसर ते पीछे पछितात रे॥
गाफिल ह्वै रह्यो कहा दुर्लभ है समो महा।
पास रखोइ दुष्ट तेरे धर्म को चुरात रे॥
पुत्रादिक दूरि टारि चित्त सों उतारि नारि।
नींदडी निवारिये सुध्यानकौं भुलात रे॥
लाभ अरु अलाभ दोइ मेटि सकै नाहिं कोइ।
होनहार सोइ होइ कहा सटपटात रे॥
करम ये कुरंग जानि चंचल मन कपि पिछानि।
इनकौं वसि आनि तेरो फल्यो खेत खात रे॥
इष्ट मंत्र कौं संभारि संवर कौं हिये धारि।
जिनको जय-जयकार ज्यौं सुभाव रिद्धि आत रे॥

जग-पिता हो। तुम बिना कारणके ही हर किसीके बन्धु हो। तुम गुणोंके तो समुद्र ही हो और वह समुद्र भी ऐसा-वैसा नहीं अगम और अपार है। भला स्तुतिके द्वारा कौन व्यक्ति उसके पार जा सकता है। उसे तो सूक्ष्मज्ञान वाले मुनि भी नहीं तैर सकते, हम-जैसे मंदबुद्धियोंमें तो बल ही कितना है।

हे देव! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप अशरणके आधार और सब अतिशयोंके भण्डार हैं। आप मोक्षरूपी सम्पत्ति के देने वाले है, तारन-तरन हैं। मैं आपको बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

[७५] हे जीव! प्रातःकाल होते ही देवका स्मरण करो, नहीं तो पुण्यकाल बीत जायेगा, इस अवसरको जो चूक जाते हैं, वे पीछेसे पछिताते है। तुझे दुर्लभ समय प्राप्त हुआ है किन्तु तू उधरसे बराबर असावधान बना रहता है। तेरे समीप रखे तेरे धर्मको दुष्ट कर्म चुरा ले जाते हैं और तुझे होश भी नहीं आता।

हे जीव! तू भगवान्‌के श्रेष्ठ ध्यानको भुला कर नींदमें डूबा है, उसे दूर कर दे। पुत्रादिकोंको दूर हटा दे और चित्तसे स्त्री (पत्नी) को भी उतार दे। अर्थात् इनसे मोह समाप्त कर। लाभ और हानिको कोई मेट नहीं सकता, जो होने वाला होगा वही होगा, तू घबड़ाता क्यों है। मन कुरंग (हिरण) की भाँति चंचल है और कर्म

जगतराम पास नाम जपौ यौं विचारि काम।
सबै सिद्धि होत पूज्यगुरु जीवतात रे॥

[जगतराम, पदसंग्रह, ह० लि० प्र०, बकौत]

[७६]

वा घड़ी कौन सी हो देखूं पारस नैना।
जाके तन दुति ऊपर सजनी वारूं कोटिक नैना॥
शान्त छबि पद्मासन राजत स्वर्ग-मुक्ति-सुख दैना।
बिन देख्या 'जोधा' अति तड़फत देखत अति सुख चैना॥

[जोधराज, पदसंग्रह, ह० लि० प्र०, जयपुर]

[७७]

इततें निकसी सुमति राधिका उततें पारस राई,
खेलत फाग प्रेम अति बाढ़ो सोभा बरणी न जाई।
छमा नीर संजम केसरि घिस ध्यान माट में भराई,
आराधन पिचकारी कनक की छोडे हरष बड़ाई।
प्रीति अति ही सरसाई॥
सद्गुरु बचन मृदंग बजत है, नय जग ताल लगाई।
पंचेन्द्री दमत नर्तकी गुण चेतन को गाई,
चउपुर बजत बधाई॥

बन्दरकी तरह समझो। ये दोनों ही तेरे फले हुए खेतको खा जाते हैं। संवरको हृदयमें धारण कर, अपने इष्ट मंत्रका उच्चारण कर, जिनेन्द्रका जय-जयकार कर, जिससे तुझे सहज ही ऋद्धियाँ प्राप्त हो जायें।

[७६] वह घड़ी कौन-सी होगी जब मैं अपने नेत्रोंसे पार्श्वप्रभुको देखूँगा, जिसके शरीरकी द्युतिके ऊपर करोड़ों नेत्रोंको न्यौछावर किया जा सकता है। पद्मासनसे बैठे पार्श्व प्रभुकी शान्त छवि सदैव शोभा देती है और उसका दर्शन करना-भर स्वर्ग ही नहीं मुक्ति-सुखको भी देने वाला है। जोधराज कहते हैं कि ऐसे प्रभुको बिना देखे मैं तड़फा करता हूँ और देखते ही सुख-चैन मिल जाता है।

[७७] इधरसे सुमतिरूपी राधिका निकली और उधरसे पारसराय। फाग खेलते हुए दोनोंमें प्रेम बढ़ता ही गया और उस खेल की शोभा तो ऐसी थी कि उसका वर्णन ही नहीं हो सकता।

क्षमारूपी पानीमें संयमरूपी केसर घिस कर ध्यानरूपी मटकेमें भरी गयी है। स्वर्ण की बनी हुई आराधनारूपी पिचकारी से उसे छोड़ते हुए अत्यधिक हर्ष होता है। इस प्रकार प्रेम विकसित हो रहा है। सद्गुरुके वचनरूपी मृदंग बज रहा है, इस पर नयरूपी ताल लग रही है। पंचेन्द्रियोंका दमन, वही नर्तकी है, वह चेतनके गुण गा रही है और चारों लोकोंमें बधाई बज रही है।

निज अनुभूति लषी परमांही, पर को निज मैं धारी
परकौं आप जानि परमांही, आप जानि हितकारी।
हनी गई सुधि बुधि थारी॥

[सुन्दरदास, सुन्दर विलास, इ० लि० प्र०, दिल्ली]

[७८]

भौंदू धन हित अघ करै, अघ तैं धन नहीं होइ।
धरम करत धन पाइये, मन-वच-तन करि जानै सोइ॥
जे आषर विधना लिख दीन्ह, ताहि मेटै नहिं कोइ।
सिषर चढै बसि लोभ कै, अधिकै पावौ नहिं सोइ॥
रात-दिवस चिंता चिता माहीं जरै मति जीव।
जौ दियौ सो पाइयौ और लहै न कदीव॥
लागि धरम जिन पूजिये, सांच कह्यो सब कोइ।
चित्त पारस चरन लगाइयौ, तब मन वांछित फल होइ॥

[मनोदर, धर्मपरीक्षा, इ० लि० प्र०, जयपुर]

[७९]

पारस प्रभु विसारि कैं हों भरम्यौ चिरकाल।
कृपा करौ जन दीन पर, तुम हौ दीनदयाल॥

तुम अपनी अनुभूति को परायी अनुभूति समझते हो और परायी अनुभूति को अपनी मानते हो। तुम पर (शरीर) को निज मानते हो और परहित को अपना हित गिनते हो। इस भाँति तुम्हारी सारी सुधि-बुधि मारी गयी है, ऐसा मैं समझता हूँ।

[७८] हे भौंदू जीव! तू धन के लिए पाप करता है, किन्तु पाप करने से धन इकट्ठा नहीं हो सकता। धर्म करने से ही धन मिलता है, इसे मन-वचन-तन से जान लो। विधाता ने भाग्य में जो अक्षर लिख दिये हैं, उन्हें कोई मिटा नहीं सकता। लोभ के वशीभूत हो कर यदि कोई सम्मेदशिखर पर चढ़ता है अर्थात् यात्रा करता है, तो भी वह भाग्य में लिखे से अधिक नहीं पा सकता। हे जीव! रात-दिन चिन्ता में मत जल, जितना तेरे कर्मों ने दिया है उतना ही पायेगा, उस से अधिक नहीं— कभी भी नहीं।

हर किसी ने सच कहा है कि धर्म से लग कर भगवान् जिनेन्द्र की पूजा कीजिए और अपने चित्त को प्रभु पारसनाथ में लगाइए। तब कहीं, तुम्हारा मनभाया फल प्राप्त होगा।

[७९] हे पारस प्रभु! आपको विस्मरण कर मैं चिरकाल तक इस संसार में भटकता रहा हूँ। आप दीनदयालु हैं और मैं दीन हूँ, अतः मुझपर दया करो।

भवसागर अति ही गह्वर, नाना दुख जल माहिं।
प्रभु तुम नाम जिहाज बिन, आन सरनको नाहिं॥
तुम सेवा थें नाथ जी, हौं अनादि कौ चोर।
करौ सहाय कृपाल जो, देखौ मेरी ओर॥
भो मति तुछ अनंत गुँण, तुम स्तुति किम होइ।
भगति भाव प्रेरित प्रभु और विचार न कोइ॥
लोह कनक पारस परस होत नाम परभाइ।
तुम सेव आतम मुकत अचिरज को जिनराइ॥
तुम गुन अकथ अपार प्रभु मै लघु बुधि थुति कीव।
यह विनती मनराम की, पाऊँ सेव सदीव॥

[मनराम, मनराम विलास, ह० लि० प्र०, जयपुर]

[८०]

जाप जपौ भावै ताप तपौ
भावै व्रत करौ जु लहौ सब भेदं।
नगन रहो भानु-धूप सहौ
तीरथ जाय करौ बहु खेदं॥

भव समुद्र बहुत ही गहरा है। उसके जलमें तरह-तरहके दुःख छिपे हुए हैं। उससे निकलनेका सहारा तुम्हारे नाम रूपी जहाजके अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

हे नाथ जी! तुम्हारी सेवासे सदैव मुँह छिपाता रहा। आप कृपालु हैं, मेरी दुर्दशा देखते हुए, सहायता कीजिए।

हे प्रभु! आपमें अनन्त गुण हैं और मेरी बुद्धि तुच्छ है, फिर आपकी स्तुति कैसे हो सकती है। फिर भी भक्ति भावसे प्रेरित होकर ही स्तुति करता हूँ और कोई विचार नहीं है।

पारसके स्पर्शसे लोहा स्वर्ण बन जाता है, वैसे ही हे पारस प्रभु! यदि आपके नाम के प्रभाव से यह जीवात्मा मुक्त हो गयी तो क्या आश्चर्य है।

हे प्रभु! तुम्हारे गुण अकथ्य हैं, अपार हैं और मैंने अपनी छोटी बुद्धि से आपकी स्तुति की है, अब मनरामकी केवल एक ही विनती है कि आपकी सेवा सदैव प्राप्त करता रहूँ।

[८०] कवि मनोहरने लिखा है कि हे जीव! चाहे जाप जपो, चाहे तपस्या करो, चाहे सब भेद-प्रभेद सहित व्रत कर डालो, चाहे नग्न रहकर सूर्यकी कड़ी धूप

मौन करौ भावै ध्यान धरौ
सांसत सहौ जु पढौ नित वेदं ।
एतो कियो तो कहा भयौ जु
श्री पास बिना जु सबै फल छेदं ॥

[मनोहर, धर्मपरीक्षा, ह० लि० प्र०, जयपुर]

[८१]

मोहि लगनि लागी हो
पारस जी तुम दरसन की ॥
सुमति चातकी की प्यासी
जो पावस ऋतु-सम आनंदघन बरसन की ॥
बार-बार तुमकौं कहा कहिये
तुम सब लायक हो मेटौ बिथा तरसन की ॥
त्रिभुवनपति जगराम प्रभु
अब सेवक कौं द्यौ सेवा पद-परसन की ॥

[जगराम, पदसंग्रह, ह० लि० प्र०, जयपुर]

[८२]

अरे तोकौं कैसें करि समझाऊँ मद छकि मन मतवारे ।
औसर बीतें फिरि पछितैहौ मूढ अजान जन म्हारे ॥ तोकौं० ॥
तन-धन-जोबन थिर नहिं जै है जैसें भोर भये तारे ।
यातें बेगि संभारि ज्ञान तू निज परनति रंग झरलारे ॥ तोकौं० ॥

सहन करो अथवा तीर्थोंमें जाकर नाना कष्ट झेलो । घरमें रहो या बनमें जाकर ध्यान धारण करो, अथवा वेदाध्ययनका कष्ट सहो, किन्तु इतना सब कुछ भी किया तो क्या किया, अर्थात् इन सबके करनेसे कुछ नहीं होता, श्री पार्श्वनाथकी भक्तिके बिना सब फल निष्फल है ।

[८१] हे पारसनाथ जी ! मुझे तो आपके दर्शनकी लगन लगी है । हमारी सुमतिरूपी चातकी, वर्षा ऋतुके बादलके समान, आपके परमानन्दके धारासार रसकी प्यासी है । मैं बार-बार आपसे क्या कहूँ, आप सब लायक हैं, मेरी तरसनेकी व्यथा (कष्ट) मेट दो । जगरामका कथन है कि हे त्रिभुवनपति प्रभु ! अब सेवकको अपने चरणोंकी सेवा करनेका अवसर देकर अपना लीजिए ।

[८२] ओ मतवारे मन ! मैं तुझे कैसे समझाऊँ, तू सदैव नशेमें मस्त रहता है । हे मूढ़ अज्ञानी जन ! अवसर बीतनेपर फिर पछतायेगा । तन, धन और यौवन कोई स्थिर नहीं है, सब प्रातःके तारागणोंके समान बीत जायेंगे, इस कारण शीघ्र ही

जप-तप-संजम धर्म दया करि दूरि होहिं भव दुख भारे।
चैनविजे प्रभु पद पंकज बस तासौं काज सरैं सारे ॥ तोकौं० ॥

[चैनविजय, पदसंग्रह, ह० लि० प्र०, बड़ौत]

[८३]

सुष संपति दायक सुरनायक परतष्य पाप निकंदा है।
जाकी छबि कांति अनोपम उपम दीपत जाणि जिणंदा है ॥
मुष जोति झिगामग झिगमग पूनिम पूरण चंदा है।
सब रूप सरूप बषाणे भूप सो तू ही त्रिभुवन नंदा है ॥
करुणारस सागर नागर लोक सबै मिलि जस्स पुणंदा है।
तोरि षिजमति करै इकचित्त सुसेवक तो धरणिंदा है ॥
तैं जलतो आगि निकाल्या नाग किया बम्माग सुरंदा है।
तो चरणां आय रह्यां लपटां इकला अति केलि करंदा है ॥

[जिनहर्ष, पार्श्वनाथ नीसाणी ह० लि० प्र०, महावीरजी]

[८४]

तुम सेवो भविजन पास जिनंद कौं, तातैं पातिग जाइहो।
अनंतकाल मिथ्यात भ्रमन कीनौं, मोह विषै सुष पाइहो ॥ तुम० ॥

तू अपने मूल ज्ञानको सम्हाल ले और स्व परणतिके रंगमें रँग जा। जप-तप, समय, धर्म और दया कर, जिससे तुम्हारे संसारके भारी दुःख दूर हो जायें। चैनविजयका कथन है कि प्रभुके चरण कमलोंमें बस, जिससे तुम्हारे सब काम पूरे हो जायें।

[८३] जिनेन्द्र सुख रूपी संपत्ति को देने वाला, सुर और नरोंका नायक तथा प्रत्यक्ष पापोंको नष्ट करने वाला है। जिसकी छवि अनुपम है, अर्थात् उसकी उपमा नहीं है। वह अत्यधिक दैदीप्यमान है। उनके मुखकी ज्योति पूर्णमासीके चन्द्रमाके समान जगमगाती है। जिसके रूप-सरूपका हर कोई बखान करता है, वह त्रिभुवनको आनन्दित करनेवाला तू ही एकमात्र भूप है। तुम करुणा रसके सागर हो। सब नागर लोग मिलकर आपके पुण्यका वर्णन करते हैं। धरणेन्द्र सुसेवक होकर एकचित्तसे एकनिष्ठ होकर आपकी सेवा करता है। आपने जलती हुई आगसे नागको निकाला और उसे वैमानिक स्वर्गका सुरेन्द्र बना दिया। वह आकर आपके चरणों में लिपट गया—वन्दना की। वह सुखोपभोग करता है।

[८४] हे भव्य जीवो ! तुम पार्श्व जिनेन्द्रकी सेवा करो, ऐसा करनेसे तुम्हारे सभी पाप पलायन कर जायेंगे। अनंत काल तक तुम मिथ्यात्व में भ्रमते रहे

लखि चौरासी जीवा जौनि में चहुँगति रहे लपटाइ हो ॥ तुम० ॥
नरभव पाइ भजौ जिनवर कौं समकित सों चित लाइ हो ॥ तुम० ॥
रूडा जो जीतै को जग कौं जे जिनदास कहाय हो ॥तुम० ।

[रूडाजी, पदसंग्रह, ह० लि० प्र०, बड़ौत]

[८५]

हो पारस जिन भविकंज बोध दिन,
उपसर्ग कौं दलन असरन कौं सरन ।
कमठ जु कोप करि रज षेपी तुम पर,
तेरी कहूँ छायाहू कौ लेसहू न अवरन , जै जै हो० ॥
अति घन बरसायो मूसल सो धार छायौ
विकट गरज बीज झंझा वात कौ धरन ।
प्रेत बज्र कौं पठायौ गरे रुंडमाल धायौ
परे के समुष आगे देषत भय करन, जै जै हो० ॥
तब शेषनाग आयौ फण कौ सुछत्र छायौ
तुम ध्यान उर लायौ करम गन हरन ।
ग्यान परकास भयौ कमठ निरास थयौ
जगतराम दास नयौ निरषि वर चरन, जै जै हो० ॥

[जगतराम, पदसंग्रह, ह० लि० प्र० बड़ौत]

हो और मोहसे भरे विषय-भोगोंमें सुख प्राप्त किया है। अभी तक तुम निरन्तर, चौरासी लाख जीवयोनिको चार गतियोंमें लिपटे रहे हो। अब तुमने नरभव पाया है तो सम्यक्त्वमें चित्त सानकर जिनवरका भजन करो। कवि रूडाजीका अभिमत है कि जगको वही जीत सकता है जो जिनेन्द्रका दास कहलाये।

[८५] हे पार्श्व प्रभु ! भव्य जन रूपी कमलोंको खिलानेके लिए तुम सूर्यके समान हो। तुम उपसर्गों (विपत्तियों) को नष्ट करते और अशरणको शरण देते हो। कमठने क्रोध करके आपके ऊपर जो धूल फेंकी थी, उससे आपके शरीरकी छायाका लेश भी अवर्ण न हो सका। उसने बादल लाकर मूसलाधार वर्षा की, साथ ही, भयंकर गर्जन, बिजलीकी चमक और तूफानी हवासे आफत बरसा कर दी। उसने बज्र नामके प्रेतको भेजा जो अपने गलेमें रुण्डमाला धारण कर आपकी ओर दौड़ा, किन्तु आपके सम्मुख पहुँचते ही भयभीत हो उठा, हे प्रभु ! आपकी जय हो। उसी समय शेषनाग आ गया और उसने अपने फणका श्रेष्ठ छत्र आपके ऊपर लगा दिया। तब आपने कर्मोंके समूहको हरनेवाले शुक्लध्यानको धारण किया। तत्काल केवलज्ञानका प्रकाश हो उठा और कमठ निराश हो कर थक गया। कवि जगतरामका कथन है कि फिर वह असुर आपके श्रेष्ठ चरणोंपर दृष्टि आरोपित करता हुआ दासकी तरह झुक गया।

[८६]

बहुत जतन समझावत जियकूं ॥ टेक ॥
माया मोह लोभ तिसना वश
चहुँ दिसि धावत जियकुं ॥
जाहि (न) गर्भ रहो उतने दिन
वेदन आवत या दिन की प्रानी ।
नई-नई जौनि फिरायो जग में
नट जु वेष बनावत जियकुं ॥
सील संजम व्रत जप तप
तासु चित नहीं लावत प्रानी ।
परमहंस पंचेन्द्रिय लुबध
करम पास बंधावत जियकुं ॥
रूपचन्द निज भगति बीनती
स्वामी के गुन गावत प्रानी ।
पारसनाथ दयाल दया कर
सेवत सब सुख पावत जियकुं ॥

[रूपचन्द, पदसंग्रह, इ० लि० प्र०, जयपुर]

[८७]

मोह मीर मतवालो, काल कोतवाल कालो,
लोभ वजीर रंढालो, टलै न बुराथ की ।

---

[८६] मेरा जो माया, मोह, लोभ और तृष्णाके वशीभूत होकर चारों दिशाओंमें दौड़ता फिरता है; मैं उसे नाना यत्नोंसे समझाता हूँ । इस संसारमें आ कर प्राणी गर्भकी वेदनाको भूल जाता है, इसी कारण नट-जैसे वेशको धारण कर नई-नई योनियोंमें घूमता रहता है । शील, संयम, व्रत, जप और तपमें मन नहीं लगाता और यह जीवात्मा पचेन्द्रियोंमें लुभाया रहता है, इसी लिए वह अपने कर्म-जालमें फाँस लेता है । रूपचन्दका कथन है कि यह प्राणी भक्तिवशात् ही परमात्माके गुण गाता है । दयालु, दया कर पार्श्वनाथकी सेवा करनेसे ही यह जीव सब प्रकारके सुख प्राप्त कर पाता है ।

[८७] मतवाला मोह मीर है (मालिक है), काला यमराज कोतवाल है, बुरे मार्गपर डालनेवाला कर्म वजीर है । ये सब बुरे है और अपनी बुराईसे हट नहीं

देव-देवी जिन देखे, नरनाथ भी विशेषे,
जमै मरै के अलेखे, आस तोष रीति की।
और काहू न मनावूं, जिन चरण चित लावूं,
नित प्रति जस गावूं, मल मैल गीज की।
भव संकट सै हरण, अमर तारण तरण,
परयो पारस शरण, गौर कीजे मो गरीब की।

[अमर, अमरविलास, इ० लि० प्र०, दिल्ली.]

[८८]

स्वामी बीनती एक करै तुम्ह दास
तुम तौ जी मुक्ति कामिणि वरी।
स्वामी हमकौं देउ जो सुर्ग निवास
श्री पास जिनेसुर पाय नमौं॥
दर्सन कियो जय-जयकार
भवि दधि पार उतारन हार।
तुम छे हो त्रिभुवन धणी
अहो बीणती एक सुनो मुझ देव॥
करि जोडिव सेवक भणै
अहो जनमि जनमि छे तुम्हरि सेव॥

[कपूरचन्द, पार्श्वनाथरास, इ० लि० प्र०, मालपुरा]

सकते। हमने जितने देव, देवी और नरनाथ देखे, सब जन्म-मरणके चक्रमें फँसे हैं और आशा तथा संतोष की रीति में बँधे हैं। इस लिए मैं और किसीको नहीं मानता, केवल जिनेन्द्र के चरणों में चित्त लगाता हूँ, उन्हींका यश गाता हूँ, जिससे मल-मैल दूर हो जाता है। भव-संकटको हरनेवाले और तारण-तरण प्रभु पार्श्वनाथकी शरण में आया हूँ। हे प्रभु! इस गरीब भक्तकी ओर ध्यान दीजिए।

[८८] हे स्वामी! तुम्हारा यह दास एक विनती करता है कि तुमने तो मुक्ति रूपी कामिनी वर ली है और उसका सुख भोग रहे हैं, हमें स्वर्ग-सुख ही दे दीजिए, हम आपके चरणोंमें बारम्बार नमस्कार करते हैं।

हमने आपका दर्शन कर लिया है और आपकी जय-जयकार करते हैं। आप भव रूपी समुद्रसे पार उतारने वाले हैं। आप तीनों लोकोंके स्वामी हैं, हे देव! मेरी एक विनती सुनिए, यह आपका सेवक हाथ जोड़कर कहता है कि मुझे जन्म-जन्ममें आपकी सेवा प्राप्त हो।

[८९]

अश्वसेन नृप पिता देवि वामा सुमाता
हरितकाय नव हाथ वरपस्त आयु विख्याता।
वाणारसी सु जन्म वंश इक्ष्वाकु मंझारी
लछिन सरप जु वन्यौ प्रभु उपसर्ग निवारी।
गणधर जु भये दशज्ञानधर कोस पाँच समवादि मनि।
श्री पार्श्वनाथ मेटौ सदा कमठ मान वनदव अगनि॥

[किरानसिंह, चतुर्विंशतिस्तुति, इ० लि० प्र०, जयपुर]

[९०]

जय विश्वसेन कुल गगन चंदहूँ प्रणमूं वामादेवि नंद।
तुम जनम कल्याणक मायं बहु नृत किये गाये अमंद॥
याही तैं जन्म कृतार्थ जानि इनमें अधिदेव मानि।
सुर-असुर भने जय नंद नंद थुति रचै शक्र बहु भाँति छंद॥
करि थुति शक्रो चक्री थकाय गणधर से पार लह्यो न जाय
मैं अलपबुद्धि क्यूं करि कहाय वाचाल भक्ति कीनो जिनाय॥

---

[८९] पार्श्व प्रभुके पिताका नाम सम्राट अश्वसेन और माताका नाम वामादेवी था। उनकी काया हरितवर्णकी और नौ हाथ ऊँची थी। उनकी आयु १०० वर्षकी विख्यात थी। उनका जन्म वाराणसीमें, प्रसिद्ध इक्ष्वाकु वंशमें हुआ था। उनका चिह्न नाग था, जिसने प्रभु पर आये उपसर्गका निवारण किया था। उनका समवशरण पाँच कोशमें फैला था और उनके गणधर दशज्ञानके धारी थे। हे पार्श्वप्रभु! आप कमठ-जैसे दुष्टोंके मानको और इस संसार रूपी वनमें लगी अहंकार रूपी दावाग्निको सदैव मिटाते रहें, ऐसी मेरी प्रार्थना है।

[९०] हे विश्वसेन के कुल रूपी गगन के चंद तथा वामादेवि के नंद (पुत्र)! आपकी जय-जयकार हो, मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आपके जन्म कल्याणक में इन्द्र तकने बहुत प्रकारके नृत्य किये और गीत गाये—ऐसे गीत जो कभी मन्द (धीमे) नहीं पड़ सकते। इसीसे अपने जन्मको कृतार्थ समझ कर और आपको देवाधिदेव मानते हुए सुर असुर जय-जयका नाद करते हैं और इन्द्र नाना प्रकारके छन्दोंमें स्तुतियोंकी रचना करते हैं। किन्तु इन्द्र, चक्रवर्ती और गणधर-से लोग आपकी स्तुति कर-करके थक जाते हैं, फिर भी आपके गुणोंका पार प्राप्त नहीं कर पाते, क्योंकि वे (गुण) अनन्त हैं। हे जिनेन्द्र! मैं अल्पबुद्धिका हूँ, किसी प्रकार वाचाल (बातून) कहलाता हुआ आपकी भक्ति करता हूँ।

मेरो अविनीतपणों षिमाय मोकूं तुमरी पद सरण द्याय
मेरे प्रभु है तुमरो आधार हो कृपासिन्धु शिवदेनहार ॥
मैं तुम बिना दुख सहे अनंत तुम ही सो जाणो ज्ञानवंत
मोकूं स्वाधीन करो जिणंद काटो सब मेरे विधन फंद ॥
[पारसदास, पारस विलास, ह० लि० प्र०, बड़ौत]

[९१]

मुदित महर्द्धिक देवन साथ, जिन सनमुख आयो सुरनाथ।
हस्तकमल जोरे अमरेश, देखे दृग भरि पास जिनेश ॥
मणि उतंग आसन पर ईस, मानो मेघ रत्नगिरि सीस।
फैलि रही तन किरन कलाप, कोट भान सों अधिक प्रताप ॥
विकसित चित रोमांचित काय, प्रनमों चरन सीस भुवि लाय।
मनिझारी भरि तीरथ तोय, पूजे मघवा जिनपद दोय ॥
स्वर्ग सुगंधनि भक्ति बढ़ाय, अरचे इन्द्र जिनेश्वर पाय।
मुक्ताफलमय अच्छत लिये, पुंज परमगुरु आगे दिये ॥
पारिजात मंदार मनोग, पुहुप चढ़ाये जिनवर जोग।
सुधापिंड चरु लेय पवित्त, पूजा करी शक्र धरि चित्त ॥
[भूधरदास, पार्श्वपुराण, कलकत्ता]

मेरे अविनीतपणें (अविनय के भाव) को क्षमा कीजिए और अपने चरणोंकी शरण दे दीजिए। हे मेरे प्रभु ! मुझे केवल तुम्हारा ही आधार है। तुम कृपासिन्धु और मोक्ष देनेवाले हो। मैंने तुम्हारे बिना अनन्त दुःख सहन किये हैं, उन्हें तुम ज्ञानवन्त ही जानते हो। हे जिनेन्द्र ! मेरे सब विघ्नरूपी फन्दोंको काटकर स्वाधीन कर दो, यह सामर्थ्य केवल तुम्हीं में है, ऐसा एकनिष्ठ विश्वास भक्त कवि ने प्रकट किया है।

[९१] बड़ी-बड़ी ऋद्धियों को धारण करनेवाले प्रसन्नवदन देवोंके साथ इन्द्र जिनेन्द्र पार्श्वनाथके सम्मुख आया। उसने अपने कमल-जैसे हाथ जोड़े और आँख भरके भगवान्‌को देखा। मणिजटित ऊँचे आसन पर भगवान् विराजमान थे, मानो रत्नोंके पहाड़को चोटीपर मेघ विराजा हो। उनके शरीरसे निकल-निकल कर किरणें चारों ओर फैल रही थीं, उनमें करोड़ों सूर्योंसे भी अधिक तेज था। ऐसे प्रभुको देखकर इन्द्रका चित्त खिल गया, शरीर रोमांचित हो गया और उसने पृथ्वीपर सिर रखकर भगवान्‌के चरणों में प्रणाम किया। मणिकी बनी झारी (कलशा) तीर्थ-स्थलके जलसे भर कर उसने जिनेन्द्रके दोनों चरणोंकी पूजा की।

इन्द्रने अत्यधिक भक्तिपूर्वक स्वर्गकी सुगन्धियोंसे जिनेन्द्रके चरणोंकी अर्चना की। उसने मुक्ताफलमय अक्षतोंका पुंज भगवान्‌के आगे चढ़ाया। इन्द्रने जो फूल चढ़ाये वे ऐसे-वैसे नहीं—पारिजात, मन्दारके मनको भानेवाले फूल थे और भगवान्‌के योग्य थे। चन्दन और पवित्र नैवेद्य आदि लेकर शक्र ने चित्त लगाकर प्रभु पार्श्व-देवकी पूजा की।

[९२]

चेतन अपनो रूप निहारो नहिं गोरो नहिं कारो।
दरसन ज्ञान मई चिन्मूरति सकल कर्म तें न्यारो ॥ चेतन० ॥
करम जनम परजाइ पाइ तुम कीनों तहाँ पसारो।
आपा-पर न रूप पिछान्यौ तातें भयो उरझारो ॥ चेतन० ॥
अब निज में निज कौं अवलोकौ ज्यों होइ सुलझारो।
जगतराम सब विधि सुखसागर पद पावौ अविकारो ॥ चेतन० ॥

[जगतराम, पदसंग्रह, ह० लि० प्र०, बड़ौत]

[९३]

मोह सत्रु बलवान है मोहि दीनों दुख अपार।
सो अब कहाँ लौं गाइए प्रभु तुम ही जाननहार ॥
अंजन-से कुबुधी जन त्यारे सेवत विसन अपार।
श्रीपाल सागर परि प्रभू खेइ लगाई पार ॥
सीता सती पतिभरता कौं दीनौ दुख अपार।
अगिनि कुंड छिन माहिं नीर सुर जै-जै सबद उचारि ॥

---

[९२] हे चेतन ! अपना रूप देखो, वह न गोरा है, न काला। तुम चिन्मूरति हो—दर्शन-ज्ञानसे युक्त और सम्पूर्ण कर्मोंसे नितान्त पृथक्।

कर्मोंके कारण तुम्हें जो जन्म और पर्याय मिली, उसमें तुम फैलकर बैठ गये हो, अर्थात् उसके साथ तुमने अत्यधिक ममत्व स्थापित कर लिया है। तुम आपा-परके रूपको पहचान नहीं कर सके, इसी कारण यहाँ उलझ कर रह गये। तुम अपने और परायेको ठीक-ठीक न जान सके, दोनोंमें भेद (अन्तर) न कर सके। यदि अन्तर करके ठीकसे समझ लेते तो संसारमें उलझनेका कारण ही नहीं था।

अब तुम निजमें निजको देखो, जिससे सब कुछ सुलझ जाये। अर्थात् तुम्हारे अपने भीतर जो चिदानन्द परमात्म तत्त्व है, वही तुम हो, तुम्हारा वास्तविक रूप वही है, यह बात जिस दिन समझ जाओगे, तुम संसारके जालसे मुक्त हो जाओगे। जगत रामका कथन है कि फिर तुम हर तरहसे पूर्ण अविकारी पद पा लोगे। वह पद सुखका तो जैसे समुद्र ही है।

[९३] मोह रूपी शत्रु अत्यधिक बलवान् है, उसने मुझे अपार दुःख दिये हैं। उन दुःखोंका वर्णन कहाँ तक किया जाये, हे प्रभु ! तुम्हीं सब कुछ जाननेवाले हो। अंजन चोर-जैसे बुरे मनुष्योंको, जो सदैव विषय-भोगोंका सेवन करते थे, तुमने तार दिया। श्रीपाल समुद्रमें गिर गये थे, उन्हें खेकर तुम्हींने पार लगाया। पतिव्रता सीता सतीको भी इसी मोहने बहुत दुःख दिये, किन्तु हे प्रभु ! तुमने उसके अग्नि-

नाग छाग गजराज व्याघ्र वृष त्यारे जीव अपार।
सुन्दर कहाँ लौं गाइए किम् विलम महाराज॥

[सुन्दरदास, सुन्दरविलास, इ० लि० प्र०, दिल्ली]

[९४]

अहो पास जिनराज दास मोहे अपनो जानि उबारो॥ अहो०॥
मेरी निजनिधि कर्म ठगत हैं इनको संग निवारो।
विषय चाट वसि करिकैं मोकूं ध्यान छुड़ावत थारो॥ अहो०॥
मोह तत्त्वकूं जोर भुलावत याको संग विडारो।
क्रोध लोभ छल मान सकल तैं मोकूं तौ अवटारो॥ अहो०॥
इन संगि दुख सहे बहु दिन सै रूप न जाण्यो थारो।
अब तुम भक्ति चहूँ दिसि वासर ज्यों होवे सुरझारो॥ अहो०॥
जब लूं मैं शिव वास न पावूं पारस तब लूँ।
चावूं इनतैं गैलि छुडाय दयानिधि तारक विरद तुमारो॥ अहो०॥

[पारसदास, पारसविलास, इ० लि० प्र०, जयपुर]

[९५]

अहो नगर में लोक अति करे जी उछाह।
खर्चे जी द्रव्य मन अधिक उमाह॥

कुण्डको जलमय कर दिया था, इसपर देवताओंने जय-जयकार की थी। तुमने नाग, छाग (बकरा), गजराज, व्याघ्र (बाघ) और वृष-जैसे अपार जीवोंको तार दिया, कवि सुन्दरदासका कथन है कि उनका कहाँ तक वर्णन किया जाये, किन्तु हे प्रभु, मेरी बार इतना विलम्ब क्यों लगा रहे हैं ?

[९४] हे पार्श्व जिनराज ! आपका दास आपपर मोहित है, उसे अपना जानकर उबार लो। ये कर्म मेरी अपनी निजी निधि (शुद्धात्म) को ठगते हैं, इनकी संगतिको दूर कर दो। ये मुझे विषयरूपी चाटके बस करके आपके ध्यानसे दूर कर देते हैं। मोह मुझे आत्मतत्त्वसे जोर-जबर्दस्ती विस्मृत करवा देता है। मुझे तो क्रोध, लोभ, छल, मान, इन सबसे दूर कर लो। इनके संग रहकर मैंने बहुत दिनों दुःख सहे और आपके रूपको बिलकुल नहीं जाना। अब मैं दिन और रात आपकी भक्ति चाहता हूँ, जिससे मैं क्रोध, लोभ आदिसे छुटकारा प्राप्त कर सकूँ। पारस कविकी प्रार्थना है कि जब तक मैं विश्वास न प्राप्त कर लूँ, तब तक इनसे संग छुड़ाकर हे दयानिधि ! आपका तारने वाला विरद मुझे प्राप्त होता रहे।

[९५] पार्श्व जिनके जन्मोत्सवका वर्णन है। उस जननी को धन्य है जिसने

घरि-घरि मंगल अति घणा,
घरि-घरि गावे जी गीत सुचार ॥
सब जन अधिक आनंदिया ।
धनि जननी तसु जिण अवतार ॥

[ब्रह्म कपूरचन्द, पार्श्वनाथरास, ह० लि० प्र०, जयपुर]

[९६]

मैं अजान मति हीन भेद नहिं पाइयौ ।
कबहुँ मगन होइ जस तुम नहिं गाइयौ ॥
गुनेगार को गुनौ माफ अब कीजिये ।
तुम हौ दीनदयाल दया चित दीजिये ॥
येक बार को बार हजार जु मानिये ।
लीजे मोहि उबारि जु अपनौं जानिये ॥
पूरब पुनि उदै प्रभु मेरे आइयौ ।
मिथ्या तिमिर गयौ तुम दरसन पाइयौ ॥
जनम सफल भयौ आज पास प्रभु भेटियौ ।
जनम-जनम कौ पाप आज सब मेटियौ ॥
जनम कृतारथ आज जु अपनौ मानियौ ।
कर्म कलंक रहित पद अपनौ जानियौ ॥

पार्श्व प्रभुको जन्म दिया है। नगरमें लोग अत्यधिक उत्सव मना रहे हैं और मनमें अधिकाधिक उमंगित होकर धन्या-पैसा खर्च कर रहे हैं, घर-घरमें नृत्य-गानकी धूम है। सब व्यक्ति अत्यधिक आनन्दित हैं।

[९६] मैं अज्ञानी मति-हीन हूँ, आपके भेदको नहीं समझ सका और इसी कारण कभी मग्न होकर आपके यशको नहीं गा सका। मैं अपराधी हूँ, मेरा अपराध क्षमा कर दीजिए। आप दीनदयालु हैं, मेरे प्रति दयाभाव ही रखिए। मैंने यदि आपका नाम एक बार भी लिया है तो उसे हजार बार मानिए और अपना समझ कर मेरा उद्धार कर दीजिए। हे प्रभु! मेरे पूर्व पुण्यका उदय हुआ, जिससे मिथ्यात्वरूपी अन्धकार छंट गया और मुझे आप के दर्शन हुए। मेरा जन्म सफल हो गया, आज पार्श्व प्रभुसे भेंट हो गयी। मेरा जन्म-जन्मका पाप मिट गया। आज मेरा जन्म कृतार्थ हो गया, क्योंकि आपने मुझे अपना मान लिया। मैंने कर्मरूपी कलंकसे रहित अपने पदको समझ लिया है।

तारक विरद तुम्हारौ अब मोहि तारिये ।
भव समुद्र तैं प्रभु जी पार उतारिये ॥
नमुं नमुं प्रभु हरष महाउर आनि कैं ।
मगन भयौ तुम देखि निज पद जानिकैं ॥
इहै भगति नर-नारी मन धरि गाइसी ।
अजैराज कहै सुरग मुकति पद पाइसी ।

[अजयराज, पदसंग्रह, ह० लि० प्र०, जयपुर]

[९७]

मन मेरो उमग्यो जिन गुंण गायबो ॥
टालत है गर्भवास सिवपुर दियै वास,
छांडिकै पासदेव और कहा ध्यायबो ।
तन-मन लागो तोय कछु न सुहावै मोय,
सब दुंद दूरि करि तोसुं चीत लायबो ।
सकल साहिब मेरो प्रगट प्रताप तेरो,
दीन को दयाल पायो सब सुख पायबो ।
हेमराज भणइ मुनि सुणो सजन जन
मन मेरो उमग्यो है जिण गुण गायबो ॥

[हेमराज, पदसंग्रह, ह० लि० प्र०, जयपुर]

हे प्रभु जी ! आपका विरद तारनेवाला है, मुझे तार दीजिए । मुझे भव-समुद्रसे पार कर दीजिए । मैं अपने हृदयमें हर्ष-मग्न होकर आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ । तुम्हारे दर्शन कर मैं मग्न हो गया हूँ, क्योंकि तुम मेरा निजपद ही हो, अर्थात् मेरे निजपदमें और तुममें कोई अन्तर नहीं है । जो नर-नारी इस प्रकार तुम्हारी भक्ति अपने मन में धारण कर तुम्हारे गीत गाते हैं, अजयराजका कहना है कि उन्हें स्वर्ग या मुक्तिपद अवश्य फलता है ।

[९७] मेरा मन जिनेन्द्र पार्श्वनाथके गुण गानेके लिए उमंगित हुआ है । वह प्रभु मोक्षका निवास देकर बारंबार गर्भमें जानेकी पीड़ाको दूर कर देता है । अतः उन्हें छोड़कर और किसका ध्यान करना चाहिए । अर्थात् वही एक ध्यान करने योग्य है ।

हे प्रभु ! मेरा तन-मन सब कुछ तुममें ही लगा हुआ है, मुझे और कुछ नहीं सुहाता, सब झंझट छोड़कर केवल तुममें चित्त लगानेसे ही आनन्द आता है ।

हे प्रभु ! तुमने पूर्णता प्राप्त कर ली है और तुम 'सकल' हो, तुम्हारा प्रताप प्रकट हो है, तुम दीनदयालु हो, तुम्हें प्राप्त कर मैंने सब कुछ प्राप्तव्य पा लिया है । मुनि हेमराज कहते हैं कि हे सजन जन ! सुनो, मेरा मन जिनेन्द्रके गुण गानेके लिए उमंगित हुआ है ।

[९८]

जहाँ है संजोग तहाँ होत है बियोग सही,
जहाँ है जनम तहाँ मरण को वास है।
संपति विपति दोउ एक ही भवन दासी,
जहाँ बसै सुख तहाँ दुख को विलास है।
जगत में बार-बार फिरै नाना परकार,
काम अवस्था झूंठी, थिरता की आस है।
नट कैसे भेष और रूप होहिं तातैं,
हरष न सोग ग्याता सहज उदास है॥

[त्रिभुवनचन्द्र, पदसंग्रह, ह० लि० प्र०, जयपुर]

[९९]

सुनदा क्यों नहिं वे गुणधार पुकार,
असाढी तुझनों भव जल खेवट सुनिया
मुझनो पार उतार, सुनदा० ॥ १ ॥
जुगल नाग जलते नों दित्ता धरनि
ईस अधिकार, जग तेडा दास कहंदा
प्रभु पारस अब चाह नदी वार, सुनदा० ॥ २ ॥

[जगतराम, हस्तलिखित पदसंग्रह, जयपुर]

---

[९८] जहाँ संयोग होता है वहाँ वियोग भी होता है और जहाँ जन्म है वहाँ मरण भी है। संपत्ति और विपत्ति दोनों एक ही भवन की दासियाँ हैं। जहाँ सुख रहता है, दुःखका विलास भी वहीं होता है। यह जीव संसारमें नाना योनियोंमें भटकता है, काम अवस्था झूठी होती है किन्तु उसमें स्थिरताकी आशा बाँधता है। संसारमें यह जीव नटके समान नाना वेष और रूप धारण करता है, उसे कभी हर्ष मिलता है और कभी शोक। न हर्ष सच्चा है न शोक। ज्ञानी व्यक्ति दोनोंको समान मानता है और सहज रूपसे ही उदास बना रहता है।

[९९] हे गुणोंको धारण करनेवाले प्रभु, मेरी पुकार क्यों नहीं सुनते। यह संसाररूपी जल आषाढ़के पानीकी तरह उफन रहा है, मैंने सुना है कि आप उसके पार उतारनेवाले खेवट हैं, मुझे भी पार उतार दीजिए।

हे पारस प्रभु! तुमने जलते हुए दो नागोंकी अधिकारपूर्वक रक्षा की और उसी बलपर समूचा संसार तुम्हारा दास कहलाता है, मुझे भी तृष्णारूपी नदीसे पार कर दीजिए।

[१००]

जन्मे जिनराज जब हरषे तीन लोकहु
नारकी भी सुख लयो जहाँ दोय घरी है।
नाग अरु नागिन कूं दयो नागराज पद
करुणा करि तारे ते केते नारि नरो हैं।
पाप के संताप ताप काढो तुम कृपा करि
मात-तात त्राण तुम तूही जीव जरी है।
भाग दिसा भली रली सेवत अमर रली गयी
मन चिंता मेरी चितामन हरी है॥

[अमर, अमर विलास, इ० लि० प्र०, दिल्ली]

[१०१]

राम कहो, रहमान कहो कोऊ, कान कहो, महादेव री।
पारसनाथ कहो, कोऊ ब्रह्मा, सकल ब्रह्म स्वयमेव री॥
भाजन भेद कहावत नाना, एक मृत्तिका रूप री।
तैसे खण्ड कल्पना रोपित, आप अखण्ड सरूप री॥ राम०॥
निज पद रमे राम सो कहिए, रहम करे रहमान री।
कर्षे कर्म कान सो कहिए, महादेव निर्वाण री॥ राम०॥

---

[१००] जब जिनराजका जन्म हुआ, तीनों लोकके जीव हर्षित हो गये और नारकियोंको भी दो घड़ीके लिए सुख प्राप्त हुआ। नाग और नागिनको नागराजका पद दिया और प्रभुने करुणा करके कितने नर-नारियोंको तार दिया। हे प्रभु! आपने कृपा करके पापसे उत्पन्न संताप-तापको नितान्त दूर भगा दिया। इस भव-समुद्रमें जलते हुए जीवोंके लिए तुम ही माता-पिता और संरक्षक हो। अमर कविका कथन है कि प्रभुकी सेवा करनेसे भाग्य दशा भले रूपमें बदल जाती है, मनकी चिन्ताएँ दूर हो जाती हैं और उत्तम चिन्तामणि प्राप्त हो जाती है।

[१०१] यह जीव स्वयं परम ब्रह्म है। इसे कोई राम कहो, रहमान कहो, कृष्ण कहो, महादेव कहो, पारसनाथ कहो अथवा ब्रह्मा कहो। जैसे मृत्तिका रूप एक है, भाजन (पात्र) भेदसे वह नाना (विविध) नामोंसे अभिहित होती है, वैसे ही यह जीव स्वयं अखण्ड-स्वरूप है, किन्तु विविध कल्पनाओंके आरोपित करनेसे वह खण्ड-रूप दिखाई देता है। जो निज पदमें रमता है—अपने आत्मस्वरूपमें तन्मय रहता है, उसे राम कहते हैं। जो दूसरोंपर रहम (कृपा) करता है, उसे रहमान कहते हैं। जो कर्मोंको कर्षता है—खींचकर चुका देता है, उसे कृष्ण कहते हैं। निर्वाण

पर से रूप पारस सो कहिए, ब्रह्म चिन्हे सो ब्रह्म री।
इह विधि साधो आप आनन्द घन, चेतन मय निष्कर्म री ॥ राम० ॥

[महात्मा आनन्दघन, आनन्दघन बहत्तरी]

[१०२]

उवसग्गहरं स्तोत्तं

उवसग्गहरं पासं पासं वंदामि कम्मघणमुक्कं।
विसहर विसणिण्णासं मंगल-कल्लाण-आवासं ॥१॥
विसहरस्फुलिंगमंतं कंठे धारेइ जो सया मणुओ।
तस्सगहरोगमारीदुट्ठजरा जंति उवसामं ॥२॥
चिट्ठउ दूरे मंतो, तुज्झ पणामोवि बहुफलो होइ।
णरतिरएसुवि जीवा पावंति ण दुक्खदोगच्चं ॥३॥
तुह सम्मते लद्धे चितामणि कप्पपाय वब्भहिए।
पावंति अविग्घेणं जीवा अयरामरं ठाणं ॥४॥
इअ संथुओ महायस! भत्तिब्भर निब्भरेण हिअएण।
ता देव दिज्ज बोहिं भवे भवे पास जिणचंद ॥५॥

[श्रीभद्रबाहुविरचितम्]

उपसर्गहरस्तोत्रं कृतं श्रीभद्रबाहुना।
ज्ञानादित्येन संघाय शान्तये मंगलाय च ॥

प्राप्त करनेवाला महादेव कहलाता है। जो आत्म रूपका स्पर्श कर लेता है, उसे पारस कहते हैं और जो ब्रह्मको पहचानता है उसे ब्रह्मा कहा जाता है। आनन्दघन कहते हैं कि इस भाँति यह जीव निष्कर्म चेतनमय है।

[१०२] मैं घातियकर्मोंसे विमुक्त उपसर्गहारी भगवान् श्री पार्श्वनाथकी वन्दना करता हूँ। भगवान् विषधरके विषका शमन करनेवाले हैं तथा मंगल एवं कल्याणके निवास हैं। विषहरण शक्तिके स्फुलिंगके समान दीप्तिमान् इस स्तोत्रको जो मनुष्य नित्य कण्ठ में धारण करता है (कण्ठस्थ रखता है) अथवा कण्ठ-द्वारा उच्चारण करता है, उसकी ग्रह-पीडा, रोग, महामारी तथा वार्धक्यसे उत्पन्न दुष्ट व्याधियाँ शान्त हो जाती हैं। हे भगवन्, मन्त्रोपचार तो दूरकी बात है, उसे रहने दें तो भी आपको एक श्रद्धाभक्तिसे किया गया प्रणाम भी बहुफलदायी होता है। नर और तिर्यक् गतिमें उत्पन्न जीव आपको भक्तिसे दुःख तथा दुर्गति नहीं पाते। चिन्तामणि और कल्पपादप-समान आपके सम्यक्त्वको प्राप्त कर जीव निर्विघ्न अजर-अमर स्थान प्राप्त कर लेते हैं। हे महान् यशस्विन्! भक्तिकी अतिशयतासे पूर्ण हृदयसे मैं आपकी स्तुति करता हूँ। हे पार्श्व जिनचन्द्र! मुझे भव-भवमें बोधि-लाभ हो, ऐसी प्रार्थना है।

[१०८ मुनिश्री विद्यानन्दजी कृत अनुवाद]

पार्श्वनाथ स्तोत्र

नगेन्द्रं फणीन्द्रं सुरेन्द्रं अधीसं । शतेन्द्रं सु पूजैं भजैं नाय शीसं ॥
मुनीन्द्रं गणेन्द्रं नमो जोडि हाथं । नमो देवदेवं सदा पार्श्वनाथं ॥
गजेन्द्रं मृगेन्द्रं गह्यो तू छुडावै । महा आग तैं नाग तैं तू बचावै ॥
महावीर तैं युद्ध मैं तू जितावै । महारोग तैं बंध तैं तू छुडावै ॥
दुखी दुःख-हर्त्ता सुखी सुख-कर्त्ता । सदा सेवकों को महानन्द भर्त्ता ॥
हरै यक्ष राक्षस्स भूतं पिशाचं । विषं डांकिनी विघ्न के भय अवाचं ॥
दरिद्रीन को द्रव्य के दान दीने । अपुत्रीन को तू भले पुत्र कीने ॥
महासंकटों से निकारै विधाता । सबै संपदा सर्व को देहि दाता ॥
महाचोर को वज्र को भय निवारै । महापौन के पुंजतैं तू उबारै ॥
महाक्रोध की अग्नि को मेघधारा । महालोभ शैलेश को वज्र भारा ॥
महामोह अंधेर को ज्ञानभानं । महा कर्मकांतार को दौं प्रधानं ॥
किये नाग-नागिन अधोलोक स्वामी । हरयो मान तू दैत्य को हो अकामी ॥
तुही कल्पवृक्षं तुही कामधेनुं । तुही दिव्य चिंतामणि नाग एनं ॥
पशू नर्क के दुख तैं तू छुडावै । महास्वर्ग तैं मुक्ति मैं तू बसावै ॥
करै लोह को हेम पाषाण नामी । रटै नाम सो क्यों न हो मोक्षगामी ॥
करै सेव ताकी करैं देव सेवा । सुनै बैन सो हो लहै ज्ञान मेवा ॥
जपै जाप ताको नहीं पाप लागै । धरै ध्यान ताके सबै दोष भागै ॥
बिना तोहि जाने धरे भव घनेरे । तुम्हारी कृपा तैं सरैं काज मेरे ॥

गणधर इन्द्र न कर सकैं, तुम विनती भगवान ।
द्यानत प्रीति निहारिकैं, कीजे आप समान ॥

—द्यानतराय

श्री पार्श्वनाथ स्तुति

तुम से लागी लगन, ले लो अपनो शरण।
पारस प्यारा, मेटो-मेटो जो संकट हमारा ॥ टेक ॥

निश-दिन तुझको जपूं, पर से नेहा तजूं।
जीवन सारा, तेरे चरणों में बीते हमारा ॥ मेटो० ॥

अश्वसेन के राजदुलारे, वामादेवो के सुत प्राणप्यारे।
सब से नेहा तोड़ा, जग से मुँह को मोड़ा, संयम धारा ॥ मेटो० ॥

इन्द्र और धरणेन्द्र भी आये, देवी पद्मावती मंगल गाये।
आशा पूरो सदा, दुख नहीं पावे कदा, सेवक थारा ॥ मेटो० ॥

जग के दुख की तो परवाह नहीं है, स्वर्ग सुख की भी चाह नहीं है।
मेटो जामन-मरण, होवे ऐसा यतन, पारस प्यारा ॥ मेटो० ॥

लाखों बार तुम्हें शीश नवाऊँ, जग के नाथ तुम्हें कैसे पाऊँ।
'पंकज' व्याकुल भया, दर्शन बिन ये जिया, लागे खारा ॥ मेटो० ॥

व्यवहार कुशलता

लोकप्रियता और सफलता की सीढ़ी

पी. के. आर्य

पुस्तक महल®
दिल्ली • मुम्बई • बंगलोर • पटना • हैदराबाद

प्रकाशक
पुस्तक महल® दिल्ली-110006

विक्रय केन्द्र

- 6686, खारी बावली, दिल्ली-110006 *फोन:* 3944314, 3911979
- 10-B, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002
  फोन: 3268292-93, 3279900 • *फैक्स:* 011-3280567

प्रशासनिक कार्यालय

F-2/16, अन्सारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002
फोन: 3276539, 3272783, 3272784 • *फैक्स:* 011-3260518
E-mail: pustakmahal@vsnl.com • *Website:* www.pustakmahal.com

शाखा कार्यालय

बंगलोर : 22/2, मिशन रोड (शामा राव कम्पाउंड), बंगलोर-560027
फोन: 2234025 • *फैक्स:* 080-2240209
E-mail: rapidexblr@satyam.net.in

पटना : खेमका हाउस, पहली मंजिल, अशोक राजपथ, पटना-800004
टेलीफैक्स: 0612-673644

मुंबई : 23-25, जाओबा वाडी (वी.आई.पी शोरूम के सामने), ठाकुरद्वार, मुंबई-400002 *फोन:* 2010941 • *फैक्स:* 022-2053387
E-mail: rapidex@bom5.vsnl.net.in

हैदराबाद : 5-1-707/1, ब्रिज भवन, बैंक स्ट्रीट, कोटी, हैदराबाद-500095
फोन: 4737530 • *फैक्स:* 4737290

©कापीराइट सर्वाधिकार
पुस्तक महल, 6686, खारी बावली, दिल्ली-110006

I.S.B.N. 81-223-0014-6

चेतावनी

भारतीय कॉपीराइट एक्ट के अंतर्गत इस पुस्तक के तथा इसमें समाहित सारी सामग्री (रेखा व छायाचित्रों सहित) के सर्वाधिकार "**पुस्तक महल**" के पास सुरक्षित हैं। इसलिए कोई भी सज्जन इस पुस्तक का नाम, टाइटल डिजाइन, अंदर का मैटर व चित्र आदि आंशिक या पूर्णरूप से तोड़-मरोड़ कर एवं किसी भी भाषा में छापने व प्रकाशित करने का साहस न करें, अन्यथा कानूनी तौर पर वे हर्जे-खर्चे व हानि के जिम्मेदार होंगे। **-प्रकाशक**

तीसरा संस्करण : सितंबर, 2001

मुद्रक : सनराइज प्रिंटर्स शाहदरा, दिल्ली-110032

व्यवहार कुशलता...!

•

कुशल व्यवहार ही तो हमारे व्यक्तित्व को खूबी के साथ प्रकट करता है। *–यशपाल*

ऐसा व्यवहार दूसरे के साथ न करें, जो स्वयं के लिए प्रतिकूल है। *–महाभारत*

अपने बांधवों से जो आत्मीयता का व्यवहार करता है, वह तुम लोगों में श्रेष्ठ होता है। *–हज़रत मोहम्मद*

कुशल व्यवहार वह दर्पण है, जिसमें प्रत्येक का प्रतिबिंब देखा जा सकता है। *–गेटे*

कार्य कुशल व्यक्ति के लिए यश और धन की कमी नहीं है। *–अज्ञात*

आत्म-विकास
की अन्य श्रेष्ठ पुस्तकें

•

सफल वक्ता कैसे बनें	*सुरेन्द्र डोगरा 'निर्दोष'*
व्यवहार कुशलता	*पी. के. आर्य*
बच्चों की प्रतिभा कैसे उभारें	*चुन्नीलाल सलूजा*
कामकाजी महिलाएं	*शीला सलूजा/चुन्नीलाल सलूजा*
धैर्य एवं सहनशीलता	*पवित्र कुमार शर्मा*
सदा खुश कैसे रहें	*एम. के. गुप्ता*
तनाव मुक्त कैसे रहें	*एम. के. गुप्ता*
जीवन में सफल होने के उपाय	*स्वेट मार्डेन*
गुस्सा छोड़ो सुख से जिओ	*सुरेन्द्रनाथ सक्सेना*
भयमुक्त कैसे हों	*सुरेन्द्रनाथ सक्सेना*
कैसे जिएं चिंतामुक्त जीवन	*डॉ. सरूप सिंह मरवाहा*
निराशा छोड़ो सुख से जिओ	*हरेन्द्र 'हर्ष'*
मानसिक थकान मिटाकर तरोताज़ा कैसे रहें	*तेजवंत चौधरी*
वाकपटुता द्वारा सम्मोहन	*सुरेन्द्र डोगरा 'निर्दोष'*
प्रभावित करने की कला	*पी. के. आर्य*
मैं भी सक्षम बन सकता हूं	
मानसिक शान्ति कैसे रखें	*हरिदत्त शर्मा*
सफल कैसे हों	*मोहम्मद शहज़ाद*

पुस्तक महल की पुस्तकें

देश-भर के सभी रेलवे, रोडवेज़ तथा अन्य बुक स्टॉलों पर उपलब्ध हैं। अपनी मनपसंद पुस्तक अपने नज़दीकी बुक स्टॉल से लें। न मिलने पर हमें पत्र लिखकर वी.पी.पी. से मंगवाएं। पुस्तकों की नियमित जानकारी के लिए विस्तृत सूची-पत्र मंगवाएं।

समर्पण

अपने परमपूज्य पिता शंकर दत्त आर्य के प्रति,
जिन्होंने छोड़ दिया, मुझे अपनी नाव खुद खेने के लिए
चरितार्थ करने के लिए अपनी प्रतिभाएं।
जिन्होंने मुझे सिखाया–
सर्वाधिक सशक्त आधार है केवल अपनी ही टांगों का।
दुनिया बदल देने की तदबीर अपनी हथेलियों में
मुंह ढांपे सो रही है।
ज़रूरत है–
उसे कर्म और श्रम से उजागर करने की।
सम्मानपूर्वक समर्पित यह छोटा सा प्रयास....

अंदर के पृष्ठों में...!

कार्य क्षेत्र में व्यवहार कुशलता

1. **व्यवहार कुशलता एक वरदान** ...11
   • व्यक्तिगत कुशलता का विकास • कुशलता का अर्थ • व्यक्तित्व की दौलत।
2. **दूसरों का ख्याल रखिए** ...16
   • अपने 'स्वत्व' का विस्तार कीजिए • स्नेह के बीज रोपिए • आक्रमणशीलता से बचें।
3. **विनम्र व मृदुभाषी बनिए** ...21
   • विनम्र व शिष्ट : सभी के प्रिय • मधुर बोलें, प्रिय बोलें।
4. **उदासी को जीतिए** ...26
   • सबसे खराब उदासी का रंग • मानसिक अवसाद क्यों? • उदासी के अलावा भी बहुत कुछ है • अलविदा अवसाद।
5. **समय का मूल्य पहचानिए** ...31
   • स्वर्णिम क्षणों की कद्र करें • बुद्धि का सदुपयोग • समय की साधना।
6. **मनहूसियत से बचिए** ...36
   • जिंदगी फूल है, खुशबू से महकते रहिए • चिंता नहीं चिंतन करें
   • अकर्मण्यता से बचें।
7. **पात्र-कुपात्र को परखिए** ...41
   • संभाल कर रखिए भरोसे की पूंजी • सचेत रहें, सतर्क रहें।
8. **झूठ-फरेब से दूर रहिए** ...45
   • जैसा बोइए, वैसा काटिए • छोटे-छोटे कार्यों का महत्व • श्रेष्ठ आदतों का विकास।
9. **कथनी और करनी में साम्य बनाइए** ...49
   • बरसने वाले बादल बनिए • कथनी करनी में एका • व्यवहार सबसे बड़ा उपदेश।
10. **स्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा में विश्वास करें** ...52
    • सफलता का सूर्योदय • लक्ष्य निर्धारित कीजिए।

सामाजिक क्षेत्र में व्यवहार कुशलता

11. **सकारात्मक दृष्टिकोण** ...56
    • मानसिक विकारों से बचें • अहंकार से बचिए।
12. **सहयोग की भावना** ...60
    • किसी के हो जाइए • अहंमन्यता की मनोग्रंथि • अच्छी तरह व्यवहार निभाइए।
13. **क्रोध व झल्लाहट आपके शत्रु** ...63
    • क्रोध व्यक्तित्व का दुर्बल पक्ष • क्रोध के प्रकार • सभी अनर्थों का हेतु।
14. **दोस्त अवश्य बनाइए** ...68
    • सच्ची मित्रता किसी वरदान से कम नहीं • सच्चा हमराज • लोकप्रियता के रहस्य।

15. चिड़चिड़ेपन को छोड़िए ...73
• खुश तथा प्रसन्नचित रहिए • खुश मिजाज बनें • हीन भावना से बचिए।
16. अपने दुखों का रोना बंद कीजिए ...77
• सुख के पुष्प चुनिए • भूलने की आदत विकसित करें
• धनोपार्जन ही सुख का आधार नहीं।
17. सम्मानजनक कार्यों को प्राथमिकता दें ...81
• बिन इज्जत सब सून • अपनी इज्जत आप कीजिए • हठीलेपन से बचें।
18. सामाजिक कार्यों के लिए समय निकालें ...85
• समाज से गहन सरोकार • फैसलों में लेट-लतीफी ठीक नहीं।
19. हिंसक तथा विध्वंसक गतिविधियों से परहेज करें ...88
• मारधाड़ क्यों? • आक्रामक प्रवृत्ति • कुंठा के कुप्रभाव।
20. औरों के काम आइए ...92
• अपने लिए जीना भी कोई जीना है? • सहयोग के लिए तत्परता
• 'नहीं' कहना भी सीखें।

व्यक्तिगत व्यवहार कुशलता

21. कैसे खुश रहें पति-पत्नी ...97
• आपसी सौहार्द बनाए रखिए • सुख, समृद्धि आपके द्वार • विवाहरूपी समझौते का पालन करें • पति-पत्नी क्या करें?
22. परस्पर भावनाओं को समझें ...101
• प्रेम के प्रवाह में गोते लगाइए • गलतफहमियों से बचिए।
23. महत्त्वपूर्ण अवसरों को याद रखिए ...105
• उपहारों का चमत्कार • उपहारों का चुनाव कैसे करें?
24. तानों-उलाहनों से बचें ...107
• तानों-उलाहनों का आरकेस्ट्रा • ये भी नहीं बच सके • उलाहनों के रूप
• काबू पाने के कुछ महत्त्वपूर्ण टिप्स।
25. चुगलखोरी बुरी बला ...112
• चुगली न करें • कम खाना, गम खाना।
26. उधार न लें ...115
• मितव्ययिता सबसे बड़ी कुशलता • मितव्ययिता का अर्थ कंजूसी नहीं
• धन का सदुपयोग • घरेलू बजट बनाइए।
27. बच्चों की अनदेखी न करें ...120
• पहली पाठशाला घर • बच्चों का स्वभाव समझें • किशोरावस्था में मित्र बनें।
28. चरित्र का ख्याल रखें ...123
• चरित्र एक अमूल्य संपदा • सर्वोत्कृष्ट बनने का यत्न कीजिए • हृदय की रश्मियां।
29. व्यसनों से दूर रहें ...127
• सच्चे बनें, अच्छे बनें • मादक द्रव्यों से बचें।

सरोकार

एक बहुत समृद्ध महिला अपने चिकित्सक के पास गई। बीमारी उसकी ठीक हो गई थी, लेकिन चिकित्सक को उसकी फीस चुकानी बाकी थी। लंबी और घातक बीमारी के दौरान चिकित्सक की योग्यता और व्यवहार से महिला बहुत प्रभावित थी। चिकित्सक की फीस के बारे में काफी सोच समझकर उसने निर्णय लिया और एक रत्नजटित बहुमूल्य झोले में 'कुछ' रखकर चिकित्सक को भेंट किया।

चिकित्सक ने खूबसूरत थैले को एक बार देखा और नजर फेर ली। यह सोचना उसकी कल्पना से बाहर था कि थैले में रत्न भी चिपके हो सकते हैं और उसके भीतर भी कुछ हो सकता है। उसने समझा कि थैले पर रंग-बिरंगे कांच के टुकड़े चिपके होंगे। भला रत्नजटित झोले भी कहीं कोई भेंट देता है? यह महिला सस्ते में निकली जा रही है। उसने हिसाब लगा रखा था कि कम-से-कम तीन सौ रुपए उसकी फीस थी और यह महिला झोला देकर ही बची जा रही है। उसने कहा, "झोला तो ठीक है, तुम्हारे स्नेह का उपहार स्वीकार करता हूं, लेकिन मेरी फीस का क्या...?" महिला बहुत अनुभवी थी। चिकित्सक के मन में छिपे लोभ और उसके झूठे प्रेम को उसने जान लिया और पूछा, "तुम्हारी फीस कितनी है?" चिकित्सक ने हिसाब लगाया और जितना ज्यादा-से-ज्यादा वह बता सकता था, उसने बताया, "तीन सौ रुपए।"

महिला ने तुरन्त झोला खोला। उसमें रखे दस हजार रुपयों में से तीन सौ रुपए निकालकर चिकित्सक को दे दिए। बाकी रुपए और झोला लेकर वह वापस चली गई।

चिकित्सक आश्चर्य से देखता रह गया। उसे पता चल चुका था कि उसे दी गई भेंट 10,000 रुपए थी और वह थैला भी बहुमूल्य था। मगर अब क्या

हो सकता था? उस चिकित्सक पर क्या गुजरी होगी? यह आसानी से सोचा जा सकता है। उस दिन के बाद वह बीमार हो गया, फिर उसकी चिकित्सा मुश्किल हो गई। वह बार-बार पछताया कि व्यवहार कुशलता की कमी के कारण उसने न केवल धन खोया, बल्कि एक स्नेहपूर्ण संबंध भी खो दिया।

हमारी जिंदगी की शक्ल इस दृष्टांत से बहुत ज्यादा जुदा नहीं है। हम अपनी भूलवश लोगों को समझ नहीं पाते। हम उनके सत्कार का, प्रेम का, सौहार्द का, अपनत्व और आदर का कुछ और ही अर्थ लगा लेते हैं और अपने क्षुद्र स्वार्थों से ऊपर उठकर सोच ही नहीं पाते। हमें जीवन की व्यावहारिकता का कोई पता ही नहीं। परस्पर सौहार्द व व्यवहार और दूरगामी सोच के चमत्कारों से हम अछूते हैं। चूंकि हमें व्यवहार कुशलता के रहस्यों की जानकारी नहीं है। अतः हम दुखी हैं.... असफल हैं।

क्या व्यवहार कुशलता इतनी चमत्कारिक है कि उसके बलबूते दुर्गम और कंटकाकीर्ण मार्ग पर चलकर सफलता के दुर्ग पर विजय पताका फहराई जा सकती है? क्या उसके माध्यम से जीवन रूपी समुद्र की गहराई से हम उपलब्धियों के हीरे-मोती बटोर कर ला सकते हैं? यही विचार इस पुस्तक के लेखन की प्रेरणा बना।

पुस्तक को तैयार करने में विभिन्न लोगों ने अपने अमूल्य सहयोग से मुझे नवाजा, उसके लिए मैं उनका शुक्रगुजार हूं। अनन्य सहयोग हेतु अपनी पत्नी डॉ. मोनिका 'पुष्पेंद्र' तथा मित्र डॉ. रेखा अरोड़ा के प्रति मेरा साधुवाद संप्रेषित है।

पुस्तक की खूबियों खामियों की बाबत आपकी बेबाक राय की मुझे प्रतीक्षा रहेगी।

'शुभम्' 382/8, सुभाष नगर
मेरठ–250002 (उ.प्र.)

–पी.के. आर्य

अध्याय 1

व्यवहार कुशलता एक वरदान

व्यक्तित्व निर्माण का प्रश्न हर एक आदमी के वास्ते व्यक्तिगत सवाल है। इसका किसी दूसरे आदमी से कोई संबंध नहीं है। दूसरा कोई भी आदमी आपके मन तथा व्यक्तित्व को बलवान एवं दृढ़ नहीं बना सकता। कोई भी व्यक्ति आपको दुर्बल से शक्ति संपन्न, असफल से सफल और 'कुछ नहीं' से 'सब कुछ' नहीं बना सकता। आप स्वयं ही 'सब कुछ' बन सकते हैं और आप में वह सब करने की शक्ति, सामर्थ्य मौजूद है।

—लिली एलन

आज के भौतिकवादी युग में जहां चारों ओर एक भाग-दौड़ है, मारामारी है, जल्दबाजी और तेज रफ्तार है, वहीं हम सब अपनी ही तरह की अजीबो-गरीब उधेड़बुन में उलझे हुए हैं। हमारे अंतस् में एक अतृप्त लालसा गहरे पैठी है। हम दूसरों से ज्यादा धन, सुख-सुविधाएं और ऐशो-आराम की वस्तुएं जुटाना चाहते हैं। यह लालसा जनून में इस कदर बदल गई है कि आए-दिन रिश्तों का कत्लेआम हो रहा है। हम सब स्वयं को सफल व समर्थ होने के लिए कुछ भी करने को बेताब हैं। नकारात्मक दृष्टिकोण से किए गए कार्य जहां हमारे पतन का द्वार बनते हैं, वहीं व्यवहार कुशलता व सकारात्मक मन-मस्तिष्क के परिणाम हमारे लिए एक वरदान से कम नहीं होते।

व्यक्तिगत कुशलता का विकास

आज किसी भी व्यक्ति की सफलता का मूल्यांकन उसकी भौतिक उपलब्धियों के आधार पर किया जाता है। परिणामतः मनुष्य भौतिक संसाधनों की पूर्ति हेतु सभी संभव-असंभव उपाय अमल में लाता है। भौतिक सफलता प्राप्त करना महत्त्वपूर्ण हो सकता है, परंतु यही एक मात्र वह वस्तु नहीं है, जिससे मानव सुखी एवं सफल बनता है। हम अपने इर्द-गिर्द नजरें दौड़ाएं, तो हमें ऐसे अनेक धनवानों के किस्से देखने को मिल जाएंगे, जिनकी जिंदगी का सूर्यास्त बरबादी की काली छाया तले हुआ। जो धन-पशु तो बन गए, परंतु परिपक्व, संतुलित, व्यवहार कुशल तथा सुखी मनुष्य बनने में असफल रहे।

गौर से देखा जाए तो इस तरह के व्यक्ति अपनी पूरी जिंदगी में अपने एक पक्ष को ही विकसित करने में जुटे रहते हैं। परिणामतः उनका संपूर्ण व्यक्तित्व असंतुलन का शिकार हो जाता है। ऐसे व्यक्तियों में संतुलन, समग्रता, दूरदर्शिता व सहनशीलता का प्रायः अभाव रहता है। जिसकी प्राप्ति के लिए मानव को अपने जीवनकाल के प्रतिपल का सदुपयोग करना चाहिए। किसी भी व्यक्ति को, जो अपने क्षेत्र में शीर्षतम बुलंदियों को छूने का जज़्बा रखता है, अपने व्यक्तित्व का कुशलतापूर्वक निर्माण और विकास करना चाहिए।

तेजी से बदलती दुनिया और हर रोज़ निर्मित होती नई मान्यताओं के चलते, आज उद्योग एवं प्रबंध जगत में भी प्रगति एवं परिचय के मूल्य बदले हैं। आज मानवीय गुणों से परिपूर्ण, विशिष्ट क्षमताओं से युक्त तथा नित नई संभावनाओं से ओत-प्रोत लोगों के लिए स्वागत के द्वार खुले हैं। इसके मूल में धारणा यह है कि यदि किसी उद्योग या संस्थान में कार्य करने वाले व्यक्ति अधिकतम योग्य, कुशल तथा परिश्रमी होंगे, तो उनसे प्राप्त होने वाले परिणाम निश्चित ही बेहतर व उत्साहवर्धक रहेंगे। लगभग उसी तरह, जैसे अच्छे व उच्च किस्म के कच्चे माल से अंतिम उत्पाद के भी 'सर्वोत्तम' होने की संभावना बनी रहती है।

स्पष्ट है कि एक ही आकार-प्रकार, क्षमता और साधनों की भिन्न इकाइयों में प्राप्त होने वाले परिणाम सदैव एक समान नहीं होते। इसकी वजह है कि भिन्न इकाइयों में कार्यरत व्यक्तियों की क्षमता, उत्साह एवं उत्पादकता में अंतर होता है। एक समय पूर्व तक यह अवधारणा सुनिश्चित थी कि पूंजी,

कच्चा माल और तकनीकी सामर्थ्य ही किसी उद्योग की सफलता के आधारभूत तत्त्व हैं, परंतु अब यह स्पष्ट हो गया है कि 'आटोमेशन' के मौजूदा दौर में हम भले ही कितनी भी तरक्की क्यों न कर लें, किसी भी संगठन के संचालन में मानवीय तत्त्व के महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता। किसी भी कंपनी अथवा संस्थान से प्रस्तुत होने वाले परिणाम, अन्य बातों के साथ-साथ उसमें कार्यरत व्यक्तियों की कार्यक्षमता, कार्यकुशलता, व्यवहारगत योग्यता, उत्साह, निष्ठा एवं समर्पण पर भी निर्भर करते हैं।

आज जीवन की जटिलताओं में निरंतर वृद्धि हो रही है। अधिक लोगों के मध्य काम करते हुए भी व्यक्ति स्वयं को नितांत अकेला अनुभव कर रहा है। आज का इनसान काफी महत्वाकांक्षी है और आसानी से संतुष्ट नहीं होता। इन तमाम परिवर्तित होती परिस्थितयों में व्यक्तिगत कुशलता की भूमिका अति महत्त्वपूर्ण है।

कुशलता का अर्थ

कुशलता से तात्पर्य यह है कि न केवल भौतिक उपलब्धियों के लिए, अपितु अपने जीवन के अन्य लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए भी कार्य को सर्वोत्तम, सुलभ तथा शीघ्रता के साथ करने के तरीकों का ज्ञान व अभ्यास। कुशलता का अभिप्राय है, अपने समस्त कार्यों, रुचियों, इरादों, आदतों, अनुभवों, वासनाओं पर नियंत्रण रखना, न कि उनके अधीन होना। आप समय तथा बुद्धि का प्रयोग इस प्रकार करें कि अपने जीवन के प्रत्येक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र में अपनी परिपूर्णता व अद्वितीय गुणों के नाते प्रतिष्ठित रहें।

दूसरे शब्दों में, व्यक्तिगत कुशलता का तात्पर्य चारित्रिक विकास से भी है। चरित्र को सैमुएल इस्माइल्स ने अपनी पुस्तक 'सेल्फ हेल्प' में जीवन का मुकुट और गौरव कहा है। उनका मंतव्य है कि मनुष्य की चारित्रिक विशेषताएं उसकी सर्वोत्तम निधि हैं, जो उसे श्रेष्ठ पद पर प्रतिष्ठित कराती हैं। चरित्र के बलबूते व्यक्ति समाज में सद्इच्छाएं अर्जित करता है, सम्मान व आदर प्राप्त करता है। यह धन से अधिक शक्तिशाली तत्व है। जॉन गिलिन के अनुसार, कुशलता एक आदर्श गुण है। इन्हीं गुणों के कारण समाज व्यक्ति की कद्र करता है।

व्यक्तित्व की दौलत

अपने व्यक्तित्व की दौलत को समृद्ध कीजिए। आपके अपने भीतर व्यक्तित्व विकास की संभावना के अपार खजाने मौजूद हैं। उनको पहचानिए।

हमारी अपनी किस्मत व सुख की कुंजी हमारे भीतर अपने पास ही है। महत्त्वपूर्ण वह धन-दौलत नहीं, जो आपने कमाई है, अपितु उसको अर्जित करने के तौर-तरीके हैं। आपका व्यक्तित्व, आपकी क्षमताएं, आपके विचार तथा आपके आदर्श इस मामले में खासी अहमियत रखते हैं।

एक मूर्तिकार एक पत्थर को तोड़ रहा था। कोई देखने गया था कि मूर्ति कैसे बनाई जाती है। उसने जब देखा कि मूर्ति तो एकदम से नहीं बनाई जा रही है, सिर्फ छेनी और हथौड़े से पत्थर तोड़ा जा रहा है, तब उस आदमी ने पूछा कि यह आप क्या कर रहे हैं? मूर्ति नहीं बनाएंगे ! मैं तो मूर्ति का बनना देखने आया हूं। आप तो सिर्फ पत्थर तोड़ रहे हैं?

उस मूर्तिकार ने कहा कि मूर्ति तो पत्थर के भीतर छिपी है, उसे बनाने की जरूरत नहीं है, सिर्फ उसके ऊपर जो व्यर्थ पत्थर जुड़ा है, उसे अलग कर देने की जरूरत है और तब मूर्ति प्रकट हो जाएगी। मूर्ति बनाई नहीं जाती, मूर्ति सिर्फ आविष्कृत होती है, डिस्कवर होती है, अनावृत होती है, उघाड़ी जाती है।

प्रत्येक मनुष्य के भीतर श्रेष्ठ व्यक्तित्व के अंकुर विद्यमान हैं, उनके बनाने की जरूरत नहीं है, सिर्फ उघाड़ने का सवाल है। कुछ है, जो हमने ऊपर से ओढ़ा हुआ है, जो उसे प्रकट नहीं होने देता। अतएव, अपने अंदर निहित व्यक्तित्व विकास की अमूल्य संपदा को नजरअंदाज मत कीजिए। जीने का मजा इसी में है कि आपके पास जो वास्तव में है, उसकी सही कद्र कीजिए। भौतिक चीजों की नब्ज़ टटोलने से सुख का अंगीकार नहीं होगा। सुख तो हमारे उन प्रयासों का प्रतिफल है, जो हम अपने पास की अमानत का सदुपयोग करने के लिए करते हैं। जीवन का वास्तविक आनंद लेने में नहीं; देने में है। दोनों हाथों से देने में है। तभी तो रहीम को भी कहना पड़ा—

जो जल बाढ़ै नाव में, घर में बाढ़ै दाम।
दोऊ हाथ उलीचिये, यह सज्जन को काम।।

कहावत है, कि 'नीयत में ही बरकत होती है।' उदारता में ही अभिवृद्धि का सूत्र छिपा है। जितना देंगे, उससे कई गुना ज्यादा पाएंगे। जितना पाइए, उससे और कई गुना ज्यादा दीजिए। देते ही रहिये। यही आनंद का, सुख का, समृद्धि का रहस्य है। इसी में सफलता है। कामयाबी उसी व्यक्ति के चरण चूमती है, जो अपने दिल के भीतर स्वाधीनता का आत्म-सम्मान का, नेक नीयत का, सत्यनिष्ठा का खज़ाना संजोए रखता है।

एमरसन कहा करते थे कि सुविधाओं की गद्दी पर बैठने वाला सोता ही रहता है। विज्ञान की बड़ी से बड़ी खोज से ज्यादा ऊंची खोज अपने व्यक्तित्व की खोज़ है। अपने पास पहले से मौजूद विरासत को इस्तेमाल करने की शिक्षा, जिंदगी की सबसे बड़ी करामात है। इससे हमें यह अभिव्यक्त करने का अवसर मिलता है कि हमारे अंदर क्या और कितना है?

संत फ्रांसिस कहा करते थे कि देने से ही तो हम पाते हैं। आत्मकेंद्रित व्यक्ति सबसे कम आत्मनिर्भर और सर्वाधिक दुखी होता है। अपने स्वार्थी हितों के लिए वह दूसरों का मुंह ताकता है और इसी वजह से उसे सुख कभी नसीब नहीं होता।

यह भी ध्यान रखें

- हमारी व्यवस्थाएं स्वतंत्र होनी चाहिए, अन्यथा हमारी कार्यक्षमता घट जाएगी।
- पूर्णतावादी का कोई काम कभी पूर्ण नहीं होता, क्योंकि संपन्न हुआ कोई काम उसकी निगाह में पूरा-पूरा नहीं जंचता। जोखिम उठाने के बजाय वह उसे टालता रहता है।
- हममें से बहुत से लोग बहुत ज्यादा उपलब्धियां प्राप्त कर लेते, अगर हममें गलतियां करने की ईमानदारी होती और अपनी सीमाएं स्वीकारने की सच्चाई होती।
- आप दूसरे लोगों को तभी जान सकेंगे, जब उनसे प्यार करेंगे और प्यार देने पर कुछ घाटा और तकलीफ़ उठाना तो लाजमी ही है।

अध्याय 2

दूसरों का ख्याल रखिए

व्यक्तित्व है ही क्या? तुम्हारे अपने विचारों, धारणाओं तथा भावनाओं का फल। स्वयं अपने विषय में जैसे तुम्हारे संकेत रहते हैं, वे ही तुम्हारे व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। संभव है, तुम्हें प्रकृति ने एक आकर्षक व्यक्तित्व न प्रदान किया हो, किंतु इसमें संदेह नहीं कि तुम संकेत द्वारा अपने व्यक्तित्व को ऊंचा उठा सकते हो।

—डॉ. रामचरण महेंद्र

चाहे घर हो, दफ्तर हो या फिर व्यापार का क्षेत्र। प्रत्येक स्थान पर हम परस्पर निर्भर हैं। हम चारों ओर उन्हीं गुणों की तलाश में रहते हैं, जिनको प्राप्त किए बिना हमें पूर्णता का अहसास नहीं होता। ये गुण हमें दूसरों से सीखने होते हैं। अतः दूसरों का ख्याल करने की भावना का विकास कीजिए। व्यक्ति के लिए जरूरी है कि वह मिलनसारी और मित्रता का भाव रखे। इन गुणों के अभाव में बेहद क्षमतावान व समर्थ व्यक्ति भी सदैव बौना-सा रहेगा और उसका व्यक्तित्व प्रभावशाली नहीं बन सकेगा।

अपने 'स्वत्व' का विस्तार कीजिए

सिर्फ अपने में, मैं, मेरे में ही सीमित रहने वाला व्यक्ति प्रगति नहीं कर सकता। यदि आप चाहते हैं कि दुनिया में आपकी शिनाख्त एक काबिल

और कामयाब शख्स के रूप में हो, तो आपको अपने स्वयं (स्वत्व) का, अपने विचारों का, अपनी सोच का इतना परिष्कार करना होगा कि उसके बाद 'मेरे-तेरे' की भावना का लोप हो जाए। यह एक ऐसी अवस्था हो सकती है, जब आपके मन, वचन व कर्म से सार्वभौमिकता की झलक दिखाई पड़ने लगे।

मात्र स्वयं में और स्वयं के ही मामलों में दिलचस्पी रखने वालों को समाज में स्वीकृति नहीं मिलती। इसे दूसरे शब्दों में कहा जाए, तो ऐसा व्यक्ति दूसरों की हमदर्दी से वंचित रहता है। उसका न तो कुछ सामाजिक असर ही होता है और न ही उसका व्यक्तित्व कहीं से ऊर्जस्वित् ही हो पाता है। उसकी मौजूदगी भर से लोगों को मानो सांप सूंघ जाता है। ऐसे व्यक्ति की कोई शक्ल तक नहीं देखना चाहता।

आत्मकेंद्रित व आत्ममुग्ध रहने वाला व्यक्ति समाज से पृथक हो जाता है। जैसे डाल वृक्ष से कटने के बाद सूखने लगती है, उसी प्रकार समाज से कटा व्यक्ति भी सूखने लगता है। उसकी मानवीय विशेषताओं पर कुहासा छा जाता है। उसकी क्षमताओं में कमी आती है। अकेले पड़े आदमी को आम लोगों के संपर्क में आने पर कोई ऊर्जा नहीं मिलती।

इस तथ्य को इंग्लैंड के प्रसिद्ध कवि रुडयार्ड किपलिंग के शब्दों में इस प्रकार से भी समझा जा सकता है, "भेड़िये की ताकत झुंड में है। चरित्र का विकास एकांत में नहीं किया जा सकता। जब हम दूसरे लोगों के बीच घुलते-मिलते हैं, तो एक-दूसरे को बहुत-सी चीजें सिखाते और बहुत-सी उनसे सीखते भी हैं। दूसरों के बीच रहकर ही हम अपनी चारित्रिक विशेषताओं में इजाफा कर सकते हैं। जैसे कि धारा में बहने वाला नुकीला पत्थर लगातार टक्करें खाने से चिकना और सुडौल बन जाता है, उसी प्रकार समाज की अन्य लोगों की संगत ही हमारी प्रसुप्त क्षमताओं व ऊर्जाओं को जागृत करती है।"

लोग, दूसरों के साथ ठीक से सामंजस्य नहीं कर पाने के कारण दोस्ती में, शादी में, अपने धंधे में, कैरियर में, हुनर में, व्यवहार में, रोजगार में और यहां तक कि उपलब्धियों को अर्जित करने में प्रायः असफल हो जाते हैं।

मेल-जोल और व्यवहारकुशलता, आपको लोकप्रियता प्रदान करती है। फलस्वरूप आपकी प्रगति व सफलता की संभावनाओं में गुणात्मक वृद्धि हो

जाती है। दूसरों के प्रति सहायता तथा कृतज्ञता का भाव रखने से एक ओर व्यक्ति में जहां इनसानियत का समावेश होता है, वहीं दूसरी ओर उसकी चारित्रिक खूबियों में भी वृद्धि होती है।

स्नेह के बीज रोपिए

आपकी सफलता काफी हद तक इस बात पर निर्भर करती है कि आप दूसरों के साथ कैसा बर्ताव करते हैं। किसी ने कहा भी है कि जैसा व्यवहार आप अपने लिए चाहते हैं, दूसरों के साथ भी वैसा ही व्यवहार करें। हम दूसरों को सम्मान व सत्कार देकर ही अपने लिए आदर व सम्मान अर्जित कर सकते हैं। मनुष्य का व्यवहार ऐसा हो कि उससे चहुं ओर प्रेम और स्नेह के अंकुर फूटते जाएं ताकि कल हमें अपने चारों ओर अपनत्व व सहानुभूति के फूल ही फूल उमगते दिखाई दें।

साधारणतया मनुष्य की प्रकृति ही मिल-जुलकर काम करने की है। उसे जिंदगी के लंबे व कांटों भरे सफर में परिवार, समुदाय तथा समाज की आवश्यकता अनुभव होती है। मनुष्य को जीवित रहने के लिए अपने साथियों पर आश्रित रहना ही पड़ेगा। सहकारिता का गुण ही व्यक्ति को विशेषज्ञ बनाता है। विशेषज्ञता में ही उसे उपलब्धि एवं पूर्ति का अनुभव होता है। मनुष्य की सफलता अपने साथियों के साथ उसके संबंधों तथा उनके साथ सहयोग पर निर्भर है।

मनुष्य के व्यक्तित्व की एक विशेषता आक्रमणशीलता है। जो दूसरे मनुष्य से अपनी रक्षा करने की आवश्यकता से संबंधित है। यही वह वजह है, जब व्यक्ति को दूसरों के साथ सहयोग करने में कठिनाई अनुभव होती है। वह दुत्कारे जाने या दूसरों के द्वारा अपना अनुचित लाभ उठाए जाने को सहन नहीं कर पाता है। अन्य लड़ाकू जानवरों की भांति वह किसी को अपने निकट आने देने पर विश्वास नहीं करता। इसका अर्थ यह है कि वह शंकालु तथा ईर्ष्यालु होता है।

अपने भीतर दूसरों के प्रति स्नेह व सहयोग की भावना को बढ़ाकर तमाम मानसिक व्याधियों से निपटा जा सकता है।

आक्रमणशीलता से बचें

बीस शताब्दी पूर्व, संत पौल ने कुरिन्थियों को एक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने प्रेम को एक नये दृष्टिकोण से समझाने का प्रयत्न किया था। उन्होंने कुछ संकेतों द्वारा स्पष्ट किया कि किस प्रकार से मनुष्य सहयोग एवं प्रेम द्वारा अपनी आक्रमणशीलता को दूर कर सकता है—

"प्रेम धैर्यशील होता है, दयालु होता है और दूसरों से ईर्ष्या नहीं करता। प्रेम न दंभी होता है और न शेखीबाज़, न घमंडी, न अभद्र, न स्वार्थी होता है और न ही जल्द बुरा मानने वाला। प्रेम गलतियों का विवरण नहीं रखता, दूसरे के दोषों से सुखी नहीं होता, लेकिन सत्य से उसे आनन्द मिलता है। प्रेम किसी से डरता नहीं। प्रेम से उत्पन्न विश्वास, आशा और सहनशीलता की कोई सीमा नहीं।"

प्रत्येक व्यक्ति में प्रेम के लिए आंतरिक इच्छा और आवश्यकता होती है। प्रेम प्राप्त करने से उसे अपने महत्त्व एवं मूल्य का ज्ञान प्राप्त करना होता है और तब उसे पता लगता है कि लोगों की दृष्टि में भी उसके लिए प्यार व सम्मान है। प्रेम की आवश्यकता का प्रारंभ बचपन में होता है, जबकि इसका विकास मित्रों के संसर्ग तथा वैवाहिक जीवन के अनुभवों से गुजरने पर होता है।

एक दंपती किसी अनाथाश्रम में एक बच्चा गोद लेने के लिए गए। वहां उन्हें एक बालक पसंद आ गया। वे बच्चे को बताने लगे कि वे उसे अपने घर ले आकर क्या-क्या चीजें दिलवाएंगे। जब वे अपनी बात पूरी कर चुके, तो बच्चे ने कहा, "यदि एक अच्छे घर, कपड़े तथा बहुमूल्य खिलौनों के अलावा आप मुझे कुछ नहीं दे सकते हैं, तो मैं इसी अनाथालय में ही रहकर खुश हूं।"

तब दंपती में से पत्नी ने पूछा – "इन सब वस्तुओं के अतिरिक्त दुनिया में तुम्हें क्या चाहिए?" तो बच्चे ने उत्तर दिया – "मैं चाहता हूं कि कोई मुझे प्यार करे।"

दूसरों के प्रति आदर, सहिष्णुता, सहयोग व स्नेह का भाव आपको उनकी नजरों में बढ़ा देता है, अतः जीवन व्यवहार में सफलता अर्जित करने के लिए हमें दूसरों का सदैव ध्यान रखना चाहिए। प्रेम व सम्मान देने में झिझक कैसी? हम कुछ दे ही तो रहे हैं... ले तो नहीं रहे?

"तुम उठो, बढ़कर गिरा दो बीच की दीवार को, देखना आंगन तुम्हारा दो गुना हो जाएगा।"

यह भी ध्यान रखें

- अपने से वरिष्ठ व्यक्तियों से कागज, कलम इत्यादि मांगना शिष्टाचार के विपरीत है, अतः खासकर वरिष्ठ जनों से जब भेंट करने जाएं, तो यह अच्छी तरह सुनिश्चित कर लें कि हमारी जरूरत की सब चीजें हमारे पास हैं भी अथवा नहीं।
- हमें अपने से बड़ों के न तो दाहिने ओर खड़ा होना चाहिए और नहीं उनसे ऊंचे धरातल पर। आदर्श स्थिति बाएं, पीछे अथवा कुछ नीचे स्थल पर होती है।
- कभी और कहीं भी किसी की सीट/आसन पर पैर नहीं रखना चाहिए।
- जब किसी आदर योग्य व्यक्ति को अपने पास बुलाना हो, तो यह कहने की बजाय कि... यहां आजाएं, यह कहना अधिक उचित है कि .....हम आपको याद कर रहे हैं।'

अध्याय 3

विनम्र व मृदुभाषी बनिए

विनम्रता पर कुछ भी खर्चा नहीं आता, अलबत्ता यह पैदा बहुत कुछ करती है। इसे पाने वाले मालामाल हो जाते हैं, परंतु देने वाले भी दरिद्र नहीं हो जाते। यह थके हुए के लिए विश्राम है। हतोत्साही के लिए दिन का प्रकाश है, ठिठुरे हुए के लिए धूप है और कष्ट के लिए प्रकृति का सर्वोत्तम प्रतिकार है।

—डेल कारनेगी

'मैं आपसे बेहद इम्प्रेस हूं' यह एक ऐसा वाक्य है, जिसे सुनना सभी पसंद करते हैं तथा स्वयं को गौरवान्वित महसूस करते हैं। आपके व्यक्तित्व में इतना आकर्षण और खिंचाव हो, जो दूसरों को प्रभावित कर दे, परंतु प्रभावशाली व्यक्तित्व विनम्र व मृदुभाषी हुए बिना अर्जित नहीं किया जा सकता। नम्रता की नींव पर ही सद्गुणों की इमारत खड़ी हो सकती है। साधारण व्यक्ति भी इस गुण से महान् बन सकता है और इसके न रहने पर महान् व्यक्ति भी आदर से वंचित हो जाते हैं।

विनम्र व शिष्ट सभी के प्रिय

विनम्र व शिष्ट, सभी के प्रिय होते हैं। ऐसे व्यक्ति के आचार-विचार व व्यवहार में गज़ब का जादुई आकर्षण होता है, वहीं उसके कृत्य में भी करिश्मा। उसके प्रत्येक फार्म में एक प्रभावपूर्ण संतुलन होता है, जो हरेक के दिल पर एक अमिट छाप छोड़ जाता है। प्रिय और लाभकारी वार्त्तालाप

को वाणी का तप कहा गया है। किसी तपस्वी की भांति विनम्रता की साधना करने वाला व्यक्ति स्वयं ही 'सत्यम् शिवम् सुंदरम्' के मार्ग पर अग्रसर होता चला जाता है।

किरातार्जुनीय आदि नीति-ग्रंथों में "हितं मनोदृष्टि दुर्लभ्या" की बात कही गई है। भगवान श्री कृष्ण ने 'श्रीमद्भगवद् गीता' में अर्जुन को सत्यप्रिय तथा हितकर वचन बोलने के लिए कहा है—

अद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रिय हितं च यत्।
स्वाध्यायाप्येसनं चैव वाङ्मय तप उच्यते।। (17/15)

एक विनम्र व शिष्ट व्यक्ति का दूसरों पर प्रभाव स्थाई होता है। जिन लोगों में ये अतिरिक्त विशेषताएं होती हैं वे बाकी लोगों के लिए एक मिसाल बन जाते हैं। सभी लोग ऐसे व्यक्तियों से मेल-जोल बढ़ाना चाहते हैं व उन्हें अपना आदर्श समझने लगते हैं।

एक पुरानी कहावत है कि 'भाषा अगर मूल्यवान है, तो मौन अमूल्य है।' परंतु आजकल की तेज रफ्तार की जिंदगी में इस कहावत को विस्मृत कर दिया गया है। हम सामाजिक क्षेत्र में हों अथवा अपने कार्य स्थल पर, एक दूसरे से वार्त्तालाप करना ही पड़ता है। ऐसे में 'उचित' व 'अनुचित' का ख्याल रखना बेहद जरूरी है। अनेक बार हम अनर्गल प्रलाप अथवा व्यर्थ की बातचीत करके अपना बना-बनाया काम बिगाड़ लेते हैं। किसी ने हम पर व्यंग्य का कोई फिकरा कसा नहीं कि हम उत्तेजित होकर तत्क्षण उसे दबोच लेते हैं। इसी बीच यदि कोई दूसरा व्यक्ति कुछ और बोला तो हम उसके साथ भी उलझ गए। इस तरह क्रमशः हम बेवजह ही एक चक्रव्यूह में फंसते चले जाते हैं।

सोचिए कितना अच्छा होता यदि हम धीरे से मुस्कुराकर चुपचाप व्यंग्य सह लेते और अपने काम से काम रखते। चुप रहना एक बहुत बड़ी कला है। और चुप रहकर धीरे से मुस्कुरा देना उससे भी बड़ा कार्य है।

इस दुनिया में बोलने के साथ-साथ सुनने और देखने के लिए भी बहुत कुछ है। मगर हममें से अनेक लोग बोलते रहने की धुन में न देख पाते हैं और न ही सुन पाते हैं। जो जुबान को काबू में रख सकता है, वही आंख, कान का भी सही उपयोग कर सकता है। कहा भी गया है –

जीभरिया बड बावरी, कहि गई सरग पताल,
आपुन कहि भीतर भई, जूती खात कपाल।

मधुर बोलें, प्रिय बोलें

जरा सी उलटी-सीधी बात कह देने भर से बात का बतंगड़ बन जाता है। प्रायः देखा गया है कि कड़वे व कटीले वचन बहुधा झगड़ों का कारण बनते हैं। द्रोपदी द्वारा दुर्योधन को 'अंधे का अंधा' कह देने के प्रतिकार में घटित 'महाभारत' इसका ऐतिहासिक साक्ष्य है। एक सामान्य अवधारणा यह भी है कि बाण से हुए घाव का भरना आसान है, लेकिन वाणी के घाव का भरना कठिन।

वाणी पर संयम रखकर बोलने वाला व्यक्ति समाज द्वारा सम्मानित होता है, सब लोग उससे बात करना चाहते हैं। अतः हमें इस बात का भरपूर ख्याल रखना चाहिए कि हम मधुर व प्रिय वचनों को ही अपने व्यवहार में लाएं।

सामान्यतः व्यक्ति अनियंत्रित वाणी के कारण जितनी हानि उठाता है, उतनी हानि उसे अन्य किसी कारण से नहीं होती। यहां महाभारतकार की टिप्पणी उल्लेखनीय है –

"वाणी से भी वाणों की वर्षा होती है। जिस पर इसकी बौछारें पड़ती हैं, वह दिन-रात दुखी रहता है।"

स्पष्टवादिता का ढोल पीटने वाले कुछ लोगों की मान्यता है कि तत्काल मुंहतोड़ जवाब न देना आदमी के दिवालिएपन का प्रतीक है। इस तरह के लोग खरी बात कहकर स्वयं को निश्छल एवं स्पष्टवादी होने का दावा करते हैं। जबकि मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि इस प्रकार की दावेदारी व्यक्ति के मिथ्यादंभ की द्योतक है। जब तक मन में कटुता नहीं होगी, तब तक चुभने वाली बात के जन्मने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। वाणी विचार की अनुगामिनी होती है। जो लोग बहुत खरी और असंतुलित भाषा का प्रयोग करने के आदी होते हैं, वे सबके मन से उतरे भी रहते हैं :

सच्ची बात सादुल्लाह कह,
सबके मन से उतरा रह।

यदि आप उन चीजों का आत्मानुवेषण करें, जो आपको बुरी लगती है, तो आपको पता लगेगा कि उनमें से अधिकांश वे हैं, जिन्हें मामूली समझकर कम करके आंका जाता है। दूसरे शब्दों में, आप छोटी-छोटी बातों का ख्याल रखें, बड़ी बातें अपना ख्याल खुद रख लेंगी।

इन्हीं छोटी-छोटी बातों को चेस्टर तन ने 'भयंकर मामूली' की संज्ञा दी है, क्योंकि यदि इनका प्रारंभ में ही दमन न किया जाए, तो ये वास्तविक परेशानियों में तब्दील हो जाती हैं।

मधुर वचनों के अपने बड़े लाभ हैं। ये कड़वी उक्तियों से होने वाले धक्कों को सहन करते हैं और जीवनरूपी गाड़ी की खड़खड़ाहट तथा हिचकोलों को मृदु बनाते हैं। वास्तव में व्यक्ति के आचरण की छोटी-छोटी तथा स्नेहपूर्ण बातें जीवन को मधुर बनाती हैं, वहीं बड़ी बातें उसे गौरवपूर्ण बनाने का काम करती हैं। स्नेहपूर्ण आचरण का मतलब है – प्रेमपूर्वक सोचना और व्यवहार करना। यह इस तथ्य को पुष्ट करता है कि दूसरों को भी अपने गुणों की स्वीकृति और प्रशंसा की उतनी ही चाह है जितनी कि हमें।

कटु तथा अनियंत्रित वचन, अविवेक का परिचायक है, पागलपन भी इसी की अगली सीढ़ी है अप्रियवाणी बोलने वाला व्यक्ति प्रायः विवेक की स्थिति में अपने किए हुए पर पश्चात्ताप करता हुआ देखा जाता है। एक फारसी लोकमान्यता के मुताबिक 'ईश्वर ने हमें दो कान तथा एक जीभ इसलिए दी है कि सुनो ज्यादा, बोलो कम।'

> **समस्त कार्य वाणी द्वारा नियंत्रित होते हैं। वाणी से ही उनकी उत्पत्ति होती है। अतः वाणी पर मन का नियंत्रण होना ही चाहिए। जो व्यक्ति वाणी से ईमानदार नहीं, वह व्यक्ति सब बातों में बेईमान समझा जाता है। वाणी पर जिसका अधिकार नहीं, वह कैसे कह सकता है कि कार्य करते वक्त वह आपे में रह सकता है।**
>
> **—मनुस्मृति**

खराब बात भी यदि अच्छे अंदाज़ से कही जाए, तो वह भी काफी प्रभावोत्पादक होती है। फिर तो अच्छी बातों को अच्छे ढंग से प्रस्तुत करने के क्या कहने? संत कबीर ने कहा भी है –

ऐसी बानी बोलिये, मन का आपा खोय,
औरन को शीतल करै, आपहु शीतल होय।

यह भी ध्यान रखें

- कुछ व्यक्ति एक ही बात को दोहराते रहते हैं और यह उनकी आदत का एक हिस्सा बन जाता है। एक बात को अधिकतम दो बार कहा जा सकता है, उससे अधिक बार कहना उचित नहीं, क्योंकि इससे बुरा प्रभाव पड़ेगा।
- अकसर लोग किसी शब्द, वाक्य को 'तकिया कलाम' बना लेते हैं। इस आदत से उबरने का प्रयास करें।
- सावधान रहिए, हम जैसी बातें कहेंगे, वैसी ही बातें विभिन्न व्यक्ति, विभिन्न अवसरों पर हमारे बारे में गौर करेंगे, और उसी के आधार पर हमारी एक सामूहिक छवि निर्मित होती चली जाती है।

अध्याय 4

उदासी को जीतिए

जब आदमी, आदमी की पीड़ाओं को एकाकार होकर सुनता है और अनुभव करता है, तो न जाने किन अच्छाइयों पर पहुंचकर सुनहली भावनाओं से भर जाता है... व्यथा न जाने कितने रंगों में फूट-फूट कर सम्मोहित कर लेती है। व्यथा का संतोष सार्थकता दे जाता है और जीवन की उपयोगिता उजागर होकर दिग्-दिगंत में व्याप्त हो जाती है।

—कमलेश्वर

जीवन की धूप-छांव में हताशा के बादल प्रायः अनाहूत, अनचाहे, अनजाने में उभरते हैं। किसी अंधी गली में खड़ी उदासी कभी हमारे सपनों को क्षत-विक्षत और भविष्य को संदिग्ध बना देती है, तो कभी हमारे उस विश्वास को ही इस तरह झकझोर देती है, जो कभी हमारे जीवन की पूंजी और हताशा से हमें उबारने का संबल हुआ करता था। कभी आर्थिक मोर्चे पर असुरक्षित हुए, तो कभी निराशा के पंजे ने धीरे-धीरे अपनी गिरफ्त में लिया, तो कभी प्रेम के मरुस्थल में, अविश्वास की धूप में झुलस जाने से निराशा के अंधेरे ने डसा। रोटी से चलकर सपनों तक ठहरने वाले सफर में कई मोड़ ऐसे हैं, जहां आदमी निराश, उदास और कुंठाग्रस्त हो सकता है, परंतु इससे इतर उदासी को जीतकर हम सफलता के शिखर को स्पर्श कर सकते हैं।

सबसे खराब उदासी का रंग

विविध कारणों से उत्पन्न उदासी का रंग मनुष्य के मन-मस्तिष्क पर सबसे खराब प्रभाव छोड़ता है। उदासी, विवाद अथवा ग्लानि की मानसिकता, व्यक्तित्व विकास में तो सबसे बड़ी बाधा है ही, आदमी की प्रगति के भी प्रतिकूल है। मानसिक अवसाद से घिरे व्यक्ति का मन किसी भी काम में नहीं लगता। वह किसी भी विषय पर ध्यान केंद्रित नहीं कर सकता। पुस्तक का एक पन्ना तक पढ़ने में उसे घंटों लग जाते हैं। उदासी से घिरे व्यक्ति का स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। साधारण से साधारण बात का जवाब भी वह गुस्से में देता है।

मानसिक अवसादों से घिरा व्यक्ति जीवन में दिलचस्पी नहीं लेता। सामान्य घटनाएं, जो लोगों को प्रसन्नता प्रदान करती हैं जैसे कि पदोन्नति, संतान-जन्म तथा बच्चों का परीक्षा में पास होना आदि उसे खुशी नहीं देते। वह अपने कार्य क्षेत्र में लोगों की नापसंदगी का सबब बन जाता है और धीरे-धीरे उसके सहकर्मी व घर परिवार के लोग उससे किन्नरा कर लेते हैं। इस प्रकार के व्यक्तियों का तकिया कलाम होता है – "मुझे अकेला छोड़ दो।"

उदासी से घिरे लोगों को रेडियो, टी.वी. के कार्यक्रम, बच्चों का भागना-दौड़ना, किलकारी मारना आदि अच्छा नहीं लगता। उन पर सबेरे से ही आलस्य छाया रहता है। उन्हें बिस्तर छोड़ना, प्रतिदिन हजामत बनाना, स्नान करना, अच्छे कपड़े पहनना नहीं भाता। इस प्रकार के व्यक्ति किसी भी काम, खेलकूद अथवा मनोविनोद में भी रुचि नहीं लेते। उन्हें भूख नहीं लगती। रुचिकर व सुस्वाद भोजन में उनकी दिलचस्पी नहीं रहती। रति क्रिया भी उन्हें एक बोझ के समान प्रतीत होती है।

उदास, निराश व विवादग्रस्त लोगों के नजरिए में बदलाव आ जाता है। उनमें निकम्मेपन की भावना घर कर जाती है। उन्हें लगता है कि वे जीवन में कुछ नहीं कर सकते। वे अपनी छोटी-छोटी गलतियों के लिए परेशान रहते हैं तथा हरदम उन्हीं के बारे में सोचते रहते हैं। उनका मन रोने, चीखने, चिल्लाने को करता है। उन्हें बहुधा आत्महत्या का ख्याल आता है। इसी उदासी से उबरने के ख्याल से अनेक लोग व्यसनों के आदी हो जाते हैं। नशा करने से उन्हें लगता है कि कुछ देर के लिए ही सही, वह इस समस्या से उबरें तो!

मानसिक अवसाद क्यों?

पश्चिमी देशों में मानसिक उदासी अथवा मनोबल क्षीण रहने के अनेक उदाहरण सामने आए हैं। भारत का जैसे-जैसे औद्योगिकीकरण होता जा रहा है, वैसे-वैसे यहां भी आंतरिक चित्त-वृत्ति में उतार-चढ़ाव एक आम बात हो गई है। इसी के परिणामस्वरूप अनेक मानसिक विकृतियां तेजी से पनप रही हैं। मनोवैज्ञानिकों ने इस अवस्था को मानसिक अवसाद का नाम दिया है।

दुनिया के अनेक जाने-माने ख्याति प्राप्त लोग भी मानसिक अवसाद से ग्रस्त रहे हैं। भारत के बहुत कम लोगों को पता है कि प्रसिद्ध अभिनेता दिलीप कुमार भी एक समय मानसिक अवसाद से पीड़ित रहे हैं। तरह-तरह के दुखद किरदारों को अभिनीत करते-करते उनका व्यक्तित्व ही उदास और दुखद हो गया था तथा वे जीवन की वास्तविकता से ही भटक गए थे। जब उन्होंने लंदन में अपनी मनो-चिकित्सा कराई, तब उनका सही और संतुलित व्यक्तित्व उभर कर सामने आया।

अमेरिकी गायक माइकल हचेंस मानसिक अवसाद के शिकार हुए और उन्होंने आत्महत्या कर ली। स्यादूक मिलीगन मानसिक घुटन से इतने पीड़ित होते थे कि अपने आपको कमरे में बंद करके किसी से भी मिलने से इनकार कर देते थे। विन्सटन चर्चिल भी मानसिक अवसाद के शिकार रहे। भारतीय रजत पट की जानी-मानी अदाकारा मीना कुमारी ने भी मानसिक अवसादों से मुक्ति पाने के लिए अपनी सारी ख्वाहिशें शराब के जाम में उतार दी। अंततः यही शराब उन्हें मौत के मुंह में ले गई। ऐसे भी अनेक मामले हैं, जब व्यक्ति को कोई उपाय नहीं सूझता तो अंततः वह आत्महत्या का विकल्प चुनता है।

उदासी के अलावा भी बहुत कुछ है

मानसिक अवसाद के कई प्रकार होते हैं। चिकित्सकीय भाषा में यह मन की वह स्थिति है, जब वह अत्यधिक उदास हो जाता है। यह स्थिति दो प्रकार की होती है। पहली स्थिति 'रिएक्टिव डिप्रेशन' कहलाती है। इस स्थिति में व्यक्ति भावनात्मक समस्याओं पर गंभीर प्रतिक्रियाएं व्यक्त करता है। दूसरी स्थिति, 'एंडोजेक्स डिप्रेशन' की है। इस स्थिति का मौलिक

आधार ढूंढ पाना टेढ़ी खीर है। हालांकि दोनों मनोदशाएं लगभग एक समान हैं। परंतु दोनों ही दशाओं में शारीरिक ऊर्जा की कमी, ध्यान एकत्रित करने में विफलता और आत्महीनता की भावना प्रबल हो सकती है। आत्महत्या अथवा आत्महत्या की इच्छा इस दशा के गंभीर परिणाम होते हैं।

गंभीर मनोरोगों को दूर करने के लिए मनोचिकित्सा की नितांत आवश्यकता होती है। सामान्यतः मनोरोग की जड़ में भी किसी शारीरिक व्याधि का होना संभव होता है, जैसे डायबिटीज अथवा कुंठित गले की नली। हलके-फुलके मानसिक अवसाद को दूर करने का बेहतरीन उपाय यह है कि आप अपने काम में व्यस्त रहें। जितना संभव हो सके, अकेले रहने की आदत को छोड़ें। दोस्तों के साथ बाहर जाएं। लोगों से मिलें-जुलें। खूब गप-शप व मौज-मस्ती करें।

दिल ही दिल में घुटते रहने की बजाय किसी ऐसे व्यक्ति से अपने हृदय की पीड़ा अथवा द्वन्द्व को प्रकट कर दें, जिसे आप अपना विश्वासपात्र मानते हों। मनोचिकित्सक अकसर रोगी से बातचीत के जरिए ही उसकी चिकित्सा करते हैं।

अलविदा अवसाद

मानसिक अवसाद के गहरे चक्रव्यूह से बाहर निकलने के लिए आपको अपने भीतर कुछ परिवर्तन करने होंगे। इसके लिए जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण का विकास करना होगा। आपको उन कारणों या तत्वों को भी ढूंढ़ना पड़ेगा, जिनकी मदद से आप अपना कार्य कुशलतापूर्वक पूरा कर सकें।

मनोरोगों को भगाने के लिए आपको अपनी दिनचर्या में भी कुछ परिवर्तन करना पड़ेगा। कभी-कभी अपने कार्यालय जाने के मार्ग को बदल दीजिए। हो सकता है, कोई ऐसा चेहरा आपको दिखाई दे और आपका समूचा दिन खराब अथवा सुंदर ढंग से व्यतीत होता है।

यदि आप वास्तव में दुखी भी हों, तो ऐसा अभिनय कीजिए कि आप बेहद सुखी व संतुष्ट हैं। कभी-कभी सहकर्मी के साथ ठहाके लगाने में भी कोई बुराई नहीं है। याद रखिए, यदि आप रोते हैं, तो आपके साथ कोई नहीं

रोएगा। हां, यदि आप हंसते हैं, तो हो सकता है कि कुछ लोग आपकी हंसी में शामिल होने के लिए साथ आ जाएं।

मानवीय स्पर्श से भी व्यक्ति को ऊर्जा मिलती है। जिसके कारण पूरे दिन आप स्वयं को ऊर्जस्वित् महसूस करते हैं। कार्यालय पहुंचकर कुछ लोगों से हाथ मिलाने से कभी न चूकें। मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि आलिंगन से मस्तिष्क में एक रासायनिक प्रक्रिया शुरू हो जाती है। जो मानसिक स्थिति को संतुलित व बेहतर बनाए रखने का काम करती है। इस प्रकार मानसिक अवसाद का स्वतः उपचार हो जाता है।

आज यह बात वैज्ञानिक रूप से सत्य सिद्ध हो चुकी है कि खान-पान के अनुरूप ही व्यक्तित्व का निर्माण होता है। कहावत भी है :

जैसा खाये अन्न, वैसा बने मन,
जैसा पिये पानी, वैसे बोले बानी।

मानसिक अवसाद का सीधा संबंध फूड एलर्जी के साथ होता है। यदि आपको फूड एलर्जी है, तो वही भोजन जो दूसरों को उत्साह और ऊर्जा प्रदान करेगा, आपके मानसिक अवसाद को बढ़ावा देगा। जब आप अपनी भोजन प्रणाली में परिवर्तन लाएं, तो यह अवश्य देखिए कि आपकी मनोदशा में क्या परिवर्तन होता है।

यह भी ध्यान रखें

- क्या आप अपने घरवालों से भी वैसा ही व्यवहार करते हैं, जैसा अपने मालिक या अफसर के साथ?
- क्या आप इस बात का ख्याल रखते हैं कि आपके कारण किसी को कष्ट न हो?
- क्या आप उस अवस्था में भी मज़ाक करना पसंद करेंगे, जब उससे किसी की भावनाओं को दुख पहुंचे?
- क्या आप अपने से छोटों की भावनाओं का ख्याल रखते हैं?
- यदि आप तीसरे दृष्टिकोण के अलावा सबका सकारात्मक उत्तर देते हैं या व्यवहार करते हैं, तो इससे आप निःसंदेह दूसरों द्वारा सराहे जाएंगे।

अध्याय 5

समय का मूल्य पहचानिए

समझदारी आने पर यौवन चला जाता है। जब तक माला गूंथी जाती है, तब तक फूल कुम्हला जाते हैं। जिससे मिलने के संभार की इतनी धूमधाम से सजावट-बनावट होती है, उसके आने तक मनुष्य हृदय को सुंदर और उपयुक्त नहीं बनाए रह सकता है।

—जय शंकर प्रसाद

बचपन में जब हमने समय के महत्त्व के बारे में पढ़ा था, तब हमारे पास बहुत सा समय था, अतः हमने इस पर उतना महत्त्व नहीं दिया था। काफी समय गुजार देने के पश्चात् हमें अब इस बात का सही अहसास हो जाना चाहिए कि समय बहुमूल्य है। समय रहते जो कार्य हंसते-मुस्कराते किए जा सकते हैं, समय निकल जाने पर वही काम पहाड़ की तरह भारी हो जाते हैं। अपने कुछ ऐसे काम याद करें, जो टलते चले गए और अंत में या तो उन्हें छोड़ ही देना पड़ा या फिर भारी मन से किसी तरह उलटे-सीधे पूरे करने पड़े। जिंदगी बहुत छोटी है तथा तेजी से गुजरती चली जा रही है। हर आने वाला पल एक नई जिम्मेदारी का अहसास कराता हुआ आता है। जिसने पुरानी जिम्मेदारी रोक रखी हो, वह नई जिम्मेदारी क्या निभाएगा? जो आज का काम कल पर टालता है, उसका न तो आज ही आया और न ही कल ! समय का पाबंद होना एक व्यवहारकुशल व सफल व्यक्ति की पहचान है।

स्वर्णिम क्षणों की कद्र करें

हमारी जिंदगी का प्रत्येक पल एक 'स्वर्णिम पल' है। जो व्यक्ति इन क्षणों को संजोना और सहेजना जानता है, उसके लिए उन्नति व प्रगति के दरवाजे खुले रहते हैं। वह नाकामयाबी को पीछे धकेलता हुआ न सिर्फ बाधाओं तथा निराशाओं पर विजय प्राप्त करता है, अपितु समय का पाबंद होने के कारण समस्त समाज का चहेता भी बना रहता है। जबकि जीवन के ऊर्जावान व उत्पादक समय को व्यर्थ के कार्यों अथवा लापरवाही में व्यतीत कर देने वाले व्यक्ति एक दिन चारों ओर से हताश व निराश होकर नाकामयाबी के गहरे चक्रव्यूह में फंसकर रह जाते हैं।

समय का सदुपयोग एक साधना सरीखा है, जो मनुष्य को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रगति व उन्नति के नए मार्ग सुझाता है। समय के मूल्य को परखने वाले लोग हर परिस्थिति व देश, काल में सफल रहे हैं। आज भी यदि जीवन के विविध क्षेत्रों में सफलतम लोगों पर हम एक सरसरी नजर दौड़ाते हैं, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि वक्त की कद्र करने का एकमात्र गुण ही उनकी उपलब्धियों को अर्जित करने के लिए सर्वाधिक अचूक व सबल अस्त्र साबित हुआ।

समय के सदुपयोग की साधना में रत लोगों को न सिर्फ नए अवसर ही प्राप्त होते हैं, अपितु वे प्राप्त अवसरों के सर्वश्रेष्ठ उपयोग का हुनर भी जानते हैं। एक ऐसा मनुष्य जो जीवन के प्रत्येक पल को अपने लक्ष्य की प्राप्ति में उपयोग कर लेना चाहता है। उसके पास फालतू के कामों के लिए कोई वक्त शेष नहीं रहता। परिणामतः संपूर्ण मनोयोग से लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए जब वह आगे की यात्रा तय करता है, तो सफलता उसके लिए कोई अजूबा नहीं रह जाती। वह हरेक क्षण साधक की ओर.... अधिक ओर आती होती है। समय की उपयोगिता के विषय में शायर हफीज मेरठी की पंक्तियां देखिए—

वो वक्त का जहाज था, करता लिहाज क्या,
मैं दोस्तों से हाथ मिलाने में रह गया।

बुद्धि का सदुपयोग

टॉमस् एल्वा एडीसन एक ऐसे ही वैज्ञानिक थे, जिन्होंने अपनी अद्वितीय प्रतिभा तथा बुद्धिमत्ता के उपयोग के बाद एक के बाद एक, अनेक

आविष्कारों का अंबार लगा दिया। साधारणतया वैज्ञानिक एक या दो आविष्कार करके ही अमर इतिहास का एक सुनहरा सफा बन जाते हैं। लेकिन एडीसन कुछ दूसरी ही मिट्टी के बने थे। वे अपने जीवन की सांध्य बेला तक अनुसंधानों में जुटे रहे। एडीसन ने अपने जीवन काल में 80 से अधिक आविष्कार किए। यह कोई मानवीय कार्य नहीं था। इसके लिए दैवीय प्रतिभा की आवश्यकता होती है। एडीसन निश्चित ही दैवीय प्रतिभा के धनी व्यक्ति थे। तभी तो उन्होंने कठिन से कठिन रहस्यों को भी अपनी विलक्षण बुद्धि तथा सूझ-बूझ के जरिए सुलझाने में महारत हासिल की।

एडीसन के जीवन को बहुत नजदीक से देखने व प्रभावित करने वाले लोगों का कहना था कि एडीसन ने अपने जीवन का एक भी पल व्यर्थ नहीं गंवाया। प्रयोगशाला ही उनका मनोरंजन स्थली थी। वे दिन-रात वहीं अपने साथियों के साथ नयी-नयी खोजों में डूबे रहते थे।

जब टामस एल्वा एडीसन ने बिजली के बल्ब का आविष्कार किया, तो वे बारह-तेरह दिनों तक अपनी प्रयोगशाला से बाहर ही नहीं निकले थे। यहां तक कि वे सोए भी नहीं। यह क्षमता कब आती है? तब, जबकि मनुष्य प्रत्येक पल को पकड़कर मुट्ठी में कैद कर लेने तथा उसे अपने लक्ष्य के लिए प्रयुक्त कर लेने का निर्णय लेकर चलता है। ऐसे में उसकी कमियां तथा अक्षमताएं भी उसकी सहायक बन जाती हैं।

एडीसन जब बहुत छोटे थे, तो स्कूल में अध्यापक द्वारा कान जोर से खींच लेने के कारण आगे चलकर उनकी सुनने की क्षमता क्षीण हो गई थी। यहां तक कि लगभग बहरे हो गए थे और बहुत जोर से कही गई बात ही सुन पाते थे। अपने वार्त्तालाप में अकसर वे इसके लिए ईश्वर को धन्यवाद देते थे। वे कहते– "यदि मैं बहरा न होता, तो व्यर्थ के राजनीतिक तथा सामाजिक विवादों को सुनता, जिससे मेरी एकाग्रता भंग होती। अब मैं अपने वक्त का संपूर्ण उपयोग प्रकृति के रहस्यों की खोज में लगा सकता हूं।"

समय की साधना

समय की साधना का यही विशिष्ट गुण है। वह व्यक्ति के भीतर सकारात्मक दृष्टिकोण को विकसित करती है तथा उसके जीवन पथ पर उपलब्धियों के दीप आलोकित करती है। अपने जीवन के प्रत्येक क्षण का उपयोग करने

वाला छात्र परीक्षा भवन में उद्विग्न नहीं रहता। उसके जीवन का लक्ष्य एकदम स्पष्ट होता है।

ठीक इसी तरह अपने समय का सदुपयोग करने वाला कर्मचारी अपने कार्य को साधना की तरह देखता है। यदि वह क्लर्क के पद पर कार्यरत है, तो उसे अपनी टेबिल पर पड़ी विभागीय फाइलें बोझ जैसी प्रतीत नहीं होतीं। यदि वह वरिष्ठ अधिकारी है, तो कार्यालय कक्ष के अपने प्रशासनिक दायित्वों को निभाते समय उसे थकान की प्रतीति नहीं होती।

आर्य समाज के प्रवर्तक तथा महान् समाज सुधारक महर्षि दयानंद सरस्वती मात्र दो घंटे सोकर अपना काम चला लेते थे। महात्मा गांधी प्रातः चार बजे उठते थे और रात्रि में दो बजे तक कार्य करते रहते थे। वे कहते थे कि जो मनुष्य रात्रि में बारह बजे से पहले विश्राम करने लगता है अथवा सो जाता है, वह हराम की खाता है।

समय नहीं ठहरता। यह बात और है कि हम इसे जाता हुआ महसूस नहीं कर पाते। जिंदगी की बाकी सच्चाइयों की तरह यह भी एक कड़वा सत्य है कि हम प्रतिदिन अंतिम क्षण के पास आते-जाते हैं। विश्वास मानिए, सालों गुजर जाते हैं, बालों में हलकी सफेदी की झलक, सब कुछ भूलने की आदत, बच्चों से बढ़ता हुआ प्यार, समाज से शिकवे बढ़ते दिखें, तो समझ लीजिए उम्र में कुछ साल और बढ़ गए हैं। अगर आप अपनी सेहत और कपड़ों का ज्यादा ध्यान रखने लगें। ज्यादा समय ध्यान में लगाने लगें तो भी वही बात लागू होती है।

—अविनाश चंद्र सहगल 'चिंतन'

लौह पुरुष सरदार बल्लभ भाई पटेल भी 18 घंटे प्रतिदिन कार्य करते थे। अपने जीवन के अंतिम क्षणों तक उन्होंने अपनी यह क्षमता बरकरार रखी। उन्हीं के समकक्ष भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू इतने अद्‌भुत व्यक्ति थे कि उन्होंने अपने जेल प्रवास को ही पूर्णतः सार्थक बनाते हुए 'डिस्कवरी ऑफ इण्डिया' जैसी युगांतकारी पुस्तक की रचना की। उनकी इस कृति ने समूचे विश्व का ध्यान भारत की तरफ आकृष्ट किया। इतना ही नहीं, इस ऐतिहासिक रचना के कारण ही 'भारतत्व' अर्थात् 'इंडोलाजी' नामक एक अलग विषय का प्रादुर्भाव हुआ।

यहां यह भी जान लेना बेहद जरूरी है कि बीता हुआ समय फिर कभी लौटकर नहीं आता। आगे बढ़ने के जो अवसर इस समय आपके पास मौजूद हैं, वे सदा-सर्वदा आपके पास रहने वाले भी नहीं हैं। अतः अपने जीवन के प्रतिफल का सर्वोत्तम सदुपयोग करने की चेष्टा करने से ही जीवन संघर्ष में आप विजयश्री अर्जित कर सकते हैं।

समय अमूल्य है, क्योंकि यही हमारे पास एक मात्र पूंजी हैं, जो निरंतर नए अवसर लेकर आपके सम्मुख आता है। समय इसलिए भी अमूल्य है, क्योंकि बीते हुए समय को किसी भी स्वर्ण मुद्रा के बदले खरीदा नहीं जा सकता।

यह भी ध्यान रखें

- एक कहावत है 'स्लीप वाइजर' अर्थात् हमें प्रतिदिन कुछ न कुछ नया अवश्य सीखना चाहिए। हम वैसे ही सोए न रह जाएं, जैसे सुबह जगे थे।
- हम सब यह जानते हैं कि जीवन का समय सीमित होता है। अतिरिक्त समय खरीदा नहीं जा सकता। अतः हमें न तो अपना समय बर्बाद करना चाहिए और न ही किसी अन्य का।
- जो समय चिंता में बीता, समझो कूड़ेदान में गया। जो समय चिंतन में गया, वह समझो तिजोरी में।
- जो उत्तम कार्य करना है, वह आज ही कर डालें। ऐसा न हो कि काल निगल जाए। मृत्यु इस बात की प्रतीक्षा नहीं करती कि आपने कोई कार्य पूरा किया है अथवा नहीं?

अध्याय 6

मनहूसियत से बचिए

मनहूस आदमी दूसरों के सामने निराशा के ही चित्र खींचता है। वह दूसरों के दोष देखने में लगा रहता है। वह दूसरों के हृदय को व्यंग्य के तीर से छलनी कर देता है। ऐसे लोग जहां जाते हैं, अपनी मनहूस आकृति साथ ले जाते हैं। वे हर एक की आज्ञा तोड़ने का प्रयत्न करते हैं। वे जीवन में बहुत कम सुंदरता या आनंद देखते हैं। ऐसे लोग स्वयं असफल होते हैं तथा वे कदापि लोकप्रिय नहीं हो सकते।

—स्वेट मार्डेन

मनुष्य को समस्त प्राणियों में श्रेष्ठ व योग्य माना गया है। इस मान्यता के पीछे मनुष्य की संवेदनशीलता तथा अभिव्यक्ति की क्षमता का होना प्रमुख है। जिंदगी एक हंसता हुआ गुलाब है। ग़मगीन व मनहूसियत भरे चेहरे उत्सवी समाज में शिरकत के हकदार नहीं। हम जहां तक हो सके प्रेम, खुशी व हंसी के वातावरण को बनाने की दिशा में काम करें। हंसते-खेलते परिवेश में अपने तनाव व अवसाद को वितरित करने का हमें कोई अधिकार नहीं। मनहूसियत एक ऐसा ही दुर्गुण है, जो न सिर्फ समाज में हमें त्याज्य बनाता है, अपितु उपलब्धियों व प्रगति के अवसरों से भी पृथक् करने का काम करता है।

जिंदगी फूल है, खुशबू से महकते रहिए

जिंदगी मनुष्य के लिए प्रकृति का सर्वोत्तम उपहार है। इसे प्रतिपल सुगंधित करके, इसकी सार्थकता को जाना जा सकता है। जिंदगी में सुख-दुख धूप-छांव सरीखे हैं। एक जाता है, तो दूसरा आ जाता है। लेकिन हमें प्रत्येक अवस्था में संतुलित तथा प्रसन्न रहने की कला का विकास करना चाहिए। वर्तमान के आधुनिक परिवेश ने जीवन की शक्ल ही बदल दी है। आज वक्त के माथे पर चिंता की लकीरें हैं। सभी जाने-अनजाने विषयों के कारण द्रवित व व्याधित हैं, परंतु इसका यह अभिप्राय नहीं कि हम दुखों को एक आवरण की भांति ओढ़ लें और जहां-तहां, उनका अप्रिय प्रदर्शन करते फिरें। यह सब एक सफल होने वाले व्यक्ति के पांव की बेड़ियां हैं।

एक व्यवहारकुशल इनसान के लिए बाह्य सौंदर्य के साथ-साथ उसका स्वभाव भी बेहद मायने रखता है। एक खुशमिज़ाज और विनोदप्रिय व्यक्ति, जिसके होठों पर सदा खिलखिलाहट रहती हो, दूसरों को अपनी ओर आकर्षित करता है। जो व्यक्ति यह जानता हो कि दूसरों को किस तरह की बातों में रुचि है, तथा उससे किस तरह की बातें करनी चाहिए। हरेक मौके पर उपयुक्त व उचित वार्त्तालाप कर सकने की योग्यता रखने वाले व्यक्ति निःसंदेह सभी को प्रभावित करते हैं।

जीवन में विविध मौके हमें असफलता से दो-चार कराते रहने का काम करते हैं। भविष्य के प्रति सकारात्मक व आशाजन्य दृष्टिकोण हमें असफलताओं के दुखों से उबरने में मददगार होता है।

अंग्रेजी में एक सूक्ति है कि 'थार्नलेस रोज़ेज हैव नॉट एट बीन डेवेलब्ड' अर्थात् कांटों रहित गुलाब के फूल का विकास अभी तक नहीं किया जा सका है, जो व्यक्ति गुलाब की भांति सुंदर व सर्वप्रिय बनना चाहते हैं। उनको चाहिए कि वे फूलों की तरह कांटों भरी जिंदगी में भी मुस्कराने व विकसित होने की कला सीखें। असफलता के अवसरों पर यदि हम हाथ पर हाथ रखकर बैठ जाते हैं, तो हमें समझ लेना चाहिए कि हमने फूलों से कुछ सीखा ही नहीं।

उपवन में सम्मुख होने वाले प्रत्येक व्यक्ति को फूल अपनी मुस्कान बांटते हैं। अपनी वेदना को कभी व्यक्त नहीं करते। यही वजह है कि जब हम

किसी प्रसन्नचित्त व्यक्ति को देखते हैं, तो सहसा ही कह उठते हैं कि देखो, इसका चेहरा कैसा फूल-सा खिल रहा है।

किसी दिन की शुरुआत एक ऐसी सूचना अथवा समाचार से भी हो सकती है, जो हमारे लिए अप्रिय अथवा दुखद हो। यह भी संभव है कि इसके बाद दिन का शेष हिस्सा निराशा के कुहासे में लिपटा प्रतीत हो। लेकिन आत्मदया से उसका सामना नहीं किया जा सकता। यह तो बेजान और अधूरा तरीका साबित होगा। निस्तार के लिए बाहर से कुछ मिलने का इंतजार करना बेमायने हैं। अपने स्वयं के कल्याण हेतु हमें भीतर से ही कुछ प्रयास करने होंगे। हमारे भीतर जो घटित हो रहा है, हमारे अंतरस् में जो प्रतिफलित हो रहा है, उस पर ध्यान एकाग्र करने का अभ्यास एक अच्छी शुरुआत है। एक बार हम जब अपने अंदर के अनुभव से समरस हो जाएंगे, तो घटनाओं का बखूबी सामना करने में हम समर्थ होंगे। भले ही ये घटनाएं अप्रिय ही क्यों न हों।

इस अभ्यास में गहरे उतरते ही हमें अनुभव होगा कि हमारे भीतर तथ्यों को ईमानदारीपूर्वक ग्रहण करने की संपदा विकसित होने लगी है। इसके साथ ही हमें परोक्ष रूप से स्थिति के सच्चे उपचार का मार्ग भी प्रशस्त होता दिखाई देगा।

जब हम आत्मा के साथ अविश्वास का तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं, तब हम बहुत-सी नाकामियों को भी न्योता भेज देते हैं। अपनी शक्ति का परिष्कार ही हमें अधिक शक्तिमान बनाने की दिशा में कार्य करता है। इसके ठीक विपरीत अपने आत्मबल में क्षीणता का अहसास करने वाले व्यक्ति निहायत दुर्बल सिद्ध होते हैं... भले ही वे कितने भी शक्ति संपन्न होने का ढिंढोरा पीटते फिरते रहें।

चिंता नहीं, चिंतन करें

मनहूसियत का दूसरा संवेग चिंता है। चिंता को चिता की संज्ञा दी गई है। चिंता जब आती है, तो अपने साथ अनेक हानियां भी लेकर आती है। जिसका कुप्रभाव हृदय, ग्रंथियों, संपूर्ण नाड़ी-तंत्र तथा संपूर्ण स्वास्थ्य पर पड़ता है। चिंता के कारण कायिक बीमारियों का विकास होता है। व्यक्ति की शक्ति सामर्थ्य में कमी आती है तथा उसका जीवन दुखी व कष्टप्रद बन

जाता है। चिंता व्यक्ति की उम्र को खा जाती है। चिंता मानसिक संवेगों की प्रक्रिया है। हम अपने वैचारिक पक्ष को सुधार कर चिंता पर काबू पा सकते हैं।

अकर्मण्यता से बचें

किसी विद्वान् का कहना था कि चिंता अकर्मण्य मस्तिष्क की उपज है। जिस व्यक्ति को काम करना अच्छा नहीं लगता, उसे चिंता करना अच्छा लगता है। एकाध बार यदि कोई महिला अथवा पुरुष मित्र चिंतित दिखाई देता है, तो लोग उसकी मदद के लिए आगे आ सकते हैं, परंतु जब इसे वह अपने व्यवहार में शामिल कर लेता है, तो कोई भी आदमी इस बोझिलपन से ऊबकर कन्नी काटता नजर आता है।

बात उन दिनों की है, जब पश्चिम अमेरिका नया बस रहा था। वहां डेनियल बोनी नामक एक व्यक्ति था। उसकी गिनती बड़े अन्वेषकों में होती थी। उसकी जिंदगी का अधिकांश हिस्सा खतरों से जूझने में व्यतीत हुआ।

इसके बावजूद उसने 85 साल की लंबी उम्र पाई। जब उसका अंतिम समय निकट आया, तो एक दोस्त उससे मिलने पहुंचा। उसने पूछा –

"यह बताओ कि अपने आपको इतने खतरों से कैसे बचाए रख सके?" डेनियल का जवाब था – "ईश्वर की तरफ से यह बदा था कि मैं इस जंगली इलाके को सरसब्ज़ कर दूं।"

डेनियल की जिंदगी कांटों भरी थी, लेकिन उसके भीतर उत्साह का अपार सागर ठांठें भर रहा था। उसे यकीन था कि हालांकि उसका काम बेहद मुश्किल है, लेकिन वह बहुत उपयोगी है, तथा ईश्वरीय ताकत उसे हमेशा बचा रही है। यदि हम सब भी इस तरह के दृष्टिकोण का विकास करें, तो हम समस्त फालतू डरों तथा अनावश्यक चिंताओं से मुक्त अनुभव करेंगे।

चिंता को सभी मनोवैज्ञानिकों ने नुकसानदेह समझकर इससे मुक्त रहने की बात कही है। यह व्यक्ति को अंदर ही अंदर भस्म कर देती है। किसी ने कहा भी है –

चिंता चिता से है बड़ी, चिंता बुरी बलाय।
चिता जलाए आग में, चिंता बिन आग जलाय।।

सूफी संतों ने भी शरीअत, तरीकत, हकीकत और मारिफत के सोपानों पर चढ़कर फना की उपलब्धि की सीख दी।

इशरते कतरा है दरिया में फना हो जाना,
दर्द का हद से गुजर जाना है दवा हो जाना।

यह दर्द क्या है? परमात्मा से साक्षात्कार की व्याकुलता। लौकिक भाषा में इसे माशूक से मिलने की उत्कंठा भी कहा जाता है। माशूक (परमात्मा) के विरह (वियोग) के कारण होने वाली पीड़ा ही दर्द है, जो हाल बेहोशी अथवा समाधि की अवस्था लाने वाली दवा बन जाती है।

यह भी ध्यान रखें

- प्रत्येक कार्य को श्रेष्ठ रूप में करने का प्रयत्न करें, जिससे आपको अधिकाधिक काम मिले।
- अच्छे कारीगर के पास काम की कमी नहीं रहती।
- अच्छे कार्य का पुरस्कार और अधिक कार्य है।
- अनावश्यक बात मत कहो। कोई बात कहने से पूर्व उसके द्वारा उत्पन्न प्रभाव पर विचार कर लो। संग साथ के प्रभाववश अपने सिद्धांतों को मत छोड़ो अर्थात् अपने उसूलों से समझौता मत करो।
- अपने मस्तिष्क में किसी व्यर्थ अथवा आंशिक विचार को स्थान मत दो। यह कार्य बहुत कठिन है। इसके लिए सावधानीपूर्वक अभ्यास करना होगा।

फलक देता है जिनको ऐश उनको ग़म भी होते हैं,
जहां बजते हैं नक्कारे वहां मातम भी होते हैं।

अध्याय 7

पात्र-कुपात्र को परखिए

कोई वस्तु पुरानी हो जाने से अच्छी नहीं हो जाती और न ही कोई काव्य नया होने से निंदनीय हो जाता है। सच्चे पुरुष नये-पुराने की परीक्षा करके दोनों में से जो गुण और गतियुक्त होता है, उसे ग्रहण करते हैं। मूर्ख की बुद्धि दूसरे के ज्ञान से ही प्रभावित रहती है।

—कालिदास

जीवन में सफलता के सोपानों को छूने के लिए आवश्यक है कि हमें लोगों की पहचान करने की समझ हो। कई बार लोगों को परख नहीं पाने के कारण हम उनसे यथायोग्य बर्ताव नहीं कर पाते, जो अनुचित है। हमें अपने संपर्क में आने वाले लोगों की पहचान करनी चाहिए तथा उसी के अनुरूप उनसे वार्त्ता-व्यवहार व अन्य कार्यकलाप करने चाहिए। दुष्ट को आदर तथा विद्वान् व्यक्ति का तिरस्कार न सिर्फ हमारे अपने लिए घातक है, अपितु ये मानवीय सभ्यता के भी एकदम प्रतिकूल हैं।

संभालकर रखिए भरोसे की पूंजी

यदि हम जीवन में सफल और प्रसिद्ध होना चाहते हैं, तो हमें लोगों की परख करनी चाहिए। शास्त्रों में इस बात पर जोर दिया गया है कि हम अपने व्यवहार में यथायोग्य बर्ताव पर जोर दें। हमारे पास विश्वास व सम्मान की जो अमूल्य धरोहर है, उसे अनायास या निष्प्रयोज्य ढंग से

किसी पर भी लुटा देना मूर्खता भरा काम है। मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि हम जीवन में अनेक बार मात्र इस वजह से असफल रहते हैं, क्योंकि हमें लोगों की परख नहीं होती।

सामान्यतः हम देखें तो पाते हैं कि अनेक मौके हमारे हाथों से मात्र इसलिए फिसल गए, क्योंकि हम सामने वाले व्यक्ति को सही ढंग से समझ नहीं सके थे। बहुत से विवादों की वजह भी यही है कि हम लोगों से यथायोग्य व्यवहार कायम रख पाने में असफल रहते हैं। किसी शायर ने विश्वास व परिचय की प्रगाढ़ता को अपने चश्में से इस तरह भी देखने का प्रयास किया है:

कोई हाथ भी न मिलाएगा, ग़र गले मिलोगे तपाक से,
ये नए मिज़ाज़ का शहर है, जरा फ़ासले से मिला करो।

किसी भी व्यक्ति या साथी पर सिंचित विश्वास की निधि एकदम उड़ेल देना अनुचित है। हमें अपने जीवन के महत्त्वपूर्ण रहस्यों को जहां तक संभव हो सके, गोपनीय रखना चाहिए। क्योंकि पता नहीं जीवन के किस मोड़ पर कौन सा व्यक्ति कब मित्र से शत्रु बन जाए अथवा ऐसे लोगों से जा मिले, जो आपके विरोधी या षड्यंत्रकर्ता हों।

सचेत रहें, सतर्क रहें

सब कुछ अच्छा ही होगा, इस आशा की डोरी थामे रखना व्यर्थ है। इसके लिए हमें यथासंभव परिश्रम व प्रयत्न करने होंगे। किसी भी व्यक्ति को तब तक सुखी होने का कोई अधिकार नहीं है, जब तक कि वह अपने कर्तव्य का समुचित निर्वाह न करे। ईश्वर बीज को पनपाता और बढ़ाता है, लेकिन उसे बोने और सींचने की जिम्मेदारी हमारी है। हमारे निर्णयों में एक सकारात्मक दूरदर्शिता की स्पष्ट झलक होनी चाहिए वर्ना हम अनेक मोर्चों पर असफल हो जाएंगे। किसी भी चीज को संयोग पर मत छोड़ो, अपितु तैयारी करो और प्रबंध करो ताकि कार्य की कुशल संपन्नता सुनिश्चित हो सके।

भाग्य को, परिस्थिति को अथवा दूसरे लोगों को दोषारोपण करने से कोई लाभ होने वाला नहीं। अपने व्यक्तिगत मामलों में बखूबी गौर करने के बाद

निर्णय कीजिए। उसके विभिन्न पहलुओं पर ध्यान दीजिए तथा उसके उतार-चढ़ाव को तोल लीजिए।

अपने व्यक्तिगत मामलों में आप और लोगों की अपेक्षा कहीं ज्यादा सही और भरोसेमंद निर्णय ले सकने में सक्षम हैं, क्योंकि दूसरे लोगों को आपकी बेहतरी में दिलचस्पी क्यों होगी?

अंगुलिमाल जब नौ सौ निन्यानबे लोगों को मारकर हजारवें व्यक्ति की तलाश में था, कि उसे मारकर अपनी कसम पूर्ण करे, तब महात्मा बुद्ध हजारवें व्यक्ति के स्थान पर अंगुलिमाल के सम्मुख पहुंचे। महात्मा बुद्ध की बातों ने उसे इतना प्रभावित किया कि उसने वहीं अपनी कसम तोड़ दी तथा बुद्ध के चरणों में गिरकर कभी किसी को नहीं मारने की कसम खाई।

जब लोगों को पता चला कि अंगुलिमाल ने किसी पर हाथ नहीं उठाने की कसम खाई है, तो उन्होंने उसे पुरानी हत्याओं की रंजिश में पत्थर मार-मारकर घायल कर दिया। जब अंगुलिमाल मरने की स्थिति में था, तब भी उसने हाथ नहीं उठाए।

यदि हम अपने प्रति सच्चे और बेहतर होना चाहते हैं, तो हमें भरोसे के लायक भी बनना पड़ेगा और इस लायक लोगों को अपने लिए छांटना भी पड़ेगा। आपको चाहिए कि अपने शब्दों को नहीं बदलें, अपने वायदों की कद्र करें, समस्त कार्यों को सुरुचिपूर्ण ढंग से निश्चित समय पर निपटाने का अभ्यास करें। सबके प्रति न्याय के दृष्टिकोण में विकास करें। पक्षपात से बचें। भरोसेमंद व्यक्ति की सबसे बड़ी पहचान स्थिरता है।

हमें अपने चरित्र तथा अपनी क्षमताओं का और अधिक पोषण करना चाहिए। अपने आप पर निर्भर रहने से और अपनी प्राकृतिक प्रतिभा पर भरोसा रखने से आपका चरित्र शक्तिशाली बनेगा और आपका अभिक्रम जागेगा। इस तरह आपको अपात्र व्यक्ति और भी बौने व गौण नज़र आएंगे।

आपके प्रभावशाली व स्पष्ट व्यक्तित्व के समक्ष सारी चालबाजियां मुंह के बल औंधी पड़ी होंगी।

यह भी ध्यान रखें

- जिस प्रकार भूख से व्याकुल होने पर भी सिंह दूसरों के पराक्रम से प्राप्त मांस नहीं खाते, उसी प्रकार महान् दुख होने पर भी स्वाभिमानी मनुष्य दूसरों के द्वारा दिए गए धन को स्वीकार नहीं करते।
- दुष्ट को, मूर्ख को तथा बहके हुए को समझ पाना बहुत कठिन है।
- जो दूसरों से निर्भय है और दूसरों को भी अभयदान देता है, वह सुपात्र है।
- फूल अपने लिए नहीं खिलता, दूसरों के लिए खिलता है। तुम भी अपने हृदय रूपी कुसुम को दूसरों के लिए प्रफुल्लित करो।

अध्याय 8

झूठ फरेब से दूर रहिए

'सच्चाई की झंकार' यह उक्ति कितनी सार्थक है; जिस प्रकार एक सिक्के की झंकार से हम उसकी संपूर्ण धातु के खरेपन को पहचान लेते हैं, उसी प्रकार हम व्यक्तित्व की सच्चाई को भी पहचान सकते हैं। चुटकी पर बजाकर जो सिक्का सच साबित होता है, दुनिया में सभी जगह उसकी पूरी-पूरी कीमत स्वीकार की जाती है।

—जेम्स एलन

पश्चिम के एक विद्वान् विचारक जी.डी. बोर्डमैन का कथन है कि – एक कार्य बो दो और एक आदत प्राप्त कर लो, एक आदत बो दो और एक चरित्र प्राप्त कर लो, एक चरित्र बो दो और एक भाग्य प्राप्त कर लो।

स्पष्ट है कि एक कार्य से मनुष्य का भाग्य संगठित हो जाता है। वृक्ष की शाखा जिधर और जैसे मोड़ दी जाती है, उसका उधर वैसा ही झुकाव पैदा हो जाता है। एक बार यदि मनुष्य झूठ-फरेब के जंजाल में खुद को फंसा लेता है, तो लाख प्रयत्न करके भी वह उससे बाहर नहीं निकल पाता और दिन-प्रतिदिन पतन की ओर उन्मुख होता चला जाता है।

जैसा बोइए, वैसा काटिए

वृक्ष चाहे छोटे हों अथवा बड़े, जिस तरह का बीजारोपण होगा–फल भी वैसा ही मिलेगा। बबूल के बीज रोपने से जो पेड़ उत्पन्न होगा, उसमें कांटे निकलना अवश्यंभावी है। जबकि आम की गुठली से पैदा हुए पेड़ का फल स्वादिष्ट व सुगंधित आमों की उत्पत्ति करेंगे। यह नियम संसार की समस्त छोटी-बड़ी वनस्पतियों पर लागू होता है।

यदि सावधानीपूर्वक देखें तो यही नियम मनुष्य की आदत बनाने में भी लागू होता है। अच्छे स्वभाव का फल श्रेष्ठ तथा बुरे स्वभाव का फल निश्चित रूप से बुरा होगा। यदि हम जीवन में सफलता की सीढ़ियां तय करना चाहते हैं, तो अच्छी आदतों का विकास बेहद जरूरी है।

किसी भी विचार अथवा कार्य के प्रारंभ से आदत का प्रादुर्भाव होता है। कोई भी गलत कार्य प्रथम बार करने से पूर्व मन को यह संतोष दिया जाता है कि इस कार्य को एक बार करने से हम इसके आदी थोड़े ही हो जाएंगे? परंतु यह विचार पूर्णतया भ्रामक है। एक काम को एक बार करने से आपने उसका अंकुर तो मन में रोप ही दिया।

कार्य के एक बार करने से ही मनुष्य के स्मृति पटल पर उसकी छाप पड़ जाती है। लक्ष्य न रखने से उसकी वृद्धि दृष्टिगत नहीं होती, परंतु वृद्धि तो होती ही रहती है। भले ही हम उस कार्य को न दोहराएं, परंतु उसका विचार तो बारंबार आता ही रहेगा। कालांतर में जब उस विचार को अनुकूल व्यवस्था मिल जाती है, तो वही विचार उस कार्य को दोबारा अथवा तिबारा करा डालता है। यहीं से शनैःशनैः अभ्यास अपनी गति को आयाम प्रदान करना शुरू कर देता है। धीरे-धीरे इसी अभ्यास रूपी खाद-पानी से आदतों का वृक्ष बड़ा आकार ले लेता है।

यह सर्वमान्य सत्य है कि बुरे विचार अच्छे विचारों की अपेक्षा तेजी से अपना प्रभाव छोड़ते हैं। अतएव हमें बुरे विचारों एवं उनके प्रभावों से यथासंभव बचने के प्रयत्न करने चाहिए।

छोटे-छोटे कार्यों का महत्त्व

छोटी-छोटी जलधाराओं से नाली बन जाती है, नाली से नद, नद से नदी और नदी से समुद्र निर्मित हो जाता है। इसी प्रकार छोटे-छोटे कार्यों से अभ्यास बढ़ता चला जाता है, यही अभ्यास जब नकारात्मक दिशा में बढ़ता जाता है, तो व्यसन बन जाता है। इसी व्यसन से मनुष्य के चरित्र पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

एक वक्त ऐसा भी आता है, जब मनुष्य के मन में अपने दुष्कृत्यों की बाबत न तो पश्चात्ताप ही होता है और न खेद। हमें ऐसी स्थिति आने से पहले ही उन भावों को समाप्त कर देना चाहिए जिनसे उक्त स्थिति का जन्म होता है। जैसे विशूचिका, प्लेग के अत्यंत सूक्ष्म जीवाणु वर्षों तक एक स्थान पर पड़े रहते हुए भी जीवित रहते हैं तथा ज्यों ही उन्हें अनुकूल व्यवस्था मिलती है, वे मनुष्य के रुधिर में संचरित हो जाते हैं।

मनोवैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों द्वारा सिद्ध कर दिया है कि हम जो कुछ भी क्रियाएं एक बार कर लेते हैं, वह हमारे भीतर से नहीं निकलतीं। मनुष्य की स्नायविक बनावट में कुछ ऐसी प्रवृत्ति है कि वह एक कार्य विशेष को समय-समय के अनिश्चित अंतर पर दोहराती रहती है।

जिस कर्म को हम प्रतिदिन किसी निश्चित समय पर करते हैं, उसके लिए हमारा मस्तिष्क ऐसा अभ्यस्त हो जाता है कि वह समय विशेष आते ही हमारा मस्तिष्क उस कर्म को करने हेतु स्वतः उद्यत हो जाता है।

श्रेष्ठ आदतों का विकास

शिक्षा के ज्ञान से हम इस तरह की अच्छी आदतों का विकास करें कि वे हमारी पूंजी बन जाएं और आदतों के फलस्वरूप जो अच्छे कर्म हों, वे कर्म हमारा सूद या ब्याज बनकर हमारे जीवन को चलाते रहें।

यही सूत्र मिथ्यावादिता तथा फरेबबाजी पर भी लागू होता है। जब हम एक बार इसका दामन पकड़ लेते हैं, तो फिर वो छुड़ाए नहीं छूटता।

झूठ के लिए सर्वाधिक दिक्कत यह भी है कि उसे याद रखना पड़ता है, जो संभव नहीं और झूठ उजागर होते ही हमारे व्यक्तित्व की शानदार इमारत

धराशायी हो जाती है। अतः किसी भी परिस्थिति में झूठ, फरेब इत्यादि का आश्रय न लें। दृढ़निश्चयी बनकर अपने लक्षित उद्देश्य को आत्मसात करें।

जीवन में कठिन परिस्थितियां आना स्वाभाविक है। जब व्यक्ति अपने बचाव के लिए एक बार झूठ का सहारा ले लेता है, तो धीरे-धीरे वह झूठ बोलने में निपुण हो जाता है। झूठ, छल, प्रपंच तथा फरेब हमारे व्यक्तित्व के ऐसे पक्ष हैं, जिनके कारण हमें पग-पग पर हताशा, अपमान, असफलता तथा बदनामी का सामना करना पड़ता है। जीवन में सफल होने के लिए इन बुराइयों को दृढ़ संकल्प के बलबूते विसर्जित करने की आवश्यकता है।

यह भी ध्यान रखें

- यदि तुम जीवन में उन्नति करना चाहते हो, तो बाहरी आडंबरों और ईमानदारी से आत्मशोधन करो।
- शरीर खेत है, मनुष्य किसान, पाप तथा पुण्य दो बीज हैं।
- साहसी व्यक्ति कभी असत्य नहीं बोलता।
- सभी दलों में अपने साथ किया हुआ छल प्रथम और सर्वत्र निकृष्ट होता है।

अध्याय 9

कथनी और करनी में साम्य बनाइए

सभी चीजों में सत्य का पालन करो। और तब आपकी ईमानदारी की चेतना कार्य करने की थकान को शांत करेगी। असफलता और निराशा के दुख को कम करेगी और ईश्वर के लिए आप में विश्वास जागृत करेगी। जबकि मनुष्यों की अकृतज्ञता या समय की प्रतिकूलता के कारण आप अन्य लाभों से वंचित रह जाते हैं।

—पेले

कथनी-करनी में समानता व्यवहारकुशल जीवन के लिए एक स्थापित सिद्धांत है। 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' वाली उक्ति को चरितार्थ करते हुए अकसर हम अपने वचन और कर्म के मध्य सामंजस्य कायम नहीं कर पाते। हम जिस कार्य को दूसरे व्यक्ति को करने के लिए मना करते हैं, सर्वप्रथम स्वयं उसे करना बंद करें। कथनी और करनी के मध्य एकरूपता कायम करके ही हम जीवन की सफलता रूपी सीढ़ियों को तय कर सकते हैं।

बरसने वाले बादल बनिए

समाज में प्रचलित एक सामान्य सूक्ति है कि 'गरजने वाले बादल बरसते नहीं' लेकिन जीवन का यथार्थ बिल्कुल उलटा है। सफलतम जीवन के लिए गरजने की मनाही है और यदि आप गरजते हैं, तो आपको बरसना भी

पड़ेगा। कर्मवीर व्यक्ति को, जो कुछ करके दिखाने का जज़्बा रखता है, सबसे बड़ा वीर कहा गया है।

वास्तविक जीवन में हम यही चाहते हैं कि हमारे सभी कार्य हो जाएं और स्वाभाविक है कि हम ऐसे आदमी को पसंद करते हैं, जिसके निश्चित उद्देश्य और प्रयोजन हों तथा जो अपने कार्य के सर्वोत्तम निष्पादन हेतु सबसे सीधा और सबसे लघु मार्ग का अनुसरण करता है। इसके उलटे उन आदमियों को कोई पसंद नहीं करता, जो करने के ढंग को लच्छेदार भाषा में समझाने के लिए तो मगजखप्पी करें, परंतु व्यावहारिक रूप से कुछ करें नहीं।

वास्तव में जिन शब्दों के पीछे कर्म नहीं हैं, वे धोखे के श्यामपट्ट हैं। बिल्कुल उसी तरह जैसे बादल गरजें तो खूब, बिजली भी जोर से चमके, लेकिन पानी कुछ न बरसे। खेत पर कड़ा परिश्रम किए बिना हमें मन मुताबिक फसल की प्राप्ति नहीं होगी। हाथ पर हाथ रखकर बैठे रहने वाले लोगों के हिस्से में नाउम्मीदी की फसल ही आती है। काम के प्रति आपका नजरिया ही आपकी सफलता का फैसला करता है। लेकिन नजरिए को बनाने वाले आप खुद हैं और कोई बाहर से आकर आपके अपने दृष्टिकोण का निर्माण नहीं कर सकता।

पहले के नेताओं में जनता का विश्वास इसलिए पनपता था कि वे गुमराह नहीं करते थे, यानी उनकी कथनी और करनी में पूर्णतः सामंजस्य होता था। वहीं वर्तमान नेताओं में इसका पूर्णतः अभाव देखने को मिल रहा है।

कथनी-करनी में एका

कथनी और करनी में एका रखने वाला व्यक्ति आत्मबल का धनी होता है। उसकी प्रभावशीलता से हर कोई अभिभूत हो जाता है। जबकि चिकनी-चुपड़ी बातें बनाने तथा कार्य के नाम पर शून्य रहने वाले लोगों पर यह उक्ति बिल्कुल सटीक बैठती है— "आपमियां फजीहत, दीगरां नसीहत।"

आज प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से ईमानदार व सत्यवादी होने की अपेक्षा तो रखता है, परंतु कभी अपने गिरहबान में झांककर नहीं देखता। सदाचार का उत्तरदायित्व दूसरे लोगों पर थोप देने की मंशा थोथे सपनों को जन्म देती है। *जिसका अंत अंततः निराशा व क्षोभ है।*

व्यवहार सबसे बड़ा उपदेश

व्यसनों व भोग-प्रवृत्तियों में लिप्त हमारे अभिभावक व अग्रज नयी पीढ़ी को ईमानदारी का क्या पाठ पढ़ाएंगे। क्या शराब-सिगरेट पीने वाला पिता अपने बच्चों से इन व्यसनों से दूर रहने को कहने का साहस कर सकता है और यदि कहने का साहस कर भी ले, तो उसके क्रियान्वयन की गुंजाइश कितनी होगी? अतएव बच्चों को उपदेशित करने का बेहतरीन तरीका यही है कि हम स्वयं वैसा कार्य करें, तो बच्चा खुद-ब-खुद सीख लेगा।

यह भी ध्यान रखें

- अग्नि शिखा नीचे को नहीं दौड़ती और पानी की धार ऊपर को नहीं जाती। जिसका जो व्यवहार है, वह उसे अवश्य करता है।
- सदाचार मनुष्य की रुचि से पैदा नहीं होता। उसे तो पैदा करती है उसकी धरती; जिस पर वह पैदा होता है। इसी धरती के गुण और स्वभाव के अनुसार हमारा स्वभाव निर्मित होता है।
- निष्काम कर्म करने वाला कभी दुखी नहीं होता।
- स्वाधीनता सद्गुणों को जगाती है और पराधीनता दुर्गुणों को।

अध्याय 10

स्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा में विश्वास करें

हर सफलता का रास्ता कांटों से भरा है। अवनति के रास्ते में कोई रुकावट, कोई बाधा नहीं है, किंतु उन्नति की मंजिल पर जब हम अपने कदम उठाते हैं, तो पहला कदम उठते ही हमारे ऊपर संकट आने प्रारंभ हो जाते हैं। जिसके मन में लगन है, अदम्य उत्साह है, वही इस पथ पर आगे बढ़ सकता है। जो आगे बढ़ गए हैं, वे अमर हो गए। इस मंजिल के कष्टों को, पीड़ाओं को, दुख-बाधाओं को जिसने पार कर लिया, उसे उसका मीठा फल भी मिलता है।

—श्री गोविंद

मौजूदा दौर में हर कोई रातों-रात सफलता के सिंहासन पर विराजमान होना चाहता है। मूल्यविहीन, गला काट प्रतियोगिता के रूप में आड़े-तिरछे रास्तों अथवा शार्टकट के जरिए सफलता अर्जित करने के मंसूबे बांधे रखने वाले लोगों को अंततः हताशा व नाकामयाबी का सामना करना पड़ता है। स्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा के जरिए ही हम स्थाई सफलता अथवा अपने लक्ष्य को अर्जित कर सकते हैं। व्यवहारकुशल व्यक्ति की प्रथम अवधारणा स्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा में विश्वास होनी चाहिए।

सफलता का सूर्योदय

सफलता और असफलता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जिस प्रकार सूर्योदय के बाद सूर्यास्त आना तय है, उसी प्रकार असफलता के पश्चात् सफलता मिलनी निश्चित है, परंतु यह तभी संभव है, जब व्यक्ति अपने कार्य की दिशा में पूरी ईमानदारी के साथ प्रयत्नशील हो और उसकी रुझान स्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा के प्रति हो।

वास्तव में मनुष्य की अन्तर्निहित शक्तियां अगाध हैं, जो आदमी को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने में सहयोगी सिद्ध हो सकती हैं। कोई भी व्यक्ति इन्हीं शक्तियों के बलबूते उन्नति एवं विकास का मार्ग प्रशस्त करता है। प्रत्येक मनुष्य में अंतर्निहित मानवीय, आत्मिक एवं मानसिक शक्तियों का प्रकाश पुंज बिखरा हुआ है। जो इस प्रकाश पुंज को पहचान लेता है, वह सफलता के शिखर को स्पर्श कर लेता है तथा जो इसे नहीं पहचान पाता, वह जीवन-भर असफलता का सामना करता है।

वास्तव में सफलता हमारे सतत् प्रयासों का प्रतिफल है। उधर हमारी जितनी भी कोशिशें हैं, उन सबके मूल में आत्म-प्रेरणा विद्यमान है, वहां अवसर या चांस जैसी बातें गौण हैं। चमत्कार अथवा मौकों की तलाश में रहने वाला व्यक्ति सफलता को अर्जित नहीं कर पाता।

जिस प्रकार आग की छोटी व पतली लौ पर्याप्त ऊष्मा उत्पन्न करने में नाकाम रहती है, उसी प्रकार बीमार इच्छाशक्ति के बल पर सफल होने के प्रयास व्यर्थ हैं।

संकल्पबद्ध रूप से ईमानदारी व सूझबूझ के साथ किया गया परिश्रम कभी व्यर्थ नहीं जाता । हमारे कार्य क्षेत्र से अधिक हमारा संकल्प मूल्यवान होता है। वस्तुतः सही सोच व उत्कृष्ट संकल्प ही हमें कामयाबी के मार्ग पर अग्रसर होने में मदद करते हैं।

उत्तरदायित्व का भी जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है। उत्तरदायित्व के बोध को समझने वाले व्यक्ति में अपनी गलतियों को स्वीकारने की क्षमता तथा उनसे सबक लेने का जज्बा होता है, जो व्यक्ति बिना यह विचार किए कि लोग उसके कार्य को स्वीकृति देंगे अथवा नहीं, अपने कार्य को संपन्न करने की चेष्टा में लगा रहता है, वह एक दिन सफल अवश्य होता है।

लक्ष्य निर्धारित कीजिए

कर्म एक तीर है, इसलिए यह जानना आवश्यक है कि हमें किस निशाने पर इसे मारना है। यदि तीर छोड़ भी दिया जाए और वह निशाने को बेध नहीं पाए तो समझिए अब तक किया गया सारा परिश्रम व्यर्थ गया। धनुष है, बाण हैं, हाथ हैं और परिश्रम करने की शक्ति है। परंतु यदि लक्ष्य ही नहीं है, तो बाण चलाना एक खेल से अधिक कुछ नहीं। बिना लक्ष्य का निर्धारण किए, किया गया सारा परिश्रम व्यर्थ हो जाता है।

यह आवश्यक है कि एक ही व्यवसाय अथवा लक्ष्य को निश्चित करके उस दिशा में परिश्रम किया जाए। संलग्नता के अभाव में कामयाबी का मिलना मुश्किल है।

अपने लक्ष्य से विचलित व्यक्ति का वजूद कुछ भी नहीं। जो व्यक्ति अपने व्यवसाय अथवा कार्य के प्रति सावधानीपूर्वक व्यवहार करता है, वह प्रतिभा संपन्न होता जाता है।

संग्राम में उसी सेनापति की विजय होती है, जिसका मंतव्य पहले से निर्धारित होता है। सेना भले ही कितनी भी विशाल क्यों न हो, एक समुचित कार्ययोजना के अभाव में वह विजय को प्राप्त नहीं होती। सेनापति स्वयं युद्ध नहीं करता, लेकिन बुद्धिमत्तापूर्वक बनाई गई योजना और उसी के अनुरूप किए गए कार्य सफलता व विजय के कारण बनते हैं।

नेपोलियन बोनापार्ट में अदम्य साहस और वीरत्व के अलावा उसकी एकाग्रता और लक्ष्य के प्रति स्पष्टता ही उसकी स्वर्णिम विजय का मूलाधार थी।

सफलता प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि मनुष्य अपने तन, मन और धन की समस्त ऊर्जा एक ही दिशा में व्यय करे।

अन्य प्रलोभनों की अवहेलना करके व्यक्ति जब एक ही लक्ष्य को जीवन संकल्प बनाकर कार्य करते हैं, तब उनकी संपूर्ण विजय होती है। उस कार्य के प्रति मन की समस्त शक्तियों को केंद्रित करने से उस कार्य की सिद्धि के लिए समस्त साधनों का ज्ञान हो जाता है।

कषायों से मुक्त होने पर ही जीवन आनंद की अनुभूति करता है। इसके लिए आवश्यक है कि आत्म-प्रवंचना से बचकर चित्त को निर्मल बनाया जाए। अपने मुख से अपनी स्तुति न गाओ, दान का प्रचार मत करो, बड़ों की कटु बात सुनकर भी मुंह मत बनाओ, किसी की भूल या गुप्त बात को मत फैलाओ और धर्म के प्रति शंका नकार शुद्ध भाव रखो। यदि ऐसा करोगे, तो मिथ्यात्व का नाश होगा और मन शांत व निराकुल होकर आनंद की अनुभूति करेगा।

—सुदर्शन

प्रत्येक स्वस्थ व सामान्य व्यक्ति स्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा का प्रतिभागी हो सकता है, परंतु बहुत कम लोग ऐसे हैं, जो इस क्षमता में वृद्धि करते हैं। इसका कारण स्पष्ट है कि किसी के कंधे का सहारा लेकर चलना कहीं अधिक आसान व सुलभ है बजाय स्वयं सहारा बनने के। समाज में अधिकांश लोग भीड़ बढ़ाने का काम करते हैं। कम ही लोग ऐसे होते हैं, जो भीड़ से ऊपर उठकर अपनी मौलिकता को कायम रखना चाहते हैं।

यह भी ध्यान रखें

- दुराग्रह से ग्रस्त चित्त वालों के लिए सुभाषित वचन व्यर्थ हो जाते हैं।
- अपने प्रयोजन के लिए तो शैतान भी धर्मग्रंथ उद्धृत कर सकता है।
- इस संसार में सबसे बड़ा जादू स्नेह है।
- विचार और कार्य की स्वतंत्रता ही जीवन, उन्नति और कुशल-क्षेम का एकमेव साधन है।

अध्याय 11

सकारात्मक दृष्टिकोण

जीवन को सुखी और प्रसन्न बनाने के लिए आवश्यक है कि हम समस्याओं पर अपने ही दृष्टिकोण से नहीं, बल्कि दूसरों के दृष्टिकोण से भी विचार करें। जो व्यक्ति हमसे सहमत नहीं हो पा रहा है, उसके स्थान पर हम अपने को रखें और देखें कि वह क्यों हमारी बात काट रहा है। हम उस समस्या को, उसके दृष्टिकोण से देखने का प्रयत्न करेंगे, तो उसका उत्तर पाने और उसे हल करने में देर न लगेगी और वह हल किसी के ऊपर थोपने जैसा नहीं लगेगा।

—समर बहादुर सिंह

सकारात्मक दृष्टिकोण का जीवन में बहुत बड़ा महत्त्व है। अनेक लोग समुचित प्रतिभा व योग्यता होने के बावजूद मात्र अपने संकुचित नजरिए के कारण उन्नति व सफलता प्राप्त नहीं करते। नकारात्मक दृष्टिकोण वाले लोगों को तो कोई पसंद ही नहीं करता। जीवन में व्यवहारकुशल व्यक्ति वही कहलाता है, जिसका दृष्टिकोण सकारात्मक व सोच स्वस्थ होती है।

मानसिक विकारों से बचें

मनुष्य का प्रत्येक कार्य, उसकी नैसर्गिक वृत्तियों की प्रेरणा से होता है। यही वृत्तियां उसकी भावनात्मक शक्तियों का भी कार्य करती हैं तथा मनुष्य के

अचेतन मन में किसी भी बात के लिए ऐसी धारा विकसित कर देती हैं, जिन्हें मनोविज्ञान की भाषा में मनोग्रंथि कहा जाता है। प्रायः सभी व्यक्तियों में सभी प्रकार की मनोग्रंथियां पाई जाती हैं। ये ग्रंथियां परस्पर प्रभावित करती हैं। उनकी यही प्रक्रिया बाद में हमारे व्यक्तित्व का एक अंग बन जाती है।

मनोविज्ञान के विशेषज्ञों ने समस्त प्रतिभाशाली व महान् व्यक्तियों में कुछ विशेष ग्रंथियों की बात स्वीकारी है। उनका मानना है कि इन्हीं मनोग्रंथियों के कारण ही वे अपने जीवन में अधिक सक्रिय तथा मौलिक बने। मनुष्य की मनोग्रंथियों पर उसके स्वभाव, शिक्षा-दीक्षा, परिवेश तथा पारिवारिक पृष्ठभूमि का गहरा असर होता है।

व्यक्ति की वास्तविक सुंदरता उसके शरीर में नहीं, अपितु उसके गुणों व कार्यों में निहित होती है। व्यक्ति की योग्यता व उपलब्धियों का आकलन उसकी मानसिकता को ध्यान में रखकर किया जाता है। इस कारण हमें मानसिक सोच में अभिवृद्धि की आवश्यकता है। सकारात्मक सोच को अपनाकर आप मानसिक असंतोष से छुटकारा पा सकते हैं। यह बदलाव आपको लोगों के साथ मधुर व बेहतर संबंध स्थापित करने की दिशा में महत्त्वपूर्ण योगदान देगा।

हंसमुख व जिंदा दिल लोग सभी के बीच लोकप्रिय होते हैं। अपने परिचितों, रिश्तेदारों तथा पड़ोसियों आदि के वस्त्र, सामान, उपहार व समृद्धि देखकर उनसे ईर्ष्या करने के बजाय अपने साधनों में संतोष करके एक ओर जहां अपार संतुष्टि का अनुभव करेंगे, वहीं दूसरी ओर अनावश्यक मानसिक तनाव से भी बचे रहेंगे। स्वयं को संकीर्णता के दायरे में रखना आपकी सोच को कुंठित कर देगा।

बहिर्मुखी और मिलनसार बनकर लोगों के बीच आप अपनी नई पहचान निर्मित कर सकते हैं। अपने व्यवहार में विनम्रता और सौजन्य को अंगीकार करके आप दूसरों के दिलों पर राज कर सकते हैं।

अपनी कमजोरियों एवं गुणों को पहचानिए। अपने व्यक्तित्व के सकारात्मक पहलुओं को और मजबूत करने की कोशिश कीजिए।

आपका बाहरी आकर्षण लोगों को क्षण भर के लिए सम्मोहित कर सकता है। परन्तु जब आप स्वयं को योग्य एवं गुणवान बना लेंगे, तो आपके

असुंदर या कम सुंदरता की ओर किसी का भी ध्यान नहीं जाएगा। अपने मन में इस बात को बैठा लें कि जीवन में शारीरिक सौंदर्य ही सब कुछ नहीं। स्वस्थ व सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाकर आप सफलता व लोकप्रियता, दोनों को अर्जित कर सकते हैं।

अहंकार से बचिए

अहंकारी अथवा घमंडी व्यक्ति को न केवल समाज वरन् उसका अपना परिवार तथा यार-दोस्त तक पसंद नहीं करते। आप कितने भी प्रतिभाशाली और योग्य क्यों न हों, यदि आप घमंडी हैं, तो लोग आपको पसंद नहीं करेंगे। घमंडी व्यक्ति से व्यवहार कुशलता की उम्मीद करना बेमायने है।

अपने समस्त मनोभावों व विचारों पर नियंत्रण की क्षमता का विकास कीजिए। आपका जीवन सचमुच आपका अपना जीवन होना चाहिए, जिसे आपने पसंद किया है। मार्शल फील्ड ने आनंद व सफलतापूर्वक जीवन के बारह सूत्र बताए हैं, उन्हें सदैव स्मरण रखिए। ये सूत्र निम्न हैं :

1. समय का मूल्य, 2. निरंतरता की सफलता, 3. परिश्रम का सुख, 4. सरलता का वैभव, 5. चरित्र की गरिमा, 6. उदारता का बल, 7. उदाहरण का प्रभाव, 8. कर्तव्य परायणता का दायित्व, 9. मितव्ययिता की बुद्धिमानी, 10. धैर्य का गौरव, 11. प्रतिभा का विकास तथा, 12. मौलिकता का आनंद।

अहंकार के दोषों को निरूपित करते हुए समर्थ गुरु रामदास ने क्या खूब कहा है, "जिसने अहंभाव की मक्खी खा ली, उसको ज्ञानरूपी भोजन में रुचि कैसे होगी? जिसके मन में अहंभाव नष्ट नहीं होगा, उसको ज्ञानरूपी अन्न नहीं पचेगा।"

हमें चाहिए कि हम अपने स्वभाव, परिवेश, साधनों आदि को वास्तविक रूप में मालूम करने व स्वीकारने का प्रयत्न करें। उसके बाद हम यह विचार करें कि इन परिस्थितियों में रहते हुए हम किस प्रकार से अपनी प्रगति एवं विकास कर सकते हैं।

हम अपने थोथे व मिथ्या अहंकार का उन्मूलन करके देखें, हमारा अन्तःकरण समाज के अन्तःकरण का पूरक बन जाएगा। सबके साथ एकता का अनुभव करके देखें, हमारा अकेलापन समाप्त हो जाएगा।

यूनान देश के अतिका ग्राम में आत्विक विपयादिस नाम का एक व्यक्ति रहता था। वह कई कारखानों, बंगलों और अकूत धन-संपत्ति का स्वामी था। वह जहां कहीं भी अवसर पाता, अपने वैभव का बखान करने से नहीं चूकता। एक दिन इसी प्रकार वह प्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात के समक्ष अपने वैभव का वर्णन करने लगा। सुकरात काफी देर तक उसकी बातें सुनने के बाद बोले, "सेठ जी, मुझे यूनान देश के नक्शे की बाबत आपसे कुछ जानकारी लेनी है।"

यह कहते हुए सुकरात ने देश का नक्शा उस धनपति के सामने रख दिया तथा पूछा, "कृपया मुझे बताइए कि इस नक्शे में आपकी जायदाद कहां है?" नक्शे में आटिका ग्राम ढूंढा गया। गांव छोटा होने के कारण वह नक्शे में सुई की नोंक के बराबर अंकित था। धनपति ने गांव तो बता दिया, किंतु अपनी जायदाद को उसमें न दिखा सका। सुकरात ने चिंतनपूर्ण मुद्रा में कहा, "महोदय ! संपूर्ण भूमंडल पर यूनान एक छोटा-सा देश है। उसमें आपका छोटा-सा ग्राम ही बड़ी कठिनाई से दिखाई दे रहा है, पर जमीन जायदाद और कारखाने तो कहीं नजर ही नहीं आ रहे हैं... अब आप ही बताएं कि जिस जमीन-जायदाद और वैभव का बखानकर आप अभिमान से फूले नहीं समा रहे हैं, उसका क्या महत्त्व है?" यह सुनते ही उस धनपति का गर्व काफूर हो गया।

यह भी ध्यान रखें

- हम चाहे जितना पाएं, कम ही लगता है।
  कुछ ऐसी रखी है तकरीब स्वभावों में।"
- इस संसार में सबसे बड़ा जादूगर स्नेह है। व्याधि के प्रतिकार की प्रधान औषधि प्रणय है। नहीं तो हृदय की व्याधि को कौन शांत कर सकता है।

अध्याय 12

सहयोग की भावना

विश्व एक गुंबद के समान है, जहां से अपनी ही आवाज गूंज कर लौट आती है। यह वह शीशा है, जिसमें हमें अपनी ही छाया दिखाई देती है। यदि हम हंसते हैं, तो वह भी हंसता है। यदि हम रोते हैं, तो वह भी रोता है। एक बार इस सृष्टि के सौंदर्य को अपने हृदय में भरकर देखो, आपकी आत्मा उस सौंदर्य के उल्लास से भर जाएगी।

—स्वेट मार्डेन

जिंदगी का अर्थ दूसरों के लिए जीना तथा उन पर कुछ हद तक निर्भर रहना है। सहयोग की भावना को विकसित करके ही हम व्यवहार कुशल इनसान कहला सकते हैं। एक के मौके पर जब आप उसकी मदद करने को तैयार रहते हैं, तभी जरूरत पड़ने पर वह भी आपके सहयोग के लिए आगे आ सकता है। यही प्रकृति का नियम है, यही सफलतम जीवन का सूत्र है।

किसी के हो जाइए

सिर्फ मैं और मेरे की तुच्छ भावना के साथ जीवन का संपूर्ण आनंद अनुभव नहीं किया जा सकता। अपने लिए समस्त कार्य तो पशु-पक्षी भी करते हैं, फिर उनमें और मनुष्य में क्या अंतर है? यदि हमारे मन में दूसरे लोगों के लिए सहयोग, स्नेह व प्रेम का जज्बा होगा, तभी एक सुंदर, संतुलित व

सभ्य समाज की संरचना करना संभव है, अन्यथा एक दूसरे से संघर्ष व अन्य दुष्कृत्यों में संलिप्त रहकर ही मानव अपना स्वर्णिम जीवन व्यर्थ गंवा देता है। जन सामान्य में एक सूक्ति बेहद लोकप्रिय है— "या तो किसी के हो जाइए, अथवा किसी को अपना बना लीजिए।" इस वाक्य के मूल में परस्पर सम्मान, प्यार व सहयोग की भावना ही निहित है।

मनोवैज्ञानिकों ने गहरे शोधों के बाद यह निष्कर्ष दिया है कि मनुष्य में एक मनोग्रंथि 'अहंमन्यता' की होती है। इस मनोग्रंथि के कारण मनुष्य अपने बारे में बहुत बढ़ा–चढ़ाकर सोचता है। वह प्रतिष्ठा के लिए काम करता है और जीता है तथा दूसरों पर अपना प्रभुत्व जमाने के लिए कुछ भी करने से नहीं हिचकता।

वैसा व्यक्ति बहुधा दूसरों को अपमानित करता है तथा अकारण ही और लोगों को तंग करने या सताने के उपाय खोजता रहता है। विशेषकर उन लोगों को, जिनसे उसका निकट का संबंध है। मनुष्य इस अवस्था में अपने सहयोगियों एवं साथियों के साथ भाईचारे का संबंध नहीं रख पाता। अपने परिवार तथा कार्यक्षेत्र, दोनों ही स्थानों पर वह सत्ता जमाने का यत्न करता है, फलस्वरूप वह शीघ्र ही अपने आस-पास के लोगों का प्रेम तथा सहयोग गवां बैठता है। वह व्यक्ति दूसरों से आज्ञाकारिता और आदर की अपेक्षा करता है, जबकि वह स्वयं दूसरों के प्रति ऐसा नहीं करता।

सहयोग की भावना का विस्तार आपको आर्थिक रूप से सफल और अधिक कार्यकुशल बनाता है।

अहंमन्यता की मनोग्रंथि

जो व्यक्ति डांटता-फटकारता है, आंखें लाल-पीली करता है और क्रोध की अधिकता में स्वयं को भूल जाता है, वह इस बात से अनभिज्ञ होता है कि वह अहंमन्यता की मनोग्रंथि का शिकार है। इस मनोग्रंथि से ग्रस्त व्यक्ति के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

जो लोग इस मनोग्रंथि की चपेट में हैं, उन्हें चाहिए कि वे अपने जीवन में कुछ बदलाव लाएं। परिवर्तन का पक्ष ऐसा होना चाहिए कि व्यक्ति स्वकेंद्रित न रहकर दूसरों के बारे में सोचे। वह अपनी मानसिकता में इन विचारों को प्राथमिकता दे कि वह किसी परिवार अथवा जाति का एक सदस्य है।

यह ठीक बात है कि सयाने आदमी के होश सदा सलामत रहते हैं और वह यह गुंजाइश भी नहीं छोड़ता कि उसके तर्जेअमल पर किसी और की हुकूमत चले।

अच्छी तरह व्यवहार निभाइए

प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि वह दूसरों के साथ अच्छी तरह निभाने की अपनी क्षमता का विकास करे। चूंकि मनुष्य स्वभावतः एक सामाजिक प्राणी है, अतएव एकदम से अकेले रहकर तो किसी की भी गुजर नहीं हो सकती। हमें यथासंभव दूसरों की मदद के लिए आगे आना चाहिए। यानी कि सारी कामयाबियों का एक हा रहस्य है कि हमें अपने चारों तरफ होने वाली घटनाओं के प्रति चौकस रहना चाहिए। आदमी को चाहिए कि अपने पास-पड़ोस में खुद को अच्छे ढंग से ताल-मेल बिठाकर रहे। वक्त की नजाकत को समझकर अपने दोस्तों, परिचितों से वही बात कहिए, जो वह सुनना चाहते हैं।

यह भी ध्यान रखें

- स्वभाव से ही सबकी उत्पत्ति होती है, स्वभाव से ही अहंकार तथा यह सारा जगत प्रकट हुआ है।
- पृथ्वी पर तीन ही रत्न हैं— जल, अन्न और सुभाषिता। मूर्ख लोग ही पाषाण खंडों को रत्न का नाम देते हैं।
- अधिक धन संपन्न होने पर भी जो असंतुष्ट रहता है, वह सदा निर्धन है। धन से रहित होने पर भी जो संतुष्ट है, वही धनी है।

अध्याय 13

क्रोध व झल्लाहट आपके शत्रु

क्रोध एक चारित्रिक दोष है। जितनी देर तक हम पर क्रोध रहता है, उतनी देर तक हम वह व्यक्ति नहीं होते, जो हम रहते हैं। बल्कि हम उस समय ऐसे-ऐसे काम कर डालते हैं, जिन्हें सामान्य हालत में हम बुरा समझते हैं। क्रोध में लिए गए निर्णय हमारे तथा दूसरों के लिए हानिकारक होते हैं। क्रोध में हम बेरहम हो जाते हैं तथा अकसर अपनी या दूसरों की हानि कर डालते हैं। जितनी देर तक हम क्रोध में होते हैं, उतनी देर तक हम सामाजिक लाभों से भी वंचित रहते हैं।

—एम.आर. बाथम

क्रोधित होना मानवीय स्वभाव का एक अंग है। इस दुनिया में संभवतः ही कोई ऐसा आदमी हो, जो कभी न कभी व किसी न किसी कारण को लेकर क्रोधित नहीं हुआ हो। लेकिन कुछ लोग ऐसे होते हैं, क्रोध जिनका स्वभाव बन जाता है। बात-बात में सर्प की भांति फुफकार उठने तथा झल्लाहट को अपनी आदत बना लेने वाले लोग नहीं जानते कि उन्होंने अपने व्यक्तित्व में एक ऐसा शत्रु पैदा कर लिया है, जो सफलता के मार्ग में उनकी राह का रोड़ा साबित होगा।

क्रोध व्यक्तित्व का दुर्बल पक्ष

धर्म के दस लक्षणों में क्रोध को सर्वत्र त्यागने की चीज माना गया है। क्रोध मनुष्य के व्यक्तित्व का सर्वाधिक दुर्बल पक्ष है। क्रोधी व्यक्ति को कोई घर–परिवार, कार्यस्थल अथवा समाज, कोई भी और कभी भी पसंद नहीं करता। अपने तमाम गुणों के बावजूद बात-बात पर क्रोध से फुफकार उठने वाले व्यक्ति लोगों की नापसंदगी का कारण बनते हैं।

सामान्यतः देखने में यह आता है कि जब हम झुकने को तैयार नहीं होते, तो क्रोधित हो जाते हैं। हम अन्य लोगों पर क्रोध इसलिए करते हैं, क्योंकि हमें उनसे डर लगता है अथवा हम सोचते हैं कि उन्होंने हमारा तिरस्कार किया है। हमारे क्रोधित होने की वजहें, असंगत बातें, गलत व्यक्ति या गलत कारण हैं।

यहां यह समझ लेना जरूरी है कि क्रोध में सदैव गड़बड़ी होती है और वास्तविक कारण लुप्त हो जाता है। क्रोधी स्वभाव, किसी कार्य में विघ्न का कारण बनता है। यह हमें कार्यकुशलता से दूर ले जाता है तथा जो चीजें हमारी सहायक हो सकती थीं, वही हमारी विरोधी बन जाती हैं।

समुद्र की प्रकृति शांत व गंभीर है। परन्तु उसमें भी लहरें उठती हैं, ज्वार-भाटा भी आता है। शांतिप्रियता मानव का नैसर्गिक गुण है, परन्तु कभी-कभी वे विभावों में भी गमन करता है। उसके मनमंथन में उत्तेजना की लहरें भी उठती हैं। संस्कारों व प्रवृत्तियों का गहन सागर जब बाह्य विचार रूपी ढेलों के प्रहार से उत्प्रेरित होता है, तब क्रोधादि वृत्तियों का जन्म होता है।

मनोवैज्ञानिकों ने मानवीय व्यवहार का गहन अध्ययन करके उसकी दस वृत्तियों को सूचीबद्ध किया है। उन्हीं दस वृत्तियों में क्रोध भी एक है। समस्त मनुष्यों में क्रोध का थोड़ा अथवा ज्यादा पुट होता है। किसी मनुष्य में क्रोध पत्थर पर खिंची लकीर सरीखा होता है, तो कुछ में जल पर अंकित रेखा के समान।

क्रोध के प्रकार

ऐसा नहीं है कि क्रोध केवल मनुष्य ही करता है। पशु-पक्षियों व प्रकृति में भी क्रोध स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। अतिवृष्टि, ओलावृष्टि,

भू-स्खलन, भूकंप, ज्वालामुखी आदि प्राकृतिक क्रोध की अभिव्यक्तियां हैं। मनुष्य जब क्रोधित होता है, तो न सिर्फ स्वयं अपितु अपने समूचे परिवेश को प्रभावित करता है।

प्रीति, विनय और विवेक के अभाव में व्यक्ति के सद्गुण भी विसर्जित हो जाते हैं। भटकाव की यही मनःस्थिति क्रोध को आमंत्रित करती है। स्थानांग सूत्र में दो प्रकार के क्रोध की व्याख्या की गई है : 1. आत्म प्रतिष्ठित, 2. पर प्रतिष्ठित।

आत्मप्रतिष्ठित क्रोध वह है, जो बहुधा अपनी ही भूलों अथवा त्रुटियों से पैदा होता है, जबकि परप्रतिष्ठित क्रोध से अभिप्राय किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा प्रदत्त क्रोध से है। सरसरी नज़र से देखें, तो क्रोध एक ही है, परन्तु उत्पत्ति के दृष्टिकोण से इसे दो धाराओं में विभाजित किया गया है। आध्यात्म की अवधारणा है कि क्रोध मोहनीय कर्म का उदय भाव है। ज्यों-ज्यों मोहनीय कर्म का क्षय होता जाएगा, त्यों-त्यों क्रोध के आवेग का क्षरण होगा।

क्रोध की उत्पत्ति के विषय में आयुर्वेद का मंतव्य है कि शरीर में जब पित्त की अधिकता हो जाती है, तो उससे उत्पन्न गर्मी क्रोध का कारण बनती है। चिकित्सकों का मानना है कि व्यक्ति में किसी न किसी हारमोंस की कमी के कारण 'एड्रीनल ग्लैण्ड' का अधिक स्राव होने से क्रोध उत्पन्न होता है। विटामिन 'सी' की कमी से भी झल्लाहट व चिड़चिड़ापन पैदा होता है। कई लोग अस्वस्थ होने या लंबे समय तक बीमार रहने के कारण भी क्रोधित व चिड़चिड़े स्वभाव के हो जाते हैं।

मनोवैज्ञानिकों की राय है कि अपशब्द या अनर्गल वार्त्तालाप भी कई बार क्रोध को जन्म देते हैं। जो हम सुनना चाहते हैं, उसके विपरीत तीखी भाषा में कही गई बात भी क्रोध व द्वेष को बढ़ाती है। वर्तमान दौर में मानवीय मूल्यों का तेजी से क्षरण होता जा रहा है। व्यक्ति में स्वार्थ की भावना बढ़ती जा रही है। अनेक मर्तबा यह देखा गया है कि जब हम अपनी स्वार्थपूर्ति में किसी प्रकार की बाधा देखते हैं, तो क्रुद्ध हो जाते हैं।

प्रत्येक मनुष्य में स्वाभाविक रूप से अहंकार की भावना होती है। अभिमान का दरिया निरंतर बहता रहता है। जिस प्रकार दरिया में कोई भी चीज गिरने से उसका पानी चंचल हो जाता है, उसी प्रकार जब कोई हमारे अहंकार की नस को स्पर्श कर देता है, तो मन की चंचलता क्रोध में

परिवर्तित हो जाती है। दूसरे शब्दों में, कहा जा सकता है कि क्रोध ही अहंकार की जड़ है।

परस्पर वार्त्तालाप में जब विचारों के मध्य साम्यता नहीं होती, तब भी क्रोध की उत्पत्ति हो जाती है। इस दुनिया में प्रत्येक व्यक्ति अपने मौलिक विचार, मन, मस्तिष्क के साथ जन्म लेता है। यही वजह है कि एक ही मां-बाप, घर-परिवार, स्थान व माहौल के बाद भी जितने भाई-बहन होते हैं, उनकी मानसिक प्रवृत्तियां भिन्न-भिन्न होती हैं। रुचियों में विविधता तथा वैचारिक भेद भी बहुधा संघर्ष तथा क्रोध का कारण बनते हैं। इससे इतर विकास का मार्ग है कि मतभेद भले हों, पर उनसे मन भेद न उत्पन्न होने पाए।

सभी अनर्थों का हेतु

क्रोध की तुलना भयंकर विष से की जाती है। क्रोध की अधिकता व्यक्ति के विवेक को विलुप्त कर देती है। यही कारण है कि क्रोधांध स्त्री-पुरुष बुरे से बुरा कार्य करने से भी पीछे नहीं हटते। इस संसार के अनेक अनिष्ट क्रोध की अधिकता के कारण ही हुए हैं।

क्रोध समझदारी को बाहर निकालकर बुद्धि के द्वार पर अहंकार व उन्माद की चटखनी लगा देता है। नीति वाक्यामृत में कहा गया है कि 'गर्म होना सभी कार्यों की सिद्धि में प्रथम विघ्न है। क्रोध के आवेग में व्यक्ति का रक्तदाब तीव्र हो जाता है। उसके शरीर के कोमल अवयवों को बेहद क्षति पहुंचती है। कई बार सूक्ष्म तंतु अथवा महीन नसें जल भी जाती हैं। यह सब हमें ऊपरी तौर पर घटित होता प्रतीत नहीं होता, लेकिन शरीर के भीतर हम कितनी ही मूल्यवान धरोहरों को क्रोध के अग्निकुंड में स्वाहा कर देते हैं।

मनोवैज्ञानिक इस बात को साबित कर चुके हैं कि व्यक्ति अपने अनुभव से नहीं अपितु अपनी आदतों से जीता है। अनुभव की पूरी प्रक्रिया से गुजरने के बाद जब मुक्ति मिल जाती है, तो वह प्रभाव है और जब मुक्ति न मिले, तो वह स्वभाव है। हम अपने स्वभाव से उबर नहीं पाते, बल्कि उसे दोहराए चले जाते हैं। यही बात क्रोध पर भी लागू होती है। बेहद सूक्ष्म-से उपायों से हम इस पर-प्रवृत्ति को यदि समाप्त नहीं भी कर पाएं, तो इस पर नियंत्रण अवश्य स्थापित कर सकते हैं। उपाय इस प्रकार हैं :

- जब भी हमें आभास हो कि हमें क्रोध आ रहा है, हम एक गिलास ठंडा पानी पी लें। कुछ क्षण रुकें और फिर सहज भाव से अपनी बात कहनी शुरू करें।
- क्रोध आने से पूर्व मस्तिष्क हमें उसका हलका-सा आभास कराता है। हम उस आभास को अनुभव करते ही सतर्क हो जाएं और अपने दिमाग को हिदायत दें, कि हमें क्रोधित नहीं होना है।
- कई बार दूसरे लोगों का वार्त्तालाप अथवा कार्य व्यवहार, हमें पसंद नहीं आता और हम क्रुद्ध हो उठते हैं। उन पर क्रोधित होने के बजाय हम हलके-से मुस्कराएं और उनकी नादानी के प्रति मन में सहिष्णुता का भाव लाएं और यही समझें कि जिसमें जैसी बुद्धि होती है, वह वैसा ही कार्य करता है।
- आपको जब भी क्रोध का आभास हो, शांत व मौन रहने का प्रयास करें। क्रोध आने को हो, तो 99 से एक तक उल्टी गिनती-गिनना शुरू कर दें, फिर अपनी बात कहें।
- क्रोध के समय अपनी मनपसंद खाने की चीज अथवा पत्र-पत्रिका या टी.वी. देखना शुरू कर दें। बाद में संबंधित व्यक्ति को धीरे से तथा संयत भाव से बता दें कि आपको क्या पसंद नहीं है।
- ध्यान रखें, क्रोध के कारण आप कभी भी लाभदायक परिणाम तक नहीं पहुंच सकते हैं।

यह भी ध्यान रखें

- सत्व, रज और तम। ये तीन मानसिक गुण हैं। इन गुणों का एक अवस्था में रहना मानसिक स्वस्थता का लक्षण है।
- इस संसार में किसी प्रेम करने वाले हृदय को खो देना सबसे बड़ी हानि है।
- हमें जितना अधिकार अपनी बात कहने का है, दूसरे को भी अपनी बात कहने का उतना ही अधिकार है।

अध्याय 14

दोस्त अवश्य बनाइए

सत्य तो यह है कि मित्र होने के लिए स्वभाव, जीवन, लक्ष्य और व्यवहार में समानता आवश्यक है। इन लक्षणों के अभाव में कोई शत्रु का मित्र हो अथवा शत्रु का शत्रु, कुछ भी अंतर नहीं पड़ता।

—गुरुदत्त

यदि आप व्यवहार कुशल एवं सफल बनना चाहते हैं, तो आप में दोस्त बनाने की कला होनी जरूरी है। सच्चे मित्र जीवन के अमूल्य निधि होते हैं। जीवन में ऐसे अनेक अवसर आते हैं, जब हम अपने दिल की बात किसी खास व्यक्ति को ही बताना चाहते हैं, तब मित्र ही आगे आते हैं और वे ही हमारे सच्चे सहयोगी साबित होते हैं। एक लोकोक्ति है कि 'अच्छे दोस्तों का मिलना दूभर है।' इसी सूत्र को ध्यान में रखते हुए अच्छे मित्र ही बनाएं।

सच्ची मित्रता किसी वरदान से कम नहीं

हैलेन रोलैंड, जो पश्चिम का एक विचारक है, अपने जीवन के अनुभवों का वर्णन करते हुए लिखा है कि हम जब किसी विवाद में पड़ जाते हैं, तो उसको सुलझाने के लिए वकील अथवा पुलिस को बड़ी से बड़ी रकम सहर्ष प्रदान कर देते हैं। परन्तु अपने प्रतिवादी के साथ ग्रंथिबंधन के लिए पादरी

को मामूली-सी रकम देने में अकसर आनाकानी करते हैं। यह बात समस्त देश, काल तथा परिवेश में लगभग फिट बैठती है।

साधारणतया हम इस प्रकार के व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं, जहां विवाद का रास्ता अपनाकर हम बड़ी से बड़ी हानि सहने को तत्पर रहते हैं, लेकिन थोड़े से सहिष्णु होकर सद्भावना पूर्वक जीवन जीना हमें मंजूर नहीं।

जिंदगी उदाहरणों से भरी पड़ी है, जहां अपनों के लिए प्यार तथा दूसरों के लिए नफरत का सैलाब स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। सहिष्णुता का भाव हमारे व्यक्तित्व में सद्भावना एवं मैत्री का संचार करता है, जबकि असहिष्णु होकर हम विवाद के बीज रोपते हैं तथा शत्रुता का सौदा करते हैं।

हम समाज के प्रत्येक व्यक्ति के साथ मित्रता का भाव रखें, ऐसा करना कठिन है। फिर भी जरा कल्पना करके देखिए, समाज कितना सुंदर, स्वस्थ तथा टिकाऊ होगा। जिस परिवेश में चहुंओर प्रेम व स्नेह की सुबास होगी, चहुंओर सहयोग व अपनत्व के फूल ही फूल खिले होंगे, हर तरफ माधुर्य होगा। प्रत्येक क्षण में किसी के लिए कर गुजरने का जज़्बा होगा और प्रेम के प्राथमिक नियम के अनुसार दूसरों को कुछ देने की भावना होगी।

द्वेष व दंभ के आधार पर खड़ी की गई संघर्ष की इमारत को ढेर होने में वक्त नहीं लगता, जबकि प्यार व स्नेह का पौधा सदैव पुष्पित–पल्लवित होता है।

सच्चा हमराज

हमें जीवन के समस्त क्षेत्रों में एक सच्चे व अच्छे हमराज की जरूरत महसूस होती है। हम चाहते हैं कि कोई हमारा अपना हो, जिससे हम अपने मन की बातें बता सकें। यह तभी संभव है जब एक अच्छा दोस्त हमें मिले। एक ऐसा मित्र जिसका हृदय उदार होता है, जो हर समय आपके सहयोग को तत्पर हो, जो पग–पग पर आपका मूक सहयोगी हो।

प्रसिद्ध विचारक एन्ड्रू एम. ग्रीले के शब्दों में इस तरह से भी कहा जा सकता है, "प्रेम तथा गुण ग्राहकता चाहे वैवाहिक जीवन में हों, चाहे वैवाहिक जीवन के बाहर, मित्रता पर अवलम्बित हैं।"

वस्तुतः मित्रता एक भरोसा है। यह अवधारणा की वह अवस्था है, जब आप खुद को किसी और के वास्ते लाभप्रद होने की अनुमति प्रदान करते हैं। जब वह व्यक्ति हमसे 'हमें' मांगता है, तो हम जबाव में 'खुद' को उसे देने को राजी हो जाते हैं।

स्मरण कीजिए किसी ऐसे क्षण को, जब आपके किसी खास ने आपको किसी मौके पर पुकारा हो, तब आप जैसे भी, जहां भी थे, उसके साथ हो लिए थे। यही स्वयं को किसी दूसरे के लिए संपूर्ण भाव से उपस्थित कर देना है, उपलब्ध करा देना है।

मित्रता की विकास प्रक्रिया यह है कि वह धीरे-धीरे बढ़ती है। इसको थोक में निर्मित नहीं किया जा सकता। मित्रता रूपी पौधे के लिए सौम्यता, सूझ-बूझ, बुद्धिमानी, सौजन्यता तथा दूरदर्शिता रूपी खाद-पानी की आवश्यकता होती है। इसमें धैर्य का स्थान सर्वोपरि है। धैर्य का पालन-पोषण समान शौकों, मूल्यों तथा उत्तरदायित्व के गर्भ में होता है।

जहां सच्ची मित्रता है, वहां प्रतिस्पर्द्धा गौण हो जाती है। सही मायनों में जो सच्चे दोस्त होते हैं, वे एक दूजे की सफलताओं और उपलब्धियों पर प्रसन्न होते हैं। मित्रता सदैव विकास करने की सामर्थ से युक्त होती है। वास्तव में मित्रता अथवा प्रेम, दो व्यक्तियों का एक ही दिशा में देखना है। मित्रता विनोद प्रधान होती है। इसके फलस्वरूप हम तनाव से मुक्त होते हैं तथा बाधाओं को दूर धकेलने में कामयाब होते हैं।

लोकप्रियता के रहस्य

प्रत्येक व्यक्ति जो कामयाब होना चाहता है, लोकप्रिय भी होना चाहता है। वास्तव में जो व्यक्ति लोकप्रिय नहीं होता, उसका जीवन किसी भार से कम नहीं। यदि उसकी कुछ क्रियाओं को छोड़ दें, तो उसके जीवन में और किसी पशु के जीवन में, मूलभूत रूप से ज्यादा अंतर देखने को नहीं मिलता। प्रत्येक व्यक्ति लोकप्रिय हो सकता है, बशर्ते, वह कुछ छोटी-छोटी बातों का ख्याल रखे जो निम्न हैं :

- लोगों को यह महसूस कराएं कि आप उन्हें चाहते हैं।
- वार्त्तालाप के दौरान सिर्फ अपनी ही मत हांकिए।

- उस व्यवहार को अमल में लाइए, जो आपको अच्छा लगता है।
- जब भी कोई व्यक्ति आपके लिए भेंट अथवा उपहार लाए, उसकी प्रशंसा अवश्य कीजिए। भले ही आप किसी और तरह के उपहार की उम्मीद लगाए बैठे थे।
- हार होने पर भी मनोबल ऊंचा रखिए, जीतने पर और भी विनम्र हो जाइए।
- अपनी खामियों को खुले दिल से स्वीकार कीजिए।
- किसी के प्रति मन में मलाल मत रखिए।
- जहां तक संभव हो, सत्य ही बोलिए।
- पीठ पीछे प्रशंसा तथा मुंह के सामने सही सलाह हमेशा याद की जाती है।
- दूसरों की दिक्कतों व परेशानियों के समय उपहास उड़ाने का प्रयत्न मत कीजिए।
- दूसरे लोगों के विचार नम्रता से सुनिए, भले ही वे बेढंगे क्यों न हों।
- बड़प्पन के अहंभाव से स्वयं को उबारने का प्रयत्न कीजिए।
- आत्मसम्मान को खोए बिना, लड़ाई टालने का यत्न कीजिए।
- उन उपायों, विकल्पों का चयन कीजिए, जिनसे दूसरे लोग भी स्वयं को महत्त्वपूर्ण अनुभव करना सीखें।
- अपने पूर्वग्रहों के कारण किसी को भी अपने समुदाय से अलग करने का प्रयत्न मत कीजिए।
- अपनी बुरी आदतों की सूची बनाकर उन्हें क्रमशः दूर करने का प्रयत्न कीजिए।
- अपनी कुंठाओं और संशयों को सृजनात्मक ढंग से हल कीजिए। भरसक यह प्रयास कीजिए कि वे आपकी मित्रता की राह में रोड़ा न बनने पाएं।
- दूसरों के प्रति आदर व सम्मान की भावना का विकास कीजिए।

यह भी ध्यान रखें

- सामंजस्य एक कला है, उसकी साधना बेहद कठिन है। दो व्यक्ति साथ में रहें और परस्पर सामंजस्य करें, यह मानसिक शक्ति का सूत्र है। किंतु रुचि भेद, विचार भेद तथा कार्य प्रणाली का भेद होने पर सामंजस्य की कड़ी टूट जाती है। वे लोग सचमुच कलाकार होते हैं, जो भेद की स्थिति में भी अभेद का सूत्र खोज लेते हैं और सामंजस्य को कायम रखते हैं।
- हम अपने ही रहन–सहन को ऊंचा नहीं करें, बल्कि दूसरों के रहन–सहन के ऊंचे होने में भी सहायक बनें। दूसरों के साथ प्रेम व्यवहार से उनके हीन भावों को दूर करने का प्रयत्न करें।
- मित्रता की संधियां तो राज्यों के प्रमुखों से आती हैं, किन्तु उनका पालन करने की इच्छा तो लोगों के दिलों से आनी चाहिए।

अध्याय 15

चिड़चिड़ेपन को छोड़िए

मानव स्वभाव है कि वह अपने सुख को विस्तृत करना चाहता है और वह केवल अपने सुखों से सुखी नहीं होता, कभी-कभी दूसरों को दुखी करके, अपमानित करके वह अपने मान तथा सुख को प्रतिष्ठित करता है।

—जय शंकर प्रसाद

चिड़चिड़े व तुनक मिजाज स्वभाव के लोग किसी के प्रिय नहीं होते। जबकि मिलनसार सरल तथा हंसमुख लोगों से हरेक व्यक्ति निकटता स्थापित करना चाहता है। यह जीवन इतना बेसुरा व बेस्वाद नहीं है कि हम इसे सामान्य मनोविकारों के होम में आहुति कर दें।

खुश तथा प्रसन्नचित रहिए

जीवन में हमें सर्वथा भिन्न विचार-व्यवहार के लोगों के साथ रहना पड़ता है। इन व्यक्तियों में कुछ उदास प्रकृति के होते हैं, कुछ अश्लील तो कुछ का स्वभाव कठोर होता है। कुछ लोग पलायनवादी होते हैं, कुछ रंग में भंग करने वाले, जबकि कुछ लोग बड़े ही सामाजिक होते हैं। हमारा भी अपना एक मौलिक चरित्र होता है, जो कुछ लोगों को आकर्षित करता है तो कुछ को विकर्षित। अनेक लोगों का व्यवहार या आदतें जब हमारी पसंद के मुताबिक नहीं होतीं, तो हम उनसे बात-बात में बिदककर या चिड़चिड़ेमन

से बात करते हैं। यहां तक कि कई बार हम भड़क उठते हैं और बात बढ़कर स्थिति मरने-मारने तक पहुंच जाती है।

जीवन के विविध सोपानों पर जब हमारी वास्तेदारी ईर्ष्यालु, घमंडी और बेढंगे लोगों से पड़ती है, तो उनके प्रति उपजी घृणा के भावों का हमारे मनः मस्तिष्क पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। फलस्वरूप हमारे स्नायु तनावग्रस्त तथा रुग्ण हो जाते हैं।

यदि हम प्रत्येक बात पर चीखने-चिल्लाने लगें, तो शीघ्र ही अकेले पड़ जाएंगे। क्योंकि हर कोई शांति चाहता है और दूसरे के पास इसलिए जाता है कि उसके निकट बैठकर अपना दुःख-दर्द बांटकर कुछ सकून पा सके।

अगर हम सफलता अर्जित करना चाहते हैं, तो हमें अपने व्यक्तित्त्व में दूसरों के साथ अच्छे व्यवहार का शऊर विकसित करना होगा। जिस पद के लिए आप योग्य हैं, उस तक पहुंचने के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और आवश्यक तत्त्व यह है कि आपके अंदर लोगों के साथ मिलकर चलने की क्षमता होनी चाहिए।

समाज में लोगों के साथ उचित ढंग से व्यवहार करने पर योग्यता व अनुभव के अनुसार धन व मान-सम्मान दोनों मिलेंगे। यही नहीं, यदि बेहतरीन जॉब को अंजाम देने के लिए लोग आपका भरोसा करते हैं, तो वे आपको मुंह मांगी रकम देने को सहर्ष तैयार हो जाएंगे।

खुश मिजाज बनें

जहां तक संभव हो खुश रहिए। मुस्कराने की आदत डालिए। मुस्कराहट में बड़ा जादू है। डेल कारनेगी का कहना है कि मुस्कराहट पर खर्च कुछ भी नहीं आता, परन्तु यह पैदा बहुत करती है। यह एक क्षण में पैदा होती है और इसकी स्मृति कभी-कभी सदा के लिए बनी रहती है।

हीन भावना से बचिए

स्वयं को हीन महसूस करना, सामाजिक प्रगति के सर्वथा प्रतिकूल है। लगभग सभी लोगों में थोड़ी बहुत हीनता की मनोग्रंथि पाई जाती है। हीन भावना से ग्रस्त व्यक्ति कमजोर तथा चिड़चिड़ा हो जाता है। वह हमेशा

इसी ऊहापोह में रहता है कि लोग क्या कहेंगे? वह जीवन की वास्तविकताओं से आंखें चार करने का दम नहीं रखता और वह समस्याओं से दूर भागने का यत्न करता रहता है। नयी चुनौतियों तथा कार्यों के अनुकूल व्यवहार में कठिनाई अनुभव करने के कारण ऐसा व्यक्ति, असफलता की खाई में जा गिरता है। ऐसे व्यक्ति की आदतें निम्न प्रकार हो जाती हैं—

- हीनता का विचार रखने वाले लोग आत्म-प्रशंसी होते हैं।
- इस तरह के लोग असामान्य होने का प्रदर्शन करते हैं।
- वे जोर-जोर से बोलकर दूसरे लोगों को प्रभावित करने का यत्न करते हैं।
- ऐसे व्यक्ति किसी की सफलता देख ही नहीं सकते हैं।
- हीन भावना से ग्रस्त व्यक्ति विकल्प के अभाव में बदला लेने की सोचते हैं।
- परिहास की स्थिति में वे एकदम क्रोधित हो उठते हैं।
- हीन भावना से ग्रस्त लोग अपने वार्त्तालाप में ऐसी बातों को प्रमुखता देते हैं, जो लगने वाली हों।
- ऐसे लोग वास्तविक उपलब्धियों में विश्वास नहीं रखते, उन्हें प्रशंसा व खुशामद अधिक सुखकर लगते हैं।
- ऐसे लोगों को जब सुझाव दिए जाते हैं, तब प्रथमतः तो वे उन्हें सुनने को ही राजी नहीं होते, दूसरे, यदि सुन भी लेते हैं, तो उन पर अमल नहीं करते।
- हीनता बोध वाले लोग जमीन की ओर आंखें नीचे किए चलते हैं।
- वे अकसर अपनी समस्याओं का रोना दूसरे लोगों के सामने रोते रहते हैं तथा रोजाना राय लेने दूसरों के पास जाते हैं।

हम यदि बारीकी से अपना मनोवैज्ञानिक अध्ययन करें, तो पाएंगे कि कभी-कभी हम दूसरों को सताकर सुख का अनुभव करते हैं। यानी हम कमजोर लोगों पर हावी होकर अपना खौफ़ कायम करना चाहते हैं। समर्थ लोगों के सम्मुख चुप्पी साधे रहने से, जो मानसिक पीड़ा हम झेल रहे होते हैं, उसे उसी रूप में दूसरों को पीड़ित करने में हमें सुख का अनुभव होता है। जैसे

दफ्तरों में बड़े साहब से डांट खाकर आने वाला कर्मी अपने पद से नीचे काम कर रहे कर्मियों को डांटता है या पति द्वारा पीटी गई पत्नी बच्चों पर पिल पड़ती है।

सभी लोगों की यह स्वभावगत विशेषता होती है कि वे स्वयं को महत्त्वपूर्ण बताने का प्रयत्न करने लगते हैं। इस क्रिया में अपनी रुचि के अनुसार धन का बखान करने, पारिवारिक यशोगान करने, ऊंचे पद वाले रिश्तेदार का दृष्टांत देने या स्वयं को निर्दिष्ट लोगों की श्रेणी में रखने जैसा प्रलाप करते देखे जाते हैं। इस बारे में मनोवैज्ञानिकों की यही राय होती है कि ऐसे लोग हलके व ओछी मानसिकता के होते हैं। साथ ही हमें हर हालत में हीनता को भी अपने अंदर पनपने नहीं देना चाहिए।

यह भी ध्यान रखें

- लोकहित भव्यतम प्रेरणा है।
- हीनता हिंसा से भी हीन है।
- प्रशंसा की ठंडी आग वज्र को भी पिघला देती है।
- हीनता के बजाय सद्गुणों का विकास करें।
- स्वयं को दूसरों के लिए प्रेरणा-श्रोत के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहिए।

अध्याय 16

अपने दुखों का रोना बंद कीजिए

जिसे हम सुख कहते हैं, अगर वह भी तीव्रता से पूरी तरह हम पर लद जाए, तो हम लद जाएंगे, जबकि दुख इतनी बुरी तरह नहीं तोड़ता है। वह इसलिए कि, एक तो हम बचपन से दुख के आदी हो जाते हैं और दूसरे, दुख से बचने के लिए हम हमेशा सुख की आशा बनाए रहते हैं और दुख को किसी तरह से झेल लेते हैं।

—ओशो

इस दुनिया में ऐसे लोग बहुत कम हैं, जिनका दुखों से कभी न कभी वास्ता न पड़ा हो। कुछ दुख ऐसे होते हैं, जिन पर हमारा कोई नियंत्रण नहीं होता। जबकि कुछ दुख हमारे अपने कृत्यों द्वारा निर्मित होते हैं। वैसे यह बात भी सच है कि दिल की बात कह देने से मन हलका हो जाता है, परन्तु जब इसे अपनी रोजमर्रा की जिंदगी अथवा आदतों का एक हिस्सा बना लिया जाता है, तो वही लोग कतराने लगते हैं। अतः बेहतर यही होगा कि व्यक्तित्व में चार चांद लगाने के लिए इस आदत से बचें।

सुख के पुष्प चुनिए

मानसिक संवेग हमारे जीवन की दशा व दिशा को निर्धारित करने में *महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। हमारे अधिकांश सुखों व दुखों का कारण भी* यही मानसिक संवेग ही है, जो लोग लोक-व्यवहार के दौरान अपने

मानसिक संवेगों को नियंत्रित नहीं कर पाते, वे समाज, परिवार तथा कार्यक्षेत्र में उपहास अथवा निंदा का पात्र बन जाते हैं।

मानसिक संवेगों की बाबत डॉ. जोसेफ कौलिंस का यह दृष्टिकोण कि संवेगों का पोषण न करने से हम रूखे, कठोर तथा अपरिवर्तनीय बन जाते हैं। उनको दबाने से हम नीरस, सुधारात्मक एवं दूसरों से स्वयं को पवित्र समझने लगते हैं। हमारे मानसिक संवेग प्रोत्साहन देने पर हमारे जीवन को सुखमय बनाते हैं तथा दबाने पर विषमय तथा दुखमय।

दरअसल मानसिक संवेग बुरे नहीं होते, वरन् उनके परिणाम बुरे हो सकते हैं। संवेगों पर आपका नियंत्रण आपको सुख के पुष्प चुनने का अवसर देता है, जबकि अनियंत्रित संवेग हानिप्रद तथा व्यवहारकुशलता के बिल्कुल विपरीत तत्व साबित होते हैं। संवेग काफी हद तक हमारी इच्छा-अनिच्छा पर भी निर्भर करते हैं। स्वामी रामसुख दास का कहना है कि 'मनुष्य के सामने दो ही विकल्प हैं, या तो वह अपनी सभी कामनाएं पूरी कर ले अथवा उनका त्याग कर दे। वह कामनाओं को तो पूरी कर नहीं सकता, फिर उनको छोड़ने में किस बात का भय? जो हम कर सकते हैं, उसको तो करते नहीं और जो हम नहीं कर सकते, उसको करना चाहते हैं, इसी प्रमाद से हम दुख पा रहे हैं।

दैनिक जीवन में हमें अनेक प्रिय तथा अप्रिय अनुभूतियों से दो-चार होना पड़ता है। यदि हम इन छोटी-छोटी पेचीदगियों को इकट्ठा करने में जुटे रहें, तो हम जल्द ही उनके बोझ तले इतने दब जाएंगे कि सफलता के मार्ग पर चलने की बजाय हम उस बोझ के गट्ठर को ढोते हुए धीरे-धीरे खिसकेंगे। इस प्रकार के कटु अनुभवों, अप्रिय संस्मरणों तथा मन को दुखी करने वाले विचारों को हमें तत्काल भूलने की जरूरत है।

भूलने की आदत विकसित करें

हमें जीवन में अपनी अनेक गलतियों, असफलताओं तथा पिछले अनुभवों से बड़ी सीख मिलती है। अतः नयी एवं पुरानी स्मृतियों को छांटना बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस समाज में ऐसे मुट्ठीभर लोग ही होते हैं, जो अपने जीवन की अप्रिय घटनाओं को भूलते जाते हैं और सिर्फ अच्छी, सुखमय तथा आनंदप्रद घटनाएं ही याद रखते हैं। सफलता का यह प्रामाणिक सूत्र

है कि हम अपने अतीत की गलतियों, मूर्खताओं तथा आपत्तियों को भूलते जाएं। जबकि मोटे तौर पर होता यह है कि हम अपने बीते समय के कड़वे अनुभवों को समय-समय पर याद करके अपने मस्तिष्क को तनावग्रस्त करते रहते हैं।

हमें यह मनहूस आशंका हर वक्त अखरती रहती है कि अभी न जाने कितने और कष्ट हमें झेलने होंगे। अतः इस धारणा से हमें मुक्त होना ही पड़ेगा, अन्यथा गलत धारणा घर कर लेने से विकास की प्रक्रिया अवरुद्ध हो जाती है।

धनोपार्जन ही सुख का आधार नहीं

समाज में बहुत से लोगों की अवधारणा है कि भौतिक सुख-संपदा तथा अकूत धनसंपत्ति ही सुखी जीवन का मूलाधार है, लेकिन उनकी अवधारणा बिल्कुल गलत है। यदि मात्र इनसे सुख आता होता, तो अमीरों के घरों में इतने फसाद, कलह, अशांति कभी न होती। फिर भी जरूरत के मुताबिक धन का होना नितांत जरूरी है, लेकिन जब हम इसे ही सर्वसुलभ साधन मान लेते हैं, तो वहीं से व्यक्ति में गरूर उत्पन्न होता है, जो सुख-चैन में बाधा पहुंचाता है।

दूसरी ओर गलत धन या मार्गों का अनुसरण भर हमारे दुखों में वृद्धि का एक प्रमुख कारण है। अपार धनराशि का स्वामी होने से ही मनुष्य सुखी नहीं होता वरन् व्यक्तिगत कुशलता में क्रमशः विकास करने पर ही उसे सुखानुभूति होती है।

एक प्राचीन किंवदन्ती है कि धन अच्छा सेवक है, परन्तु खराब स्वामी भी है। धनी होने पर हम खुद को सुरक्षित समझते हैं, यानी हम अपनी तथा अपने आश्रितों की इच्छाएं-आवश्यकताएं पूर्ण कर सकते हैं। स्पष्ट है कि कुशलता तथा कार्यों की सिद्धि हेतु धन एक आवश्यक वस्तु है। परन्तु यदि हम धन के अधीन हो जाएं, तो हमारी हालत इस तरह की होगी जो सिर्फ सोते-जागते धन के इर्द-गिर्द ही सिमट जाएगा, इससे स्तर के बारे में वह सोच भी नहीं सकता।

सिकंदर से जब पूछा गया कि तुम धन एकत्र क्यों नहीं करते? तब उसका जवाब था कि इस डर से कि उसका रक्षक बनकर कहीं भ्रष्ट न हो जाऊं।

हरि अग्रवाल ने अपनी पुस्तक 'पैसा रोग की जड़' में धन को निरूपित करते हुए लिखा है कि, "धन एक ऐसा पदार्थ है, जो मानव को मानव से पृथक कर देता है तथा परस्पर दुराव (भेद भाव) की भावना उत्पन्न कर देता है। मानव धन के नशे में इस तरह मतवाला हो जाता है कि वह परमात्मा की रची हुई सृष्टि को भी हेय दृष्टि से देखने लगता है। वास्तव में मानव और मानवता का मापदण्ड धन नहीं, मानव की योग्यता है। धन से मनुष्य तो खरीदा जा सकता है, परन्तु उसकी मनुष्यता नहीं।"

"बेन्जामिन फ्रेंकलिन कहा करते थे, "अभी तक धन ने किसी को सुखी नहीं बनाया और न बना पाएगा। सुख उत्पन्न करना इसकी प्रकृति में नहीं है। जिस मनुष्य के पास धन अधिक होता है, वह और अधिक की कामना करता है।"

पंचतंत्र की मान्यता है कि इस पर विश्वास रखिए, बहुत अधिक धन के साथ-साथ जो मुसीबतें आती हैं, उनकी अपेक्षा थोड़े धन के साथ ईश्वर का भय होना कहीं अच्छा है।

हमारा सत् कार्य, हमारा आत्मिक विकास ही एक मात्र महान् मित्र है, जो मरणोपरांत भी हमारे साथ रहता है।

यह भी ध्यान रखें

- दुख तो जीवन का सबसे बड़ा रस है। जिसे जीवन में दुख नहीं मिला, उसे सुख की अनुभूति ही क्या होगी? जो स्वयं दुख का अनुभव करता है, वही दूसरे के दुख को बेहतर ढंग से पहचान व समझ सकता है।
- दुख तो मानने का है। मानो तो दुख का अंत नहीं और मानो तो मौत भी सुखदायी है।
- दुख सभी को होता है, पर दुख को दुख मानकर, जो उसे सहने की शक्ति रखते हैं, उनके लिए दुख भी सुख हो जाता है।

अध्याय 17

सम्मानजनक कार्यों को प्राथमिकता दें

दूसरों को हम पर हंसने का मौका तब आता है, जब हम अपनी आंखों में हलके हो जाएं। सुधारक और अग्रगामी व्यक्ति संसार में मूर्खों द्वारा सदा लांछित हुए हैं, पर वे अपनी आंखों में हलके नहीं हुए।

—कन्हैया लाल मिश्र 'प्रभाकर'

मनुष्य अपने जीवन में धन, पद, प्रतिष्ठा इसलिए अर्जित करता है, ताकि समाज में उसको सम्मान मिले, उसकी एक शाख हो। व्यवहारकुशलता के साथ सफलता के मार्ग पर उपलब्धियों के फूल ही उगें, चहुंओर व्यक्तित्व विशेषता की सुरभि फैले। इसके लिए हमें जीवन में उन कार्यों को प्राथमिकता देनी होगी, जो सम्मानजनक कार्यों की श्रेणी में आते हैं।

बिन इज्जत सब सून

हम स्वस्थ सुंदर शरीर के मालिक हों, हमारे घर की तिजोरियों में धन, आभूषणों के अंबार लगे हों, हमारे पास अपार भू-संपदा हो, परंतु फिर भी हम बेहद निर्धन हैं, यदि हमारे पास सम्मान का वैभव नहीं है, इज्जत की दौलत नहीं है, यानी बिन इज्जत सब सून।

हमारा विवेक बहुधा जिंदगी के संग्राम से जूझने की बजाय पलायन के मार्ग का अनुसरण करता है। जीवन की जटिलताओं व चुनौतियों से टक्कर लेने की बजाय उससे दूर भाग जाना अधिक सुगम प्रतीत होता है। जिंदगी की मुश्किलों से मुंह बचाकर भागने वाले लोग मारे-मारे फिरते हैं।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि "अहं आदर्श" ही व्यक्ति के समस्त विचारों का केन्द्र बिन्दु है। शायर इकबाल ने इस विचार को बड़े ही सुंदर ढंग से अपने इस शेर में कहने का प्रयास किया है कि–

खुदी को कर बुलंद इतना,
कि हर तदबीर से पहले।
खुदा बंदे से खुद पूछे,
बता, तेरी रज़ा क्या है?

आप एक इनसान हैं और इस इनसानियत को जिंदा रखने के लिए सम्मान व आदरपूर्वक जीने का सपना जीवित रखें। ईसा मसीह कहा करते थे, "अपने पड़ोसी को अपने जितना सम्मान दो।"

अपने अंदर की ठोस बुनियाद पर आत्मसम्मान का आधार बनाना चाहिए। साथ ही स्पष्ट तौर पर यह जान लेना आवश्यक है कि आत्मसम्मान ही अन्य सद्गुणों का आधार है। इसी के गर्भ में चारित्रिक उत्थान तथा उन्नति के सोपान छिपे हैं।

अपनी इज्जत आप कीजिए

जब कोई पुरुष अथवा स्त्री, स्वयं अपनी इज्जत करे तो यकीन मानिए, स्वाभाविक रूप से उसमें इतनी अच्छाइयां मौजूद हैं, जो दूसरों में नहीं होंगी। जबकि वे लोग जिनमें आत्मसम्मान की कोई भावना नहीं है, उन्हें नेक व्यवहार करने या एक ईमानदार, सच्ची और खरी जिंदगी बिताने के लिए कोई प्रेरणा नहीं होगी। आत्मसम्मान से ही नीयत बनती है और बिना सही नीयत के, कोई सही काम नहीं हो सकता। कहा भी गया है – 'जैसी नीयत, वैसी बरकत।'

समाज में यदि नजर घुमाकर देखें, तो अधिकांश लोग हमें निरुद्देश्य जीते नजर आएंगे। उनके जीवन में मान-अपमान का कोई स्थान नहीं। आप

उनकी कितनी भी इज्जत उतारते रहें, वे खींसे निपोरते रहते हैं। यही स्थिति उन्हें सम्मान देते वक्त भी होती है।

समाज में असम्मानजनक स्थिति में रह रहे व्यक्ति नदी में बहने वाले तिनके की तरह लुढ़कते चले जाते हैं। लोग स्वाभिमान विहीन होते हैं। जरा-सी भी कठिनाई आने पर, वे लाचारी महसूस करने लगते हैं।

सुप्रसिद्ध दार्शनिक आरेलियस कहा करते थे, "अपने जीवन को पहाड की तरह सम्मान जनक बनाइए, ताकि लोग देख सकें और जान सकें कि सचमुच यहां एक इनसान रहता है, जो अपने स्वभाव व पसंद के मुताबिक जीता है।

हठीलेपन से बचिए

हठीलेपन को आत्मसम्मान से जोड़ना भारी गलती है। जो व्यक्ति जीवन में कामयाबी के लिए कोशिशों में जुटा है, उसे फैसलों और विवेक का हरदम उपयोग करना चाहिए।

नेपोलियन के विषय में कहा गया है कि उसने गलती से कोई विजय प्राप्त नहीं की, मैदान में जीतने के पहले वह प्रत्येक लड़ाई अपने दिमाग में जीत लेता था। चीजों की कल्पना यथार्थवादी ढंग से करने की कोशिश कीजिए ताकि आदर्शवादी ढंग से वस्तुओं, घटनाओं और परिस्थितियों के बारे में उस रूप में विचार कीजिए, जिसमें वे हैं।

समाज में उपलब्ध चरित्रों को समझने और उनके बारे में फैसले करने की बुद्धि आप में होनी चाहिए, वर्ना आप बड़ी गलतियां कर सकते हैं। किसी भी चीज को स्वीकार करने से पहले उसे देखिए, उस पर गौर कीजिए और उसका मूल्यांकन कीजिए। हठ-धर्मिता व्यक्तित्व के सकारात्मक गुणों को दबाने का काम करती है। अपनी बात को बिना भय व आक्रोश के कहने की आदत विकसित कीजिए, परन्तु एक ही बात को 'लकीर के फकीर' की भांति बार-बार करते रहने से सामने वाला खीझ महसूस करता है। इससे हो सकता है, आपका बना-बनाया काम बिगड़ जाए।

अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'गुनाहों का देवता' में धर्मवीर भारती लिखते हैं – "मनुष्य का स्वभाव होता है कि जब वह दूसरे पर दया करता है, तो वह चाहता है कि याचक पूरी तरह विनम्र होकर उसे स्वीकार करे। अगर

याचक दान लेने में कहीं भी स्वाभिमान दिखाता है, तो आदमी अपनी दयावृत्ति और दयाभाव भूलकर नृशंसता से इसके स्वाभिमान को कुचलने में व्यस्त हो जाता है।"

यह भी ध्यान रखें

- रूप-लावण्य प्राकृतिक गुण है, जिनमें कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। स्वभाव एक उपार्जित गुण है, उसमें शिक्षा और सत्संग से सुधार हो सकता है।
- मनुष्य अपने धर्म का पालन अवश्य करे, लेकिन दूसरों को अपमानित करके नहीं। दूसरों को अपमानित करने से वह दूसरों से सम्मान का अधिकारी नहीं रह जाता।
- न कोई किसी का मित्र होता है और न कोई किसी का शत्रु होता है। स्वार्थवश ही मित्र और शत्रु हो जाते हैं।

अध्याय 18

सामाजिक कार्यों के लिए समय निकालें

हमें समाज के लिए अपने को सदा समर्पित रखना चाहिए। इसी से हम व्यवहार को अमली जामा पहना सकेंगे। समाज और पास-पड़ोस से कट कर कुएं के मेढक की तरह स्थिति बन जाएगी, जो आपकी उन्नति में बाधक होगी। आप समाज से जितना जुड़ेंगे, उसके लिए कार्य करेंगे, उतने ही लोकप्रिय होंगे। यही लोकप्रियता आपके उत्साह को कई गुना बढ़ाएगी। हमेशा याद रखें कि समाज आपका है। आपकी उसको जरूरत है। आप स्वयं को केवल अपने लिए नहीं, बल्कि समाज के लिए बनाएं।

आज आपाधापी का दौर है। हर कोई अपने आप में, अपनी जरूरतों तथा समस्याओं में इस कदर परेशान है कि उसे दीन-दुनिया की परवाह एक बोझिल व उबाऊ काम प्रतीत होती है। अपने घर-परिवार या मित्र, परिचितों के लिए तो हम सुविधाजनक रूप से समय निकाल लेते हैं, लेकिन सामाजिक कार्यों के लिए हम बहाने बनाने में लग जाते हैं। यदि आप चाहते हैं कि समाज में आप लोकप्रिय व्यक्ति कहलाएं, तो सामाजिक कार्यों को भी पूरी जिम्मेदारी व दिलचस्पी के साथ करें।

समाज से गहन सरोकार

समाज में हमें यदि अपनी पहचान कायम करनी है तथा सफलता के शिखर पर अपनी कर्म पताका फहरानी है, तो समाज से कटकर नहीं रहा जा सकता। समाज के प्रति हमारी गहरी संवेदनाएं तथा उत्तर दायित्वों का बोध ही हमें एक जिम्मेदार तथा कुशल नागरिक बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति स्व. जान एफ. कैनेडी कहा करते थे कि मेरे देश वासियो! यह मत पूछो कि तुम्हारा समाज तथा देश तुम्हारे लिए क्या कर सकता है, पूछो कि तुम अपने देश के लिए क्या कर सकते हो?

जिम्मेदार तथा बुद्धिमान व्यक्ति अपने योगदान पर ध्यान देता है। वह लक्ष्य की ओर देखता है। कभी जब मन स्थिर हो तथा चित्त शांत हो, तब स्वयं से सवाल कीजिए कि आप अपने परिवार, दफ्तर अथवा संस्था या समाज के लिए क्या कर सकते हैं। क्या खाना, पीना, सोना तथा जीवन गुजार देना ही आपका उद्देश्य है। यदि हां, तो ये सब तो पशु-पक्षी भी करते हैं। फिर आप में तथा उनमें क्या अंतर है?

बहुत से व्यक्ति, जिनके मन में समाज के प्रति सेवाभाव है, वे संकोच अथवा 'लोग कुछ कहेंगे तो नहीं' की भावना के चलते आगे आने से कतराते हैं। जबकि जरूरत सिर्फ पहल करने की है। मुंबई नगर निगम के उपायुक्त जी आर. खैरनार ने जब महाराष्ट्र सरकार के विरुद्ध अपना मोर्चा खोला, तो लोग उन्हें सहयोग देने में सकपकाए, लेकिन एक वक्त ऐसा आया, जब पूरे महाराष्ट्र ने उन्हें हीरो की तरह मानकर न सिर्फ उनका स्वागत किया, बल्कि उन्हें हर तरह का सहयोग भी दिया।

जार्ज बर्नार्ड शा ने कहा है, "मनुष्य लड़खड़ाकर गिर-गिरकर तथा इस प्रकार हंसी का पात्र बनकर ही स्केटिंग करना सीखता है।" कहने का आशय यह है कि असफलता से निराश होने के बजाय सबक लेकर हमें निरंतर लक्ष्य हासिल करने के लिए उद्यत रहना चाहिए।

सैमुअल स्माइल्स एक प्रख्यात विचारक तथा लेखक हुए हैं। उनकी अनेक पुस्तकों ने पिछले सौ वर्षों में दुनिया के अनेक लोगों का मार्ग दर्शन किया है। उन्होंने एक जगह लिखा है कि— यह सही है कि उत्तम उद्देश्यों के लिए कार्य करते हुए उत्तम लोग भी असफल हो सकते हैं, परन्तु इन उत्तम

लोगों ने भी असफल होने के लिए प्रयत्न नहीं किया था और न ही उन्होंने अपनी असफलता को उचित बताया। इसके विपरीत, उन्होंने सफल होने के लिए प्रयत्न किया था तथा अपनी असफलता को अपना दुर्भाग्य माना।

स्पष्ट है कि किसी भी श्रेष्ठ उद्देश्य के लिए असफल होना सम्मान की बात है, जबकि किसी बुरे कृत्य में सफल होना असम्मानपूर्ण है।

फैसलों में लेट-लतीफी ठीक नहीं

आप जब भी कोई कार्य शुरू करें, तो उस समय उसमें उत्पन्न होने वाले अवरोधों की कल्पनाएं करने में समय नष्ट न करें। यदि विषैले कीड़े (बर्र) से बचना है, तो पहले उसके डंक को मसल डालो। कठिनाइयों पर बार-बार विचार करने से कठिनाइयों का भूत कुछ ऐसा दीर्घकाय तथा प्रबल प्रतीत होने लगता है कि अंततः उस कार्य से वंचित रह जाना पड़ता है।

स्वामी विवेकानंद कहा करते थे कि अनिर्णय की स्थिति मृत्यु से भी बुरी है। जो भी करना है, बोधपूर्ण तरीके से करो। निर्णयों में देरी आपके लिए असफलताएं लाएंगी।

इस समाज में अनेक काम ऐसे हैं, जो संभवतः आपकी बाट जोह रहे हैं। अशिक्षा, गरीबी, बीमारी तथा अपराध जैसे भयंकर विषयों के उन्मूलन के लिए आप से जो भी बन पड़ता है, करें। मसलन, साल में कम से कम दस वृक्ष लगाने का संकल्प करें। सामाजिक संस्थाएं जो वास्तव में कुछ कर गुजरने का जज्बा रखती हैं, के सदस्य बनें। लोगों को रचनात्मकता के प्रति सचेत करें तथा मानसिक विकास हेतु विविध आयोजनों में हाथ बटाएं इत्यादि।

यह भी ध्यान रखें

- जो कुछ न्याय संगत है, उसे कहने के लिए सभी समय उपयुक्त होता है।
- जीव प्रतिदिन मृत्यु के मुंह में जा रहे हैं, परन्तु बचे हुए लोग जीवित रहना चाहते हैं, इससे बढ़कर आश्चर्य और क्या हो सकता है?
- दुख बंटता है, तो हलका हो जाता है और सुख बंटता है, तो दोगुना हो जाता है।

अध्याय 19

हिंसक तथा विध्वंसक गतिविधियों से परहेज करें

मानवीय जीवन पारस्परिक आदान-प्रदान के सिद्धांत पर टिका हुआ है और जो लोग यह सोचते हैं, अपने चारों तरफ की दुनिया को शिकार बनाना है, वे अनायास ही विनाश के दलदल में अपने को फंसा लेते हैं और इस प्रकार समृद्धि के मार्ग से दूर होते चले जाते हैं।

—जेम्स एलन

सभ्य, स्वस्थ, सफल व शिष्ट समाज में हिंसा समस्त दुखों व आपदाओं की जननी है। अपने स्वार्थ अथवा मंशाओं की पूर्ति के लिए अहिंसा का रास्ता छोड़कर हिंसा को प्रोत्साहन देना उचित नहीं। जो लोग अपने जीवन के परम सुख तथा असीम आनंद को अनुभव करने की इच्छा रखते हैं, उनके लिए हिंसा का विचार करना ही विष जैसा है।

मारधाड़ क्यों?

तेजी से बढ़ती जरूरतें तथा उनकी प्रतिपूर्ति हेतु तमाम उचित-अनुचित साधनों को अमल में लाए जाने के कारण आज समाज में हिंसा का ग्राफ बढ़ रहा है। एक समय में पेशेवर बदमाश ही हिंसक गतिविधियों में संलिप्त रहते थे, परन्तु आज समाज का शिक्षित व सभ्य तबका भी हिंसक

गतिवधियों में परोक्ष अथवा प्रत्यक्षरूप से जुड़ा हुआ है। चाहे वह राजनीतिज्ञ हों, डॉक्टर, वकील या ऐसे ही किसी सभ्य पेशे से संबंधित व्यक्ति।

स्कूल-कालेजों में जहां, सरस्वती के ज्ञान की गंगा बहा करती थी, वहां आज रक्तपात व मारधाड़ की घटनाएं होनी आम हो गई हैं। इस दुनिया में 80 प्रतिशत लोग प्रेम करते हैं, परन्तु हिंसा का प्रतिफलन इतनी बहुतायत में क्यों है? इसके पीछे अनेक कारण विद्यमान हैं। हिंसक गतिविधियों के द्वारा आज तक संसार की कोई भी समस्या सुलझाई नहीं जा सकी है। परस्पर बातचीत व सौहार्द के माध्यम से ही जटिल से जटिल समस्याओं पर काबू किया जा सकता है।

आक्रामक प्रवृत्ति

मौजूदा दौर में वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति के कारण समाज में बदलाव हो रहा है। इन्हीं बदलावों के परिणामस्वरूप मानवीय स्वभाव व व्यवहार भी काफी हद तक प्रभावित हो रहे हैं। अलगाव, आक्रोश, हिंसा, आतंक आदि प्रवृत्तियों में तेजी से होता इजाफा इसका प्रतीक है। युवा वर्ग में इसका व्यापक प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। इसके विषय में मनोवैज्ञानिकों का मत है कि आक्रामकता की प्रवृत्ति के कारण मनुष्य ऐसा करता है। यह वह विध्वंसकारी प्रवृत्ति है, जिसमें एक व्यक्ति दूसरे को चोट पहुंचाना चाहता है। ऐसा करके उसके कुंठित मन को संतोष प्राप्त होता है।

पिछले दो दशकों में आक्रामकता से परिपूर्ण इस व्यवहार को विविध दृष्टिकोणों से समझने के लिए अनेक अध्ययन किए गए हैं। वर्तमान समय में आक्रामकता का व्यवहार बेहद प्रचलन में है। यद्यपि समस्त आक्रामक व्यवहारों में तीव्र हिंसा निहित नहीं होती, तथापि ऐसा वर्ताव समस्त व्यक्ति अपने जीवन काल में यदा-कदा दोहराते रहते हैं।

आक्रामक व्यवहार की पृष्ठभूमि में शारीरिक अथवा मानसिक पीड़ा पहुंचाने की भावना होती है। शारीरिक रूप से पीड़ा पहुंचाना, सक्रिय आक्रामकता की श्रेणी में आता है। उधर जब हम किसी व्यक्ति की सामान्य दिनचर्या में अनावश्यक अवरोध पैदा करके अथवा अप्रिय सूचनाओं को प्रेषित करके तनाव, दबाव व कुंठा प्रदान करते हैं, तो वह निष्क्रिय आक्रामकता कहलाती है।

आज हर क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा का बोलबाला है। सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन की गति ने व्यक्ति को तनावग्रस्त कर दिया है। शार्ट-कट से ऊपर जाने अथवा कम समय में 'बहुत सारा' पा लेने की बीमार महत्त्वाकांक्षा ने असतुष्टि को जन्म दिया है। जब मनचाही वस्तु इच्छित समय पर प्राप्त नहीं हो पाती या उसकी प्राप्ति के मार्ग में कोई रुकावट आती प्रतीत होती है, तो व्यक्ति की कुंठाएं और भी बढ़ जाती हैं। आज के युवा वर्ग के अत्यधिक कुंठित होने की यह सबसे बड़ी वजह है। वे इस बात की समीक्षा करने को कतई राजी नहीं होते कि महत्त्वाकांक्षा के अनुरूप उनकी योग्यता है भी या नहीं।

कुंठा के कुप्रभाव

अनेक मामलों में यह देखा जा रहा है कि उच्च शिक्षित होने तथा योग्यता रखने के बावजूद युवाओं को उचित रोजगार नहीं मिलता है।

बहुत से युवक-युवतियों को जब अपनी पसंद मुताबिक रोजगार नहीं मिलता, पारिवारिक एवं सामाजिक संरचना उन्हें उपेक्षा प्रदान करती है, तब यहीं से उनके अंदर आक्रामक प्रवृत्ति के अंकुर फूटने लगते हैं।

अनेक अध्ययनों के उपरांत मनोवैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि जिन व्यक्तियों में प्रतिस्पर्धा की भावना अधिक होती है, वे हमेशा जल्दबाजी में रहते हैं। उन्हें समय की कमी हमेशा खटकती रहती है। अनेक लोग इस सब के चलते उच्च रक्तचाप के शिकार हो जाते हैं तथा कई मौकों पर वे आक्रामक रवैये का इजहार करते हैं।

फिल्मों व टी. वी. पर प्रदर्शित कार्यक्रमों में हिंसक मामलों का महिमा मंडन तथा माफियाओं के वैभवपूर्ण जीवन का चित्रण अपरिपक्व व अल्प विकसित सोच वाले युवाओं को आकर्षित करता है।

समाज में आज अनेक व्यसन 'स्टेटस सिंबल' के रूप में प्रचलित हैं। शराब, धूम्रपान व मांसाहार भी व्यक्ति की आक्रामकता में वृद्धि करने वाले तत्व हैं। अधिकांश युवाओं की इनमें संलिप्तता भी हिंसक गतिविधियों में इजाफे की मुख्य वजह है।

हिंसा में लिप्त व्यक्ति कानून के शिकंजे से बच नहीं सकता, देर या सबेर उसे सींखचों के पीछे जाना ही है। एक बार अपराधी का ठप्पा लग जाने

या अपराध की दुनिया में नाम शामिल करा लेने वाले लोगों से कोई भी व्यक्ति नाता रिश्ता नहीं रखना चाहता।

उन्हें काम देना या नौकरी देना तो दूर, ऐसे लोगों के जीवन में प्रेम के फूल नहीं खिलते, सफलताओं का सूर्योदय नहीं होता।

जीवन में कामयाबी का स्वप्न देखने वाले लोगों को हिंसक गतिविधियों को कभी भी, कहीं भी अपने जीवन में प्रवेश की अनुमति नहीं देनी चाहिए।

यह भी ध्यान रखें

- निरपराधी की हत्या करना भयंकर कुकृत्य है।
- प्रत्येक छोटे से छोटा प्राणी या जीव मानव की दया का अधिकारी है।
- परमात्मा प्रेम का भूखा है, प्रार्थना का नहीं।
- जरा-सी कटुता का एक बीज अवचेतन मन में पहुंचकर कभी-कभी भयंकर रूप धारण कर लेता है।

अध्याय 20

औरों के काम आइए

प्रेम, सहानुभूति, सम्मान, मधुर वचन, सामूहिक हित, त्याग भावना आदि से हर किसी को सदा के लिए आप अपना बना सकते हो। तुम्हारा ऐसा व्यवहार होगा, तो लोग तुम्हारे लिए बड़े से बड़े त्याग के लिए तैयार हो जाएंगे। तुम्हारी लोकप्रियता मौखिक नहीं रहेगी। लोगों के हृदय में बड़ा मधुर और प्रिय स्थान तुम्हारे लिए सुरक्षित हो जाएगा। तुम भी सुखी हो जाओगे और तुम्हारे संपर्क में आने वाले को भी सुख, शांति मिलेगी।

—आसाराम बापू

हम अपनी प्रत्येक श्वांस के साथ जीवन की अवधि कम करते जाते हैं। जब जिंदगी की अवधि बेहद अल्प है, तो इतनी ईर्ष्या, द्वेष व मारामारी क्यों? जिंदगी में सुख-सफलता का सूत्र यही है कि हम दूसरों के काम आना सीखें। जब तक हम औरों की मदद के लिए स्वयं को प्रस्तुत नहीं करेंगे, वे भी हमारी मदद में हिचकेंगे। समाज में लोकप्रिय व सफल होने की चाह रखने वाले लोगों को चाहिए कि वे अधिकाधिक जितने लोगों के काम आ सकें, आएं।

अपने लिए जीना भी कोई जीना है?

अपने लिए तो पशु-पक्षी व अन्य सभी जीव जीते हैं। वास्तविक आनंद तो किसी और के लिए अपना सर्वस्व होम कर देने में है। ये बातें निरी कागजी नहीं हैं, वरन् व्यक्ति को व्यक्ति से, समाज को समाज से जोड़ने का काम करती हैं। जब हम किसी के लिए कुछ कर देते हैं, तो एक अनन्य भाव हमारे भीतर उपजता है, जो हमारे आत्मगौरव को और भी स्वस्थ और समृद्ध करने का काम करता है।

किसी भी मनुष्य के लिए व्यवहारगत दोष उसके लिए विष जैसे हैं। इन दोषों में दूसरों की बेवजह भर्त्सना अथवा अकारण निंदा करना भी शामिल है।

किसी ने सच ही कहा है कि पता नहीं कितने कारोबार सिर्फ बदमिजाजी की वजह से समाप्त हो जाते हैं। व्यक्ति के लिए दूसरों का अपमान करना वैसे ही हानिकारक सिद्ध होता है, जैसे इंजन के लिए बालू।

जब किसी कंपनी का मालिक अथवा मैनेजर ताने देने, गाली गुफ्ता करने को अपनी कार्यशैली का हिस्सा बना लेता है, तो उसके उद्देश्य पानी में जाने लगते हैं।

आप अपने पास-पड़ोस, घर-परिवार अथवा अन्य किसी स्थान पर दूसरों की मदद करें। अनेक बार व्यक्ति सिर्फ मूक अपेक्षा करता है। जब उसकी अपेक्षा पर सामने वाला खरा नहीं उतरता, तो संबंधों पर उदासीनता की धुंध छाने लगती है।

सहयोग के लिए तत्परता

दूसरों के काम आने के लिए तत्पर रहें, साथ ही उससे जुड़े तथ्यों की अनदेखी भी करें। नीचे कुछ सूत्र दिए जा रहे हैं, जिन पर अमल करके आप भली प्रकार अपनी व्यवस्थाएं सुनिश्चित कर सकते हैं।

किसी भी बात को मन में दबाकर मत रखो, बातचीत के द्वारा अपने मन के गुबार को बाहर निकालो।

सहजता व सरलता पूर्वक बातचीत करने का अभ्यास करें। बातचीत की प्रक्रिया में बहुत गुण होते हैं, जो आपकी घुटन दूर करते हैं तथा आपको सही मार्ग पर अग्रसारित करते हैं। अपनी परेशानी से संबंधित व्यक्तियों के साथ ईमानदारी से बातचीत कीजिए।

क्रोध से परहेज करें, क्योंकि किसी भी समस्या को सुलझाने के लिए ठंडे दिमाग की आवश्यकता होती है।

कभी-कभी झुकिए भी। जब आप दूसरों के सामने झुकेंगे, तब बहुत संभव है कि दूसरे भी आपके सामने झुकेंगे।

दूसरों के लिए कुछ कीजिए। यदि आप किसी को कष्ट के गड्ढे से बाहर निकालते हैं, तो आपको अपने कष्ट दफनाने के लिए स्थान स्वतः मिल जाता है।

एक समय में एक ही काम कीजिए। अधिक काम से घबराइए नहीं, एक समय में एक-एक काम करके आप सबको निपटा सकते हैं। सबसे आवश्यक काम को सबसे पहले कीजिए।

स्वयं से बहुत अपेक्षाएं मत रखिए। अपनी कमियों के प्रति सहनशील बनिए।

अपनी आलोचना से विचलित मत होइए। दूसरों से अत्यधिक उम्मीदें मत रखिए।

स्वयं को सुलभ बनाइए। स्वयं को तिरष्कृत एवं बहिष्कृत समझने की सोच बदलिए।

हम किसी व्यक्ति को व्यक्तिगत रूप से तरजीह दें या न दें, परन्तु यदि उसने किसी अन्य व्यक्ति को हमारे पास भेजा है, तो उसे पूरी-पूरी प्राथमिकता दें। ऐसा करने से हमारा उन दोनों व्यक्तियों पर बड़ा ही सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

'नहीं' कहना भी सीखें

दूसरों के काम करने की भी कुछ सीमाएं हैं। यदि आप उन सीमाओं का उल्लंघन करते हैं, तो यह आपकी कामयाबी व लोकप्रियता के लिए घातक

कदम होगा। जिन कार्यों को आप कर नहीं सकते या जिस कार्य को करना आप उचित नहीं समझते, उसकी बाबत स्पष्ट मना करने की प्रवृत्ति पालें।

जब भी कोई व्यक्ति हमसे किसी वस्तु की अपेक्षा करता है, तब वह सकारात्मक सोच रखकर ही प्रस्ताव करता है। सामान्यतः समस्त मामलों में नहीं सुनना किसी को भी अच्छा नहीं लगता, इसलिए 'न' कहना भी एक कला है। दरअसल नकारात्मक जवाब अपने आप में एक दृढ़ कथन है। यह आपके स्पष्ट व मजबूत मंतव्य का प्रतीक है।

शिष्टाचार के चलते सामान्यतौर पर सभी को 'न' कहने में झिझक होती है। लेकिन मात्र झिझकने के कारण यदि आप 'न' भी नहीं कह सके और दूसरे, इस आदमी का काम भी नहीं हुआ, तो इस बात से उतनी हानि होने की संभावना है, जितनी कि संभवतः आपके 'न' कहने के कारण नहीं होती। हो सकता है, आपको अपनी दोस्ती से हमेशा-हमेशा के लिए हाथ भी धोना पड़ जाए।

इसका निर्णय आपको स्वयं करना होगा कि 'न' कहना आपके लिए कब और कितना महत्त्वपूर्ण है। किसी काम या बात से इनकार करने का कोई निश्चित फार्मूला नहीं है। आपके इनकार की शैली ऐसी हो कि उसकी वजह साफ तौर पर जाहिर हो जानी चाहिए।

पति-पत्नी, बच्चों तथा दोस्तों से मनाही भी एक कला से कम नहीं। पति को बेहद प्यार करने वाली पत्नी उनके किसी भी काम को इनकार करने के बाद अपराध बोध से ग्रस्त हो सकती है। ऐसे में शालीनता और विनम्रता से किया गया इनकार अपराधबोध उत्पन्न नहीं करेगा।

बच्चों से 'न' कहने से पूर्व उनकी जरूरतों, भावनाओं तथा समझ को ख्याल में लेना जरूरी है। हमेशा यह मत करो, रुको, वह मत करो, आदि नकारात्मक बातें बालमन पर प्रतिकूल प्रभाव छोड़ती हैं।

किसी चीज को कहने से पूर्व निम्न बिन्दुओं पर विचार कर लेंगे, तो आपको कार्य व्यवहार में सुविधा महसूस होगी।

किसी चीज को मना करने से पूर्व सामने वाले की इच्छा समझने का प्रयास करें।

विस्तृत व्याख्या या क्षमा याचना के बजाय संक्षेप में इनकार कीजिए।

विनम्र भाषा का प्रयोग कीजिए।

नकार का एक तरीका इस तरह से भी हो सकता है 'आपने मुझे स्मरण किया, इसका धन्यवाद, लेकिन आज मेरे लिए यह काम करना संभव नहीं होगा। यह कल हो जाएगा।

यह ध्यान रखें कि यदि कोई आपको सच्चे दिल से चाहता है, तो केवल इनकार कर देने से उसका आपके प्रति प्रेम कम नहीं हो जाएगा।

यहां यह जान लेना बेहद जरूरी है कि जो व्यक्ति छोटी-छोटी बातों का ख्याल नहीं रखता, वह बड़ी-बड़ी बातों का ख्याल रख ही नहीं सकता। अतः यदि हम अपने व्यक्तित्व को संवारना चाहते हैं, तो छोटी-छोटी बातों को पहले शामिल करें, इससे बड़ी-बड़ी बातों को संवारने में स्वतः मदद मिल जाएगी

यह भी ध्यान रखें

- सामान्यतः कोई भी व्यक्ति सीधे शब्दों में हमें यह नहीं बताता कि वह हमें 'नापसंद' करता है। हमें यह पढ़ना (जानना) आना चाहिए कि हमें कौन, 'कब' पसंद कर रहा है और कब 'नापसंद'।
- हंसी-मजाक कहने को तो हंसी-मजाक हुआ करती है, परन्तु बहुत हद तक यह हमारे हृदय के भावों को प्रदर्शित करते हैं। मन में भीतर जो पक रहा होता है, वह अनुकूल परिस्थितियों में प्रकट हो जाता है। अतः हंसी-मजाक करते वक्त सतर्क रहें।
- जैसी हमारी मनोवृत्ति होती है, उसी के अनुसार हमें उपलब्धि होती हैं। अतः हमें अपनी मनोवृत्ति सदैव अच्छी ही रखनी चाहिए।
- स्वयं अपनी सहायता करने वालों की सहायता ईश्वर भी करता है।

अध्याय 21

कैसे खुश रहें पति-पत्नी

तुम्हारे आंचल में नरम-गरम, अच्छाई-बुराई दोनों की वर्षा होगी, अतएव घबराओ मत, दोनों को स्वीकार करो। पति-पत्नी जब एकाकार होकर जीवन सागर में गोता लगाते हैं, तो उनकी मुट्ठी में सिर्फ मोती ही नहीं आते, अपितु सीप भी आते हैं। इनकी अलग-अलग उपयोगिता के हिसाब से दोनों ही वस्तुएं रख लेनी चाहिए। इसके अतिरिक्त यह मत भूलो कि मोती, सीप के अंदर ही पैदा होता है।

—किशोर साहू

परिणय सूत्र में बंधने के बाद एक स्त्री तथा पुरुष उम्रभर के लिए एक दूसरे के हो जाते हैं। बहुधा ऐसे मौके कई बार आते हैं, जब मामूली-सी बातें तूल पकड़ लेती हैं और एक ही छत के नीचे तथा एक ही बिस्तर पर रहना दूभर हो जाता है। इसलिए अपने दांपत्य जीवन को भी बेहद व्यवहार कुशलता के साथ निभाना होता है, वरना सुख के फूलों के स्थान पर हमें दुख-भरे कांटों के दंश झेलने को विवश होना पड़ेगा।

आपसी सौहार्द बनाए रखिए

प्रसिद्ध विचारक जी. के. चेस्टरटन ने लिखा है, "यह एक बहुत गलत धारणा है कि आधुनिक पारिवारिक जीवन नीरस होता है, जबकि घर के

बाहर साहसिकता और विविधता प्राप्त होती है। परन्तु सच बात यह है कि स्वतंत्रता का एक मात्र स्थान घर होता है। संपूर्ण संसार में यही एक मात्र स्थान है, जहां मनुष्य जब चाहे तब, व्यवस्था में हेर-फेर, नए-नए प्रयोग और इच्छानुसार मौज कर सकता है।

बहुत से लोग असीम सुख की उम्मीद के साथ वैवाहिक जीवन में प्रवेश करते हैं, परन्तु जब उनका मोहभंग होता है, तब पश्चात्ताप करते हैं। यह दावेदारी नहीं की जा सकती कि विवाह शहद भरा कलश है, परन्तु यह सर्वथा कसैला तथा दुखदायी भी नहीं होता।

जीवन साथी के मध्य सूझ-बूझ व परस्पर सौहार्द की भावना इस अनुभव को प्रिय तथा आनंददायक बना सकती है।

पति-पत्नी का संबंध जितना मजबूत होता है, उतना ही नाजुक भी होता है। मामूली से मतभेद तथा गलत फहमियां, अनेक बार भारी विवाद के कारक बनते हैं। परिणामतः मनमुटाव होते हैं तथा दांपत्य संबंधों में दूरियां पैदा हो जाती हैं, जो कई बार अलगाव को जन्म देती हैं।

दांपत्य जीवन परस्पर स्नेह व विश्वास की डोर से बंधा रहता है। इस डोर को ढीली न होने दें। एक दूसरे के प्रति समर्पण का भाव रखें तथा स्वप्न में भी विश्वासघात की चेष्टा न करें।

अपने विवाहपूर्व संबंधों को कोई नया नाम, नया रंग न दें। इन संबंधों को जारी रखना एक मूर्खतापूर्ण काम होगा। यह सब करने के बजाय एक दूसरे की जरूरतों तथा भावनाओं की कद्र करें। भरा-पूरा स्नेह दें तथा एकनिष्ठ बने रहें।

सुख, समृद्धि आपके द्वार

खुशहाल व आदर्श पति-पत्नी बनने के लिए एक दूसरे को पूर्ण मान-सम्मान दें। एक दूसरे की कमियों, दोषों, अभावों को न कुरेदें, बल्कि परस्पर गुणों को तलाशें और मौका मिलते ही उनकी प्रशंसा करें तथा दूसरों के सामने रखें।

पत्नियों को यह बात सही मायनों में समझ लेने की आवश्यकता है कि उनकी तमाम सुख-समृद्धि के स्रोत उनके अपने घर की चारदीवारी में ही

छिपे हैं। 'हमारे यहां तो ....।' 'हमने पापा .....।' 'हमारे परिवार में .....।' 'की बजाय 'यहां तो... ।' 'वे ....।' 'इनके ....।' की बात करें। यदि आपको अपने 'इन से...' कोई शिकवा-शिकायत भी है, तो उसकी चर्चा केवल 'इन्हीं' से करें। वह भी एकांत और अंतरंग क्षणों में। इस शिकायत में कोई भी तीसरा व्यक्ति भागीदार नहीं होना चाहिए। भले ही कोई व्यक्ति आपका कितना ही खास क्यों न हो?

पत्नियों को चाहिए कि पत्नी धर्म के साथ-साथ पत्नी आचरण को अंगीकार करें। पैरों की जूती या चरणों की दासी बनकर नहीं, दिल की रानी बनकर रहें। इससे एक ओर जहां पति में अधिकार का गौरव आएगा, वहीं आपको यथेष्ठ स्थान व सम्मान मिलेगा। इससे पति-पत्नी, दोनों के अहम संतुष्ट होंगे और यही संतुष्टि, एक दूसरे के प्रति वफादारी का सूत्रपात करती है।

विवाहरूपी समझौते का पालन करें

विवाह एक पवित्र सामाजिक समझौता है। आप दोनों इस समझौते के प्रति पूरी तरह से वचनबद्ध रहें। इसे आप जितनी गंभीरता से लेंगे, आपके दांपत्य संबंध उतने ही सुखद, मधुर तथा उष्ण बने रहेंगे, उतना ही विश्वास उपजेगा और तब विवाह आप को बोझ सरीखा नहीं लगेगा। वह परिवार की एकता और समाज की मर्यादाशीलता की इमारत का एक मजबूत आधार स्तंभ होगा।

पति-पत्नी को अपनी उच्चता प्रदर्शित कर एक दूसरे पर विजय पाने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। क्योंकि इससे दांपत्य जीवन जंग में बदल सकता है। मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि पति-पत्नी की लड़ाई चौबीस-घंटे से अधिक की नहीं होनी चाहिए। अतएव इससे पूर्व ही आपस में शिष्टता पूर्ण समझौते का मार्ग प्रशस्त करें।

पति-पत्नी क्या करें

पति-पत्नी को भलीभांति यह तथ्य जान लेना चाहिए कि अभिमान से कलह तथा क्लेश होता है, जबकि विनम्रता समस्त सुखों की जननी है।

कुसंगति के बजाय सत्य और सदाचार के मार्ग पर चलते हुए एक-दूजे में पूर्ण विश्वास रखना ही सबसे बड़ा धर्म है।

पति के प्रति निश्छल प्रेम भाव रखना, पति पर भरोसा रखना और उन्हीं के मुताबिक आचरण करना ही पतिव्रत धर्म है। इसी में ही पत्नी की महिमा, गरिमा, महत्ता और सम्मान है।

पति-पत्नी का यह कर्तव्य बनता है कि वे अपने स्वार्थ के बजाय परिवार के अन्य सदस्यों की, सुख-सुविधा, बच्चों के लालन-पालन, शिक्षा, स्वास्थ्य सुधार तथा उनकी चारित्रिक निर्मलता पर भी ध्यान दें।

पत्नी पति की दासी नहीं, उसकी अर्द्धांगिनी एवं मित्र है। पत्नी यदि स्वयं को पति की सेवा में अर्पित कर दे, तो यह उसके सतीत्व की शोभा और शृंगार है, न कि पति का अधिकार।

ध्यान रखें, लज्जा, विनम्रता, निःस्वार्थ सेवा, सरल प्रेम, शील, सदाचार आदि नारी के आभूषण हैं, जबकि संयम, सदाचार, मित्र-भाव और निःस्वार्थ प्रेम पुरुष का स्वभाव। इनकी मौलिकता व सहजता बनाए रखें।

सदियों से हमारे समाज में पति-पत्नी के रिश्ते को पवित्र माना जाता रहा है। जिस घर में पति-पत्नी प्रेमपूर्वक रहते हैं, वह घर स्वर्ग समान है।

यह भी ध्यान रखें

- वैसे तो वर्तमान जीवन-शैली व्यस्ततम है, फिर भी यदि पति-पत्नी एक दूसरे के लिए समय नहीं निकालेंगे, आपस में बातचीत, हंसी-मजाक नहीं करेंगे, तो जीवन में सरसता व मधुरता कहां से रहेगी?
- सुखी दांपत्य जीवन के लिए अंग्रेजी अक्षर 'टी' से शुरू होने वाले चार शब्द आधार स्तम्भ हो सकते हैं। TRUST विश्वास, TIME समय, TALK बातचीत, तथा TOUCH स्पर्श।
- पति-पत्नी स्वयं को किसी भी बात के लिए सर्वोच्च न मानें, न ही प्रतिष्ठा का प्रश्न ही बनाएं। जीवन में समझौतावादी नजरिया रखें।
- वर्तमान में आधुनिकता के नाम पर पीने-पिलाने की सामूहिक पार्टियां आयोजित की जाती हैं। इस दौरान कई बार परिचय मित्रता में व मित्रता 'दूसरे' संबंधों में बदल जाती है। अतः इस प्रकार की पार्टियां व आयोजनों से दूर रहना चाहिए।

अध्याय 22

परस्पर भावनाओं को समझें

भावना जल है। उस पर देश, काल, गति का प्रभाव बड़ी जल्दी पड़ता है। विवेक चट्टान है। उस पर परछाइयां पड़कर हटती-मिटती रहती हैं। जल में तैरा जा सकता है, परन्तु घर नहीं बनाया जा सकता। घर चट्टान पर ही बन सकता है। घर में रहने वाला अधिक सुरक्षित, व्यवस्थित अनुभव करता है, पर अपनी प्रकृति से लड़कर कोई सफल भी नहीं होता है।

—डॉ. हरिवंशराय बच्चन

यदि विवाहित युगलों के मध्य भावनाओं का सम्मान, सद्भावना, निष्ठा एवं ईमानदारी के भाव हों, तो घर-परिवार में सुख एवं शांति का सूर्योदय होता है। यदि यह जरूरी है कि पति-पत्नी एक दूसरे की भावनात्मक विशेषताओं को सहन करना सीखें, तो यह और भी आवश्यक है कि वे अपनी विभिन्नताओं पर एक दूसरे से बातचीत करें, विचार-विनिमय करें। वहीं अनेक दंपती कुछ प्रसंगों पर परस्पर बातचीत को महत्त्व नहीं देते, परिणामस्वरूप उनके बीच विद्वेष और अविश्वास की गुप्त भावनाएं बनी रहती हैं।

प्रेम के प्रवाह में गोते लगाइए

जिन दंपतियों की भावनाओं के सफे मोहब्बत के दस्तखत से लबरेज हैं, उन घरों में दो जहां की खुशियां आबाद रहती हैं। कितने ही धन, दौलत,

मान, मर्यादा, वैभव तथा संपन्नता के महल बनाए जाएं, यदि वहां स्नेह के गीत नहीं गाए जाते, तो समझिए सब उदास है, सब फीका है। एक अधूरापन है, जो उसमें रहने वाली जिंदगियों को बोझिल बनाता है। जहां जिंदगी की मधुरिमा नहीं, वहां आनंद की अनुभूति नहीं, सम्मान का संगीत नहीं... । एक मजबूरी-सी है, जो जिंदा रखे हुए है।

मजबूरी में कभी भी कोई सृजन नहीं होता या कोई श्रेष्ठ अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। पिछले कई दशकों से यह 'मजबूरी' हमारे दांपत्य जीवन में आई है। किसी ने बड़े ही अनूठे तथा हास्य रूप में ये पंक्तियां कही हैं :

मेरे पड़ोस में एक आदर्श जोड़ी है,
जिसने मोहब्बत के लिए हर रस्म तोड़ी है।
एक दिन मैंने अपने एक दूसरे पड़ोसी से पूछा –
भैया,
किस बलबूते पर इनकी मोहब्बत इतनी गहरी है?
उसने कहा –
आश्चर्य है, तुम्हें मालूम नहीं !
पति कवि हैं, पत्नी बहरी है।

जॉर्ज हौम्मेर कहा करते थे कि आधुनिक घरों में अशांति के तीन कारण हैं: 1. दंपतियों में उचित सामंजस्य का अभाव, 2. वैयक्तिक भिन्नताओं का अस्वीकार। 3. परस्पर विचार-विनिमय करने की अयोग्यता।

मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि समझदारी ही सुखी वैवाहिक जीवन का केंद्र बिन्दु है। पुरुष तथा स्त्रियों के विचारों में अंतर भी अनेक समस्याओं की जड़ है।

शीतल इस बात से खिन्न है कि उसका पति विवेक अपना अधिकांश समय दोस्तों के साथ व्यतीत करता है। शीतल जानती है कि उसके पति उसे तथा परिवार को बहुत प्यार करते हैं, परन्तु जब वे प्रत्येक शनिवार की शाम घर से दूर बाहर बिताते हैं, तो वह स्वयं को परित्यक्ता महसूस करती है।

वैसे शीतल को चाहिए कि वह पति के भावनात्मक पक्ष को कुरेद कर उनकी परेशानियों को जाने व कोई समुचित सलाह दे। इससे पति जहां

उस पर लट्टू रहेंगे, वहीं यदि उनके मन में किसी अन्य स्त्री के प्रति प्रेम पनप रहा होगा, तो वह भी समाप्त होगा।

गलतफहमियों से बचिए

किसी भी दंपती में यदि किसी भी प्रकार की गलतफहमी घर कर गई है, तो उससे विकास के बजाय विनाश ही होता है।

मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि आज तलाक के अधिकांश मामलों में यह तथ्य उभरकर सामने आया है कि पति-पत्नी की आपसी नासमझी से ही तलाक हो रहे हैं। गलती करके उसे न मानना किसी बड़े अपराध से कम नहीं है। क्योंकि इससे ही पति-पत्नी के वैवाहिक जीवन में कलह का बीजारोपण होता है। गलती हो जाने पर क्षमा मांग लेने अथवा कबूल कर लेने से व्यक्ति का व्यक्तित्व और अधिक प्रभावशाली हो जाता है।

संबंधों में माधुर्य के लिए यह जरूरी है कि आप स्वयं को अपने जीवन साथी से बड़ा न समझें तथा उससे समायोजन करने की कोशिश करें। आपसी समझ तथा विचार विनिमय जितना ही अधिक होगा, पति-पत्नी में प्रेम के भाव उतने ही ज्यादा होंगे तथा एक-दूसरे पर न्यौछावर होते रहेंगे।

दिनभर के कामकाज की थकान के बाद पति जब शाम को थका-हारा घर आता है, तो वह आराम तथा पत्नी का सामीप्य पाना चाहता है। अनेक पत्नियां घर आते ही पति पर सारे दिन की भड़ास निकाल डालती हैं। ऐसे व्यवहार से पति न केवल आहत होता है, अपितु तनावग्रस्त भी हो जाता है। अतएव पत्नी को अपने पति के साथ ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिए कि पति की भावनाएं आहत हों और घर में कलह-क्लेश का श्रीगणेश हो जाए।

पत्नी को पति की भावनाओं का ख्याल करके इस बाबत धैर्य व शालीनता का व्यवहार करना चाहिए, ताकि पति को भूलकर भी ऐसा प्रतीत न हो कि पत्नी उसकी अनदेखी कर रही है, कमियां उभार रही है अथवा उसे अपने से नीचा समझ रही है।

काम के बाद घर लौटे पति को पूरा समय व ध्यान दें। पति के प्रति लापरवाही बरतना, व्यस्तता का बहाना ओढ़ना भूल है। पति को गर्मागर्म

चाय-नाश्ते के साथ मीठी-मीठी बातें व मुस्कान भी दें तथा उनकी जरूरतों को प्राथमिकता दें।

इस तथ्य को समझें कि पति को संतुष्ट करने वाली पत्नी ही स्वयं सुखी व संतुष्ट रह पाती है। पति की मौलिक चाहत का सम्मान तथा उन्हें तृप्त करना पत्नी का दायित्व है। इसे सुखी दांपत्य का मर्म समझें। अन्यथा दांपत्य के सुनहरे आकाश पर दुखों व तनाव के बादल घिरते देर नहीं लगेगी।

यह भी ध्यान रखें

- किसी भी पक्ष को अपने जीवन साथी की आलोचना किसी अन्य व्यक्ति से नहीं करनी चाहिए। अन्यथा दूसरे व्यक्ति उससे अनुचित लाभ उठा सकते हैं। जो भी बात हो, उसका निराकरण परस्पर विचार-विमर्श से ही करें।
- घरेलू कार्यों के लिए केवल पत्नी ही जिम्मेदार नहीं है। यदि बच्चे हैं, तो पत्नी को उसके कार्यों में मदद करें। यहां सहयोग का तात्पर्य यह नहीं है कि आप घरेलू कार्य करें, वरन् आप अपना काम स्वयं कर लें। हर कार्य के लिए पत्नी पर निर्भर रहना उचित नहीं।
- पति-पत्नी को चाहिए कि अपने कार्यालय में महिला सहकर्मी व पुरुष सहकर्मी से मर्यादित व संयमित भाषा में ही व्यवहार करें। ज्यादा हंसी-मजाक, एक दूजे के प्रति संदेह को जन्म देता है। अतः इससे सतर्क रहें।

अध्याय 23

महत्त्वपूर्ण अवसरों को याद रखिए

विवाह के मंत्र कर्तव्यबुद्धि दे सकते हैं, भक्ति दे सकते हैं, किंतु माधुर्य देने की शक्ति उनमें नहीं है। यह शक्ति केवल प्रकृति के दिए नियम के पालन में है।

—शरतचंद्र चट्टोपाध्याय

किसी व्यक्ति को प्यार करना और उससे जुड़ी तमाम चीजों की सार-संभाल करना एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि मनुष्य की यह स्वभावगत् विशेषता है कि वह छोटी-छोटी चीजों से प्रभावित होता है। अतः हम अपने से गहरे जुड़े लोगों का ख्याल रखें तथा उनसे जुड़ी तमाम चीजों, महत्त्वपूर्ण मौकों को कभी भी न भूलें।

उपहारों का चमत्कार

हमें अपने नजदीकी लोगों के महत्त्वपूर्ण मौकों को याद रखना चाहिए। जब किसी दिन विशेष पर आप किसी अजीज को कोई तोहफा या मुबारकबाद देते हैं, तो उसका हृदय आपके प्रति असीम स्नेह से भर जाता है। चंद शब्दों में व्यक्त की गई आपकी बधाई अथवा मामूली रकम से खरीदा गया आपका उपहार मनोवैज्ञानिक रूप से अमूल्य साबित होता है।

अपने मित्रों, रिश्तेदारों, परिचितों के महत्त्वपूर्ण दिनों को याद करना वास्तव में एक जटिल कार्य है। इसके लिए आप एनवर्सरी 'बुक' अथवा किसी

छोटी डायरी की मदद ले सकते हैं। वैसे आजकल बाजार में जितनी भी डायरियां आ रही हैं, उनमें इस तरह के कालम होते हैं, जहां सूचनाएं अथवा खास तिथियों को दर्ज करके रख सकते हैं।

दुकान, प्रतिष्ठान के शुरू करने की तिथि, नौकरी ज्वाइन करने की तारीख, जन्म दिन, शादी की सालगिरह, बच्चों के जन्म दिन, शादी होने की तिथि आदि अन्य महत्त्वपूर्ण तिथियों के अलावा होली, दीवाली, क्रिसमस, ईद तथा बैशाखी आदि पर भी बधाइयां भेजी जा सकती हैं।

ध्यान रखिए कि सामने वाला कभी भी आपके उपहार की कीमत अथवा उसकी ब्रांड से प्रभावित नहीं होता। वह यह देखता है कि देने वाले की भावनाएं कैसी हैं। किसी पर रोब जमाने अथवा उसको नीचा दिखाने के लिए दिया गया उपहार द्वेष व ईर्ष्या को जन्म देता है। इससे संबंध सुधरने की बजाय और भी बिगड़ जाते हैं।

उपहारों का चुनाव कैसे करें?

बहुत से लोग इस तथ्य को नहीं जानते कि किस मौके पर कैसा उपहार दिया जाए, अतः इसमें सावधानी रखें। इसके लिए प्रथमतः यह सोचें कि आप जिसके लिए उपहार देने जा रहे हैं, उसके लिए वह कितना महत्त्व रखता है।

बेहतर तो यह है कि जब भी आप कहीं दूर स्थान की यात्रा या विदेश में घूमने जाएं, अपने मिलने-जुलने वालों का मन टटोलें। उससे आपको जानकारी मिल जाएगी कि अमुक व्यक्ति को कौन सी चीज सबसे अधिक पसंद है। अन्यथा उपहार कितना भी महंगा क्यों न हो, उसकी उपयोगिता उतनी नहीं रह जाती है, जितनी होनी चाहिए थी।

यह भी ध्यान रखें

- किसी को उपहार देने के बाद जगह-जगह उसका ढिंढोरा न पीटते फिरें।
- *दिए गए उपहार अथवा संदेश का कभी ताना न दें।*
- दूसरों को देने की बात को ही सोचें, यह अपेक्षा न करें कि बदले में वह भी आपको कोई चीज क्यों नहीं देता?

अध्याय 24

तानों-उलाहनों से बचें

किसी को मारना हो, तो तीर की जगह ताना मारो।
—कार्लाइल

हम किसी के लिए कितना कुछ भी क्यों न कर दें, यदि उसके लिए ताने-उलाहने देते हैं, तो उसका कोई महत्त्व नहीं रह जाता। ऐसे लोग यह नहीं जानते हैं कि सहज बुद्धि से दिया गया ताना भी कभी किसी को प्रिय नहीं लगता। यह हमारे मानसिक विद्वेष का परिचय देता है। व्यवहारकुशल लोगों को ताने-उलाहने देना शोभा नहीं देता।

तानों-उलाहनों का आरकेस्ट्रा

जिन घरों व परिवारों में हर समय तानों-उलाहनों का संगीत बजता रहता है, वहां सुख-समृद्धि के दर्शन नहीं होते। बहुत से परिवार महज इस वजह से प्रगति की दौड़ में पिछड़ जाते हैं कि उनके घर में हर समय चख-चख और उलाहनों की कर्कश धुनें बजती रहती हैं।

यह सर्वमान्य तथ्य है कि कर्जा, धन का अभाव, फिजूलखर्ची, बीमारी, घर का कुप्रबंध, शरारती बाल-गोपाल, यहां तक कि छोटी-मोटी बेवफाई भी उतना कलह-क्लेश पैदा नहीं करती, जितना कि बीबी की चौबीसों घंटे चलने वाली जबान पैदा कर देती है।

अमेरिका में मनोवैज्ञानिकों ने हजारों दंपतियों पर किए गए एक सर्वेक्षण में यह स्पष्ट किया है कि पारिवारिक क्लेशों की सूची में पत्नियों द्वारा उलाहने दिया जाना सर्वोपरि रहा है। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि पत्नियों ने अपनी सूची में क्लेश के जिस कारण को सबसे ऊपर रखा, वह था पति का किसी दूसरी स्त्री से संबंध।

ये भी नहीं बच सके!

हजारों वर्षों से दुनिया के जाने माने लोग अपनी पत्नियों के प्रकोप के शिकार हुए हैं:

सुकरात : यूनान का प्रख्यात दार्शनिक सुकरात एथेंस में वृक्षों के नीचे अपनी पत्नी के उलाहनों-तानों से बचने के लिए आकर बैठा करता था।

सीजर : रोम के सम्राट आगस्टस सीजर ने अपनी दूसरी बीबी स्क्रिबोमिया को मात्र इसलिए तलाक दे दिया था कि वह उसकी कैंची-सी चलती जुबान से तंग आ गया था।

नेपोलियन : फ्रांस के बादशाह नेपोलियन तृतीय, अपनी पत्नी के उलाहनों-तानों से आहत होने के बाद कई वक्त तक खाना नहीं खाते थे।

अब्राहम लिंकन : अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन को भी पत्नी के खौफ का शिकार होना पड़ता था।

राजा दशरथ : राजा दशरथ अपनी चौथी रानी कैकेयी के कोपभवन में उसके तानों का सामना नहीं कर सके थे। कैकेयी की इच्छा के अनुसार उन्होंने उनके पुत्र भरत को राजगद्दी तथा बड़े पुत्र रामचन्द्र को बनवास का आदेश दिया।

टालस्टॉय : रूस के महान् लेखक व दार्शनिक टाल्सटाय के बारे में यह बात प्रसिद्ध है कि जब वह घर से भागकर एक दूरस्थ रेलवे स्टेशन पर मरने के लिए गए और अंतिम इच्छा पूछने पर बताया कि मेरा दम निकलने से पहले मेरी पत्नी को मेरी मौत की खबर न की जाए।

मिर्जा गालिब : उर्दू के महान् शायर हजरत मिर्जा गालिब जीवनभर अपनी बेगम के उलाहने सुन-सुन कर दुख और निराशा भरे कलाम लिखते रहे।

इस प्रकार से अनेक उदाहरण भरे पड़े हैं, जो पत्नियों की कैंचीनुमा जबान को बयां करते हैं, परन्तु वहीं ऐसे उदाहरण भी हैं, जब पत्नियों के सहयोग से कुछ पति आगे बढ़े हैं।

उलाहनों के रूप

पत्नी द्वारा दिए जाने वाले उलाहनों में सर्वाधिक कष्टप्रद तथा घातक रूप तब देखने को मिलता है, जब पत्नी पति की तुलना किसी और से करके उसे नीचा व हीन साबित करने का यत्न करती है। यथा –

आपको प्रमोशन भला क्यूं मिलेगा, आप कोई शर्मा जी तो हैं नहीं कि वर्ष में दो-दो इन्क्रीमेंट व प्रमोशन ले लें।

आपके पास यदि मुझे घुमाने-फिराने या कहीं ले जाने का वक्त नहीं है, तो मुझसे शादी क्यूं की? मैं ही कर्मजली हूं, जो एक से बढ़िया एक रिश्ते को ठुकराकर आपसे शादी को हामी भर दी।

दरअसल इस प्रकार की बातों से सकारात्मक परिणाम नहीं मिलता, अपितु ये व्यंग्य बाण की तरह कार्य करते हैं।

मनोवैज्ञानिकों ने पत्नियों में ताने मारने, उलाहने देने इत्यादि के विविध कारण माने हैं। मसलन,

ज्यादा थकी हुई पत्नियां प्रायः तानों-उलाहनों के जरिए अपने मानसिक संताप को दूर करती हैं।

कई बार मन में छिपा पति के प्रति द्वेष या विरोध का भाव भी उलाहनों का कारण बनता है।

ससुराल या मायके से संबंधित समस्याएं भी इस आदत को बढ़ावा देती हैं।

यौन संबंधों में अतृप्ति अथवा पति से अपेक्षित प्यार नहीं मिल पाने पर भी तानों-उलाहनों की आदत बन जाती है।

ऐसा नहीं कि केवल पत्नियां या महिलाएं ही ताने-उलाहने देती हैं, बल्कि पुरुष भी पीछे नहीं। जैसे –

"कुट्टी को देखो, कितना कुछ अशेष का ख्याल रखती है, खुद भी बन-संवर कर रहती है...एक तुम हो कि बस, साथ चलने में शर्म महसूस होती है..."

अथवा

"मुझसे तुम कितना उम्मीद करती हो? पड़ोस वाली दीपा को क्यों नहीं देखती कि मायके से सारे सामान लाकर घर भर दिए... और एक तुम हो कि एक प्रेशर कुकर तक नहीं ला सकीं..."

इसके लिए आवश्यक है कि तानों से बचा जाए, तभी घर-गृहस्थी की गाड़ी बखूबी आगे बढ़ेगी।

काबू पाने के कुछ महत्त्वपूर्ण टिप्स

घर-परिवार की खुशहाली के लिए पति व पत्नी दोनों को ध्यान देना होगा। इसके लिए निम्न उपायों को यदि अमल में लाएं, तो काफी हद तक राहत पा सकते हैं :

- बात-बात पर भड़कने या पैर पटकने के बजाय, शांत चित्त व सहानुभूतिपूर्वक विचार करें तथा सौम्यता के साथ अपनी बात कहें।
- इस मामले में परिवार के सदस्यों का सहयोग प्राप्त कीजिए, उनके प्रति इज्जत का भाव रखिए, इससे अनावश्यक व चुभने वाली बात मुंह से नहीं निकलेगी।
- यदि ये लगे कि आपके द्वारा कहा गया कार्य एक बार कहने से नहीं किया गया, तब आप समझ लें कि यह काम नहीं होगा। तब उस काम को या तो आप स्वयं कर लें अथवा उसके न होने से जो नुकसान होने वाला है, उसे सहने की क्षमता विकसित करें।
- प्रेम व नरमी को अपना मिजाज बनाइए।
- बात-बात पर अपने मायके की प्रशंसा और ससुराल की बुराई करते रहने से कोई भी पति कुंठित हुए बिना नहीं रह सकता। पत्नी को चाहिए कि वह "जैसी है जहां है" के आधार पर सच्चे मन से स्वीकारने, सुधारने का प्रयत्न करे।

- कुछ स्त्रियां दूसरों के बहकावे में आकर पतियों से अशिष्ट व्यवहार करती हैं और उनकी भावनाओं को ठेस पहुंचाकर दूसरों के सामने अपमानित करने से भी नहीं चूकतीं। इससे पति टूट कर अधिकांश समय घर से बाहर बिताने लगते हैं।
- शिकायतें तो कीजिए, मगर शांत भाव से— जिन बातों से आप चिढ़ती हैं, उलाहने देती हैं, उन्हें एक कागज पर लिखती जाएं तथा एक-एक में सुधार करके उन्हें काटती जाएं। थोड़े ही दिन में आप देखेंगी कि आपकी अनेक समस्याओं का निवारण हो गया है।
- क्या उलाहनों का कोई विकल्प नहीं – ऐसा नही है कि उलाहनों या तानों से ही किसी में सुधार लाया जा सकता है, वरन् प्रेम का पाठ एक ऐसा मूल-मंत्र है, जिससे सारे कार्य सिद्ध किए जा सकते हैं।
- यह भी ध्यान रखें कि जब ताने हमें अच्छे नहीं लगते, तो दूसरे से कैसे उम्मीद कर सकते हैं कि वह इसे सहन करेगा।

यह भी ध्यान रखें

- सदैव हंसमुख व्यवहार करें। यदि भीतर कोई घुटन भी है, तो एक-दूसरे के समक्ष आदान-प्रदान कर गलतफहमियों का निराकरण कर दें।
- जाने-अनजाने कोई भूल भी हो जाए, तो उसे अनदेखा कर देना चाहिए। भूल होना मानवीय स्वभाव है।
- किसी के अच्छे कार्यों की सराहना कीजिए। इच्छा के विपरीत कृत्य पर उबलिए मत। चुप रहना भी स्वयं में कई समस्याओं का उपचार है।

अध्याय 25

चुगलखोरी बुरी बला

यदि मीठी बोली बोलने से सारे अवरोधों का शमन होता है तथा विश्वबंधुत्व व आपसी सौहार्द बढ़ता है, तो बिना कुछ खर्च किए इसे बोलने में कंजूसी क्यों करें?

—नीतिवचन

चुगलखोरी व चापलूसी हमारे व्यक्तित्व की बड़ी खामियों में से हैं। व्यक्ति इन वृत्तियों में रुचि तो लेता है, परन्तु ऐसे लोगों को अपने विश्वासपात्रों की श्रेणी में कभी भी नहीं रखता, फलस्वरूप व्यक्ति की हालत 'न घर का, न घाट का' सरीखी होती है।

चुगली न करें

दूसरों की नजरों में चढ़ने अथवा अपना उल्लू साधने की इच्छा से कई लोग इधर की बात उधर करके, 'राई' को पहाड़ बताकर, तो कई बार बे सिर-पैर की बातों को नमक-मिर्च की छौंक से चटपटे बनाकर परोसने वालों की कमी नहीं।

साधारणतया वाणी पर संयम रखने वाले लोग शीघ्र ही सबके दिलों में अपना स्थान बना लेते हैं, जबकि चुगलबाजी करने वालों से सभी लोग परहेज़ करते हैं। पहली तरह के लोगों को समाज ग्रहण करता है, जबकि दूसरी श्रेणी के लोगों को कड़वे नीम की तरह थूक दिया जाता है। कोयल तथा

कौवा रंग-रूप में समान होने के बावजूद अपनी-अपनी अलग महत्ता रखते हैं।

हम वाणी पर नियंत्रण नहीं रख पाने के कारण शीघ्र ही विवाद के शिकार होकर रह जाते हैं। विदुर नीति में कहा है, "जहां दूसरों की निंदा हो रही हो, वहां से तुम चलते बनो, एक दिन वहां तुम्हारी भी निंदा होगी"।

इधर की बात उधर करने की आदत, एक दिन आपको सभी की नजरों से गिरा देगी।

कम खाना, गम खाना

मनुष्य की ज्ञानेंद्रियों में जीभ एक ऐसी ज्ञानेंद्रिय है, जिससे सामान्यतः हम दो काम संपन्न करते हैं : 1. बोलना 2. स्वाद लेना।

जीभ की यह विशेषता है कि यह दोनों कार्य करती रहती है। अनियंत्रित भोजन तथा अनियंत्रित वचन दोनों ही व्यक्ति के लिए कष्टों के हेतु हैं। तभी तो यह कहावत बेहद प्रचालित है, – कम खाना और गम खाना। शायद यही वजह है कि प्रत्येक धर्म, मत, तथा संप्रदाय में 'मौन' को विशेष महत्त्व दिया गया है।

विचारक जे. कृष्णमूर्ति ने अपनी पुस्तक 'एट द फीट ऑफ द मास्टर' में स्पष्ट किया है, 'एट द फीट ऑफ द मास्टर' अर्थात् "बोलने की इच्छा करो, बोलने की हिम्मत करो, परन्तु अंततः चुप हो जाओ।"

बिना सोचे, बिना विचारे कहे गए शब्द और विशेषकर जब वे चुगली के रूप में हों, सदैव व्यक्ति के पतन का कारण बनते हैं। किसी भी बात को कहने से पूर्व हमें स्वयं से ये चार सवाल करने चाहिए :

1. क्या कही जाने वाली बात सच है?
2. क्या यह सुनने वाले के लिए प्रिय है?
3. क्या इस बात से किसी का अहित हो सकता है?
4. क्या इसको कहना सबसे जरूरी है?

उपर्युक्त प्रश्नों को विवेकपूर्ण मनन् करने के बाद जब आप अपने विचार व्यक्त करना चाहेंगे, तो निःसंदेह चुगलखोरी से अछूते रहेंगे। इतना ही नहीं चापलूस नहीं कहलाएंगे।

यह भी ध्यान रखें

- मुंह से निकली बात और कमान से निकला तीर कभी वापस नहीं आते।
- किसी भी व्यक्ति के पीठ पीछे, उसकी निंदा नहीं करनी चाहिए।
- बातचीत के दौरान अगर-मगर कहकर बातें करनें वाले लोगों से सावधान रहें।
- किसी का अनादर करने से, वह वास्तव में उसका नहीं, खुद अपना अनादर है।

अध्याय 26

उधार न लें

अपनी औसत आय-व्यय का संतुलन रखना ही श्रेष्ठ अर्थनीति है।

—कौटिल्य

कुछ लोगों की आदत होती है कि वे बात-बात में पैसे तथा चीजों को उधार मांगने से नहीं चूकते। यह एक अच्छी आदत नहीं। उधार लेने वाला कभी अपनी पसंद नहीं देखता। दूसरे, उधार में ली गई वस्तु की गुणवत्ता को मापने का हम साहस नहीं जुटा पाते। स्वाभिमान को गिरवी रखकर उधार लेने का शगल पाले रखने वाले, जीवन में कभी व्यक्तित्व की ऊंचाइयां नहीं छू सकते। दूसरों के सम्मुख सदैव हाथ पसारे खड़े रहने वाले लोग अकसर सफलता से वंचित रहते हैं, घर-परिवार या संपर्क के सभी लोग उससे कटते चले जाते हैं।

मितव्ययिता सबसे बड़ी कुशलता

प्रत्येक मनुष्य अपनी जरूरत और सामर्थ्य के अनुसार क्रय-विक्रय करता है। क्रय (खरीदारी) के लिए धन की आवश्यकता होती है। यह धन नाना उपायों से उपार्जित किया जाता है, परन्तु मितव्ययिता की कुशलता के अभाव में उपार्जित धन ठहर नहीं पाता है, ऐसी दशा में घर-परिवार की गाड़ी खींचना कठिन हो जाता है। उपार्जित धन में से उचित जरूरतों का निष्पादन करते हुए हम आगे के लिए भी कुछ रखें, इसी का नाम

मितव्ययिता है। डॉक्टर जॉनसन कहा करते थे, "ईमानदारी, स्वतंत्रता और आराम के माता-पिता मितव्ययिता है।" आवश्यकताएं कम रखना और उनकी स्वयं पूर्ति करना श्रेष्ठ जीवन जीना है। अपने व्यक्तिगत जीवन में मितव्ययिता से काम लेने में उतनी ही बुद्धि खर्च करनी पड़ती है, जितनी एक साम्राज्य को स्थापित रखने में की जाती है।

जर्मनी में एक मशहूर कहावत है कि "ऋणी होकर प्रातःकाल उठने की अपेक्षा रात को भूखे सो जाना कहीं ज्यादा अच्छा है।" ऋणी हो जाना आसान है, परन्तु उस ऋण से मुक्त होना बेहद कठिन है।

जान मरे नामक एक धनवान पुरुष के पास तीन स्त्रियां किसी सार्वजनिक कार्य के लिए चंदा लेने गईं। जान मरे उस वक्त कुछ लिखने का कार्य कर रहे थे। उन्होंने लिखने का कार्य बंद करते ही, जिन दो मोमबत्तियों के प्रकाश में वह लिख रहे थे, उनमें से एक बुझा दी। स्त्रियों ने आपस में खुसर-फुसर की, मोमबत्ती की किफायत करने वाला क्या चंदा देगा? परन्तु जान मरे ने महिलाओं से बात करने के बाद उन्हें 20 पौंड चंदे में दिया। स्त्रियां आश्चर्यचकित रह गईं। इस पर जान मरे का जवाब था, "बातें करने के लिए एक बत्ती का प्रकाश काफी था और लिखने के लिए दो बत्तियों के प्रकाश की आवश्यकता थी। यदि बात करते वक्त भी मैं दोनों मोमबत्तियां जलाए रखता, तो 20 पौंड की रकम चंदे के रूप में नहीं दे सकता था।" अतः मितव्ययिता के चमत्कार से एक साधारण-सा व्यक्ति भी इस तरह की दानशीलता का प्रदर्शन कर सकता है।

शेक्सपियर ने कहा है कि एक व्यक्ति को जितने वस्त्रों की आवश्यकता होती है, उससे कहीं ज्यादा वस्त्र वह केवल फैशन के लिए, दिखाने के लिए बनवाता है। जब तक साधारण आय से हमारी भोग विलास की अनावश्यक कामना तृप्त नहीं होती, तब तक हम उधार लेते रहते हैं। जिस दिन हम उधार लेना शुरू करते हैं, उसी दिन हमारी अवनति का सूत्रपात हो जाता है।

मितव्ययिता का अर्थ कंजूसी नहीं

यह सच है कि व्यर्थ व्यय को रोके बिना घर-परिवार में सुख-समृद्धि नहीं आ सकती, परन्तु मितव्ययिता तथा कृपणता में भेद है। बचत का तात्पर्य

कंजूस मक्खी चूस' होना नहीं। मितव्ययिता का अभिप्राय इस बात से है कि हमारी उचित जरूरतों की पूर्ति के बाद जो धन बचे, उसे व्यर्थ के तथा अनाप-शनाप के खर्चों से बचाया जाए, ताकि कभी संकट के वक्त जरूरत पड़ने पर इस धन का सदुपयोग किया जा सके।

दूसरी ओर धन के पिपासु होकर अथवा निन्यानबे के फेर में फंसकर, हर तरह का दुख भोगकर पैसे को इकट्ठा करना कंजूसी है। मितव्ययिता से लाभ होता है जबकि कंजूसी अनेक दुखों की जड़ है।

एक बार एक धनी सज्जन रामकृष्ण परमहंस के पास गए। वहां उन्होंने परमहंस जी को धन देने का विनम्र आग्रह किया, 'महाराज, इस धनराशि को आप स्वीकार करें। इसे परोपकार के कार्यों में लगा दीजिएगा। परमहंस मुस्कुराए और बोले, ''भाई, मैं तुम्हारा धन ले लूंगा, तो मेरा चित्त उसी में लगा रहेगा, इससे मेरी मानसिक शांति भंग होगी।''

धनिक ने तर्क दिया, ''महाराज, आप तो परमहंस हैं, जो कामिनी-कंचन के महासमुद में स्थित होकर भी सदैव उससे अलग रहेंगे।''

परमहंस गंभीर होकर बोले, ''भाई। क्या तुम्हें ज्ञात नहीं कि अच्छे से अच्छा तेल भी यदि बहुत दिनों तक पानी के संपर्क में रहे, तो वह भी अशुद्ध हो जाता है तथा उसमें से भी दुर्गन्ध आने लगती है।''

धनी को बोध हुआ और उसने अपना आग्रह छोड़ दिया।

घरेलू बजट बनाइए

बहुत से लोग बिना किसी योजना के धन को उड़ाते रहते हैं, लेकिन घरेलू बजट का निर्धारण करके अपने खर्चों का संतुलन बनाए रखने वाले लोग अधिक सुखी एवं समृद्ध होते हैं।

पारिवारिक बजट का अभिप्राय उन खर्चों का पूर्वानुमान है, जो हमें करने होते हैं। यह महीनेवार तथा सालाना तौर पर खर्च होने वाली रकम की एक

सूची है। यह सूची आपको धन का व्यय बुद्धिमत्तापूर्वक करने का मार्ग सुझाएगी।

पारिवारिक बजट बनाना कोई मुश्किल काम नहीं है। आपको अपनी आय और खर्चों को जानना है, तो प्रत्येक संभव खर्चे को लिख लीजिए। मसलन मकान, दुकान का किराया, घरेलू खान-पान की चीजें, बिजली, दूध, अखबार तथा टेलीफोन का बिल, ईंधन, कपड़े तथा आकस्मिक खर्च। सबसे बाद में बचत का कॉलम बनाइए।

पारिवारिक बजट (रु. 10,000 मासिक आय के आधार पर)

क्रम सं.	खर्चों का विवरण	खर्च	बचत
1.	मकान भाड़ा	2000.00	
2.	बिजली, पानी, टेलीफोन के बिल, अखबार आदि	700.00	
3.	राशन	1300.00	
4.	सब्जी, फल, गैस, नमकीन, बिस्कुट आदि	800.00	
5.	बच्चों की फीस, पुस्तकें एवं पढ़ाई संबंधी अन्य खर्चे	1000.00	
6.	एल.आइ.सी./बीमा की प्रीमियम (किस्त)	500.00	
7.	नए कपड़ों, जूते-चप्पलों की खरीद	700.00	
8.	साबुन, तेल, कास्मेटिक्स आदि	250.00	
9.	पति-पत्नी के जेब खर्च	600.00	
10.	स्कूटर/मोटर साइकिल मेंटेनेंस, पेट्रोल आदि	500.00	
11.	स्वास्थ्य (दवाएं आदि)	250.00	
12.	दूध	500.00	
13.	मनोरंजन	200.00	
14.	आकस्मिक व अन्य खर्चे	300.00	
	कुल खर्च	9,600.00	400.00

प्रत्येक मद में पिछले साल आपने कितनी रकम खर्च की इसका पता लगाइए। इससे आपको आने वाले वर्ष के बजट निर्धारण में सहायता मिलेगी। बजट बनाते समय निम्न बिंदुओं को ध्यान में अवश्य रखें :

- अपने समस्त विवरण सरलतम तरीके से तैयार करें।
- बजट बनाते समय पारिवारिक सदस्यों, पत्नी, मां, बाप, भाई, बहनों से चर्चा कर लें।
- बजट का उद्देश्य खुद को अनुचित दण्ड देना नहीं है।
- विशेष परिस्थितियों के अलावा कभी भी निर्धारित बजट में फेरबदल मत कीजिए।
- बजट को लचीला बनाइए, वह इतना कठोर नहीं हो कि एक भी पैसा बिना हिसाब-किताब, लिखा-पढ़ी के खर्च न हो।

उपर्युक्त तरीके से घर के खर्चों का हिसाब रखने से आपकी आर्थिक कारणों से पैदा होने वाली अनेक समस्याओं का भी स्वतः ही निपटारा कर देगा। तब आप अपने उद्देश्यों, संकल्पों व सपनों को सुगमतापूर्वक साकार करने में सक्षम होंगे।

यह भी ध्यान रखें

- किसी के सामने हाथ पसारने से मांगने वाले की आत्मा और जमीर, दोनों मर जाते हैं।
- किसी व्यक्ति से याचना के लिए मुंह खोलने की अपेक्षा मन की इच्छाओं को रोकना श्रेयस्कर रहता है।
- आवश्यकताओं को बढ़ाने की अपेक्षा उनका मूल्यांकन करें। तब यदि कोई चीज अत्यंत आवश्यक लगे तो उसे पाने का प्रयास करें
- धन से कृपणता पर विजय प्राप्त करो, शांति से क्रोध पर विजय प्राप्त करो, सत्य से असत्य पर विजय प्राप्त करो। यही सत्मार्ग है।

अध्याय 27

बच्चों की अनदेखी न करें

सत्य भाषण, बड़ों का आदर, नम्रता, दया, लज्जा, प्रेम इत्यादि का बीज बच्चों में स्वभाव से ही होता है और यदि उन्हें भय दिखाकर साधारण बातों पर झूठ बोलने को लाचार न किया जाए, उनसे निकम्मी ठिठोलियां न की जाएं, उन्हें शासन से किन्तु प्रेमपूर्वक रखा जाए, उन्हें रोगियों की सेवा, अनाथों से प्रेम, दरिदों की सहायता की ओर प्रवृत्त कराया जाए, तो प्रत्येक बालक एक महान् पुरुष बन सकता है।

—चतुरसेन शास्त्री

आज हमारे पास सबके लिए तो समय है, मगर बच्चों के लिए नहीं। जिंदगी में बढ़ती भागदौड़, संयुक्त परिवारों का क्षरण तथा घर में मौजूद व्यस्तताओं से बचपन प्रभावित हुआ है। इसलिए संपूर्ण सुख शांति के लिए हमें बच्चों के मनोविज्ञान को स्वीकृति देनी होगी, उनकी परवाह करनी होगी, ताकि बड़े होकर वे एक व्यवहार कुशल व सफल व्यक्ति साबित हों।

पहली पाठशाला घर

अब बड़े व विशाल परिवारों की जगह छोटे व लघु परिवारों ने ले ली है। परिवारों के छोटे होने से जहां कई रिश्ते प्रायः खत्म हो गए हैं, वहीं बहुत से रिश्तों में परिवर्तन भी आ गया है। अब परिवार का मतलब है, मम्मी-पापा

और बच्चे। आज बच्चों की परवाह की सही परवरिश की जरूरत पैदा हो गई है। उन पर देखरेख के, मार्गदर्शन के, प्यार-स्नेह के अनेक सेतु आज स्वार्थ की गंगा में डूब चुके हैं।

बचपन आदमी के व्यक्तित्व की नींव की पहली ईंट है। इसी ईंट पर ईंट दर ईंट से व्यक्ति के जीवन की शानदार इमारत खड़ी होती है। नींव जितनी मजबूत होगी, इमारत उतनी ही खूबसूरत व मजबूत होगी। बच्चे के विकास का समूचा क्रम घर से ही शुरू होता है।

बच्चे बेहद संवेदनशील होते हैं। समाज में बहुत कम लोग ऐसे हैं, जो बच्चों के मनोविज्ञान को समझते हुए उनसे वैसा व्यवहार करते हैं। यहां यह तथ्य समझ लेना जरूरी है कि बच्चों का मन कच्ची मिट्टी की भांति होता है। उस पर बाल्यावस्था में जो छाप अंकित हो जाती है, वह जीवनभर नहीं मिटती। अब तो मनोवैज्ञानिक भी इस बात पर सहमत हैं कि आठ वर्ष तक बच्चे में जो आदतें पैदा होती हैं, उनकी 90 फीसदी आदतें शेष जीवनभर व्यक्ति के साथ रहती हैं।

बच्चों का स्वभाव समझें

बच्चों का स्वभाव 'नकलची' होता है। इसलिए दंपतियों को चाहिए कि वो जाने-अनजाने ऐसा कोई कार्य न करें, जिसका बालमन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े। जन्म के कुछ समय बाद से ही बच्चा मूकदर्शक बन जाता है। वह लोगों को, जानवरों को, प्रकाश व अंधकार को समझने लगता है।

बच्चों पर बाल्यकाल से ही विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। इससे माता-पिता को बच्चों की रुचियों, स्वभावों में रुचि लेकर उसे जानने व समझने का प्रयास करना चाहिए।

कुछ माताएं बच्चे को जन्म देने के बाद अपने कर्तव्यों की इतिश्री समझ लेती हैं। इस कारण बच्चे को वे नर्सरी अथवा किसी शिशु विहार, बाल विहार जैसे स्थानों पर छोड़ देती हैं और यह समझती हैं कि बच्चे का विकास इन स्थानों पर समुचित हो सकेगा। यह कोरी नासमझी है, जबकि बच्चे को संस्कारवान तथा एक आदर्श नागरिक बनाने का दायित्व बच्चे को जन्म देने के प्रसव परिश्रम से कई गुना अधिक है।

किशोरावस्था में मित्र बनें

किशोरावस्था में बच्चों को माता-पिता की ओर से काफी संयत, लेकिन अधिक मित्रतापूर्ण व्यवहार की अपेक्षा होती है। उम्र का यह वह नाजुक पड़ाव होता है, जब जरा-सी 'चूक' उनके जीवन भर के लिए 'भारी' साबित हो सकती है। इस अवस्था में स्कूल कालेज के दोस्तों का उन्मुक्त व्यवहार, माता-पिता से छिपाकर काम करने का बेजा दबाव, विपरीत लिंग के प्रति आकर्षण बेहद स्वाभाविक प्रवृत्तियां हैं। ऐसे में उनके साथ विश्वास व अपनत्व का रिश्ता कायम करें, ताकि उन्हें, कुछ 'छिपाने' या 'गलत' करने की जरूरत ही महसूस न हो सके।

वर्तमान पीढ़ी के बच्चे ताऊ, चाचा, बुआ, मामा, दादा, दादी, मौसी आदि रिश्तों से अनजान होते जा रहे हैं। इससे बच्चे सामाजिक पक्ष की जानकारियों से अछूते रह जाते हैं। इसके लिए माता-पिता को चाहिए कि वे बच्चों के इस अधूरेपन को भरें।

यह भी ध्यान रखें

- बच्चों के लिए समय निकालें तथा उनके क्रियाकलापों पर क्रोधित होने तथा झल्लाने की बजाय संयम से समझाएं।
- उनकी समस्याओं, जरूरतों, परेशानियों को समझने तथा उन्हें हल करने की कोशिश करें।
- किशोर बच्चों के दोस्तों के बारे में जानें। बच्चों को अपने दोस्तों-सहेलियों को घर बुलाने और स्वस्थ मित्रता रखने के लिए प्रेरित करें।
- किशोरावस्था में होने वाले शारीरिक व मानसिक परिवर्तनों के विषय में बच्चों को स्वयं जानकारी दें।

अध्याय 28

चरित्र का ख्याल रखें

कोई भी व्यक्ति स्वप्न देख-देखकर चरित्रवान नहीं बन सकता। चरित्र का निर्माण तो अपने आपको गढ़-गढ़कर, ढाल-ढालकर करना होता है। कर्तव्य के प्रति निष्ठा, संयम और सदाचार के प्रति श्रद्धा, सत्य के प्रति प्रेम, ज्ञान के प्रति एक जिज्ञासा और मानवता के उत्कर्ष के प्रति दृढ़ आस्था ही महान् चरित्र निर्माण के मुख्य आधार हैं।

—भगवती प्रसाद वाजपेयी

चरित्र व्यक्तित्व विकास की संजीवनी है। यह व्यक्तित्व के लिए जितना सशक्त आधार है, उतना ही नाजुक भी। चारित्रिक विशेषताओं के कारण ही दुनिया में अनेक लोग बुलंदियों को छू सके हैं। जबकि हर तरह से समर्थ राजा-महाराजाओं को चारित्रिक पतन के कारण विनाश व भयंकर तबाही का मुंह देखना पड़ा। रावण इसका प्रमुख उदाहरण है।

चरित्र एक अमूल्य संपदा

चरित्र मनुष्य जीवन की सर्वाधिक अमूल्य संपदा है। मानव जीवन की एक यही विशेषता उसे धरती पर मौजूद अन्य जीवधारियों से पृथक करके विशिष्ट बनाती है। महात्मा गांधी का कहना था कि मनुष्य की महानता उसके कपड़ों से नहीं, अपितु उसके चरित्र से आंकी जाती है।

प्रख्यात शायर दाग़ ने चरित्र की बाबत अपने विचार कुछ इस तरह से पेश किए –

संभलकर जरा पांव रखिए जमीं पर,
अगर चाल बिगड़ी तो बिगड़ा चलन भी।

हर्बर्ट स्पेंसर की मान्यता कि चरित्र दो वस्तुओं से मिलकर बनता है– आपकी विचारधारा और आपके समय बिताने के ढंग से। एक प्राचीन सूक्ति है–

If Wealth is lost, Nothing is Lost,
If Health is lost, Something is lost,
If Character is lost, Everything is lost.

यदि आपकी धनसंपदा का क्षय हो जाता है, तो एक प्रकार से आपका कुछ भी क्षय नहीं होता। यदि आपका स्वास्थ्य नष्ट हो गया है, तो आपकी थोड़ी सी हानि हुई है। यदि आपका चरित्र नष्ट, भ्रष्ट हो गया, तो आपका सब कुछ बर्बाद हो गया।

सामान्यतौर पर चरित्र का अभिप्राय स्त्री-पुरुष विषयक संबंधों या यौन व्यवहार संबंधी कार्यकलापों से लगाया जाता है। परन्तु यह तो आचरण का बेहद संकीर्ण रूप है। किसी भी व्यक्ति की आचरणगत विशेषताएं वस्तुतः समस्त व्यक्तित्व को मनुष्य के समग्रशील स्वभाव को परिलक्षित करती है।

आचरण के मामले में पवित्रता बरतने वाले लोग मन, वचन एवं कर्म से श्रेष्ठता का ध्यान करते हैं। यानी, मन, वाणी और कर्म के समन्वित परिपालन से चरित्र की पवित्रता को बनाए रखा जा सकता है, क्योंकि यदि इनमें दुर्भावनाओं का समावेश होगा, तो इससे हमारे चरित्र पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।

फिल्मों में बढ़ती हिंसा व सैक्स तथा उपग्रह चैनलों के अंधाधुंध विस्तार ने भारत जैसे देश की सामाजिक संरचना को गहरे अर्थों में प्रभावित किया है। इनके कार्यक्रमों में प्रदर्शित उन्मुक्त सैक्स, हिंसा व्यभिचार, वर्जित संबंधों का प्रचलन, व्यसनों का महिमा मंडन युवा पीढ़ी हेतु नासूर सरीखे है।

सर्वोत्कृष्ट बनने का यत्न कीजिए

धन संपदा के साथ-साथ प्रतिष्ठा व सम्मान अर्जित कर लेना व्यक्तित्व में चार चांद लगा लेना है। जीवन निकृष्टता का भाव नहीं, यह तो सर्वोत्कृष्टता की खुशबू है, जिसे चहुं ओर फैलाते चलना चाहिए। आपकी सफलता की सुबास, आपको अपने प्राणों की गहराई से ही आएगी।

किसी भी आलीशान इमारत की वास्तविक मजबूती ऊपरी छोर पर दिखने वाले खूबसूरत कंगूरे से नहीं है, वरन् वह सुदृढ़ भाग है, जो जमीन में नींव के रूप में गहरा धंसा है। मनुष्य के व्यक्तित्व का सशक्त आधार स्तंभ उसकी चारित्रिक सुदृढ़ता है। चरित्र बल से व्यक्ति के बहुत सारे दुर्गुणों पर पर्दा पड़ जाता है। इसी चरित्ररूपी धन को अन्य सभी धनों से श्रेष्ठ माना गया है।

यह भी देखा गया है कि कुशाग्रबुद्धि और प्रतिभाशाली होने के बावजूद चरित्रहीन विद्यार्थी कुछ ही वर्षों बाद अवनति करते हैं, जबकि सच्चरित्र विद्यार्थी, जो प्रतिभाहीन, सुस्त और मंद बुद्धि जैसे दिखाई देते हैं, अपने चरित्रबल से उन्नति को प्राप्त होते हैं और जीवन में बड़े पद तथा यश अर्जित करते हैं।

सुचरित्रता माणिक, मोती हीरा, सोना, राजसिंहासन इत्यादि से भी महंगी है। जिसके पास इसकी दौलत है, वही सबसे अमीर है और इसे अर्जित करने में जो परिश्रम होता है, वह संसार का सर्वोत्तम परिश्रम है।

हृदय की रश्मियां

सच्चरित्रता, सहिष्णुता, सहानुभूति, उपकार, उदारता, कर्तव्यनिष्ठा, ईमानदारी, सत्यता ये सब हृदय की रश्मियां हैं, जो बाह्य जगत में फैलना चाहती हैं। इन्हें व्यक्तिगत मानो अथवा संयुक्त, परन्तु संसार में ये सबसे ऊपर हैं, सर्वोत्कृष्ट हैं।

यह भी ध्यान रखें

- प्रेम की पहली सीढ़ी विश्वास है।
- अपने हृदय की भावनाओं, क्षमा, दया और प्रेम से अपने चेहरे को जितना सुंदर बना सकते हो, उतना किसी अन्य उपचार से नहीं।
- आत्म-सम्मान, आत्मज्ञान, आत्मसंयम – ये तीनों व्यक्ति में पूर्ण शक्ति को प्राप्त कराते हैं।
- चरित्र कोई ऐसी वस्तु नहीं, जो शून्य अथवा एकांत में विकसित होती हो और सफलता कोई ऐसा फल नहीं, जो पेड़ पर लटकता हो अथवा मदारी के आम की तरह हाथ पर उगता हो।

अध्याय.29

व्यसनों से दूर रहें

मनुष्य कितना ही बलवान तथा ज्ञानी हो, यदि वह आचरण में शुद्ध नहीं है, तो समाज के लिए उसकी उपस्थिति आशंका और भय की चीज है। आचरण की शुद्धता पहली चीज है, जिसकी सामाजिक जीवन में जरूरत पड़ती है। इसके लिए आत्मिक बल चाहिए, स्वावलम्बन चाहिए।

—वीरेंद्र वर्मा

व्यसन न केवल व्यक्ति की सफलता के लिए घातक हैं, अपितु बदनामी व अकुशलता के भी कारण हैं, जो मनुष्य सफलता अर्जित करना चाहता है अथवा यह चाहता है कि उसके निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति हो, उसे व्यसनों को अलविदा कहने के अलावा कोई चारा नहीं।

सच्चे बनें, अच्छे बनें

जीवन में उपलब्धियां, कामयाबी अर्जित करने का स्वप्न रखने वाले व्यक्तियों को चाहिए कि वे अच्छे बनें, अपने घर-परिवार, समाज के प्रति सच्चे बनें। इसके लिए सबसे उत्तम उपलब्धि अपनी व्यसन-वासनाओं पर अधिकार कर लेना है। जब तक हम अपनी वासनाओं को काबू में नहीं कर पाते, तब तक हम संपूर्ण मनुष्य कहलाने के अधिकारी नहीं। हम बाहरी शत्रुओं और विरोधियों को परास्त करने के लिए तो दिन-रात उपाय खोजते रहते हैं,

परन्तु जो शत्रु हमारे भीतर ही बैठे हमारी जडें काटने में लगे हैं, उनकी ओर हमारा ध्यान तनिक भी नहीं जाता।

जीवन को सफल बनाने के लिए जितना स्वावलंबन आवश्यक है, उतना ही आत्मसंयम भी। मनुष्य की इंद्रियां उसे दिन-रात अपने-अपने विषयों की ओर खींचती रहती हैं। परन्तु हमें चाहिए कि इन्द्रियों के आगोश में लिपटने के बजाय हम विवेक का प्रयोग कर उनसे बचें।

व्यक्तियों में दो प्रकार की प्रवृत्तियां दिखाई देती हैं। पहली, सच्चाई, भलाई और उन्नति की ओर उसे खींचती रहती है, जिनका केंद्र अंतःकरण होता है। दूसरी प्रवृत्ति, पाशविक है, जिसका संबंध इन्द्रियों से होता है। ये दोनों प्रवृत्तियां परस्पर विरुद्ध होती हैं। जिस प्रवृत्ति की प्रधानता हो जाती है, वही मनुष्य पर अपना आधिपत्य कायम कर लेती है, परन्तु इससे दूसरी प्रवृत्ति समाप्त नहीं हो जाती। यदि हम इन्द्रियों के वशीभूत होकर बीड़ी, सिगरेट, शराब, गांजा, अफीम, परस्त्रीगमन आदि क्रियाओं में लिप्त हो जाते हैं, तो भी श्रेष्ठ प्रवृत्तियों की अंतस् से बराबर पुकार उठती रहती है कि यह उचित नहीं है, इससे बचो।

मादक द्रव्यों से बचें

मादक द्रव्यों में आज के युवाओं की गहरी दिलचस्पी होती जा रही है। इनके आकर्षक विज्ञापन युवा वर्ग को तेजी से आकर्षित कर रहे हैं। इतना ही नहीं, इनसे ही समाज के रहन-सहन के स्तर की गणना की जा रही है।

इसी अंधानुकरण की प्रवृत्ति ने समाज को शराबखानों और वेश्यालयों की ओर उन्मुख कर दिया है, इसलिए ऐसे व्यसनों से बचें।

यह भी ध्यान रखें

- पाप का पौधा मन में उपजता, मस्तिष्क में बढ़ता और शरीर में फलता-फूलता है।
- व्यसन व्यक्ति को नाकारा कर देता है।
- विलासी को कल का ध्यान नहीं होता।
- मनुष्य विकारों का पुतला है।

●●●

शिक्षा, खेल एवं अन्य क्षेत्रों में छिपी क्षमता को पहचान कर

बच्चों की प्रतिभा कैसे उभारें

Improve Your Children's Talents to the Full

–चुन्नीलाल सलूजा

- क्या आप भी इसी तरह बच्चों को सम्पूर्ण प्रतिभा सम्पन्न बनाने के लिए जागरूक हैं?
- क्या आप यह भी जानना चाहते हैं कि बच्चों को सर्वगुण सम्पन्न कैसे बनाया जा सकता है?
- क्या आप उन्हें शिक्षा, खेल तथा अन्य क्षेत्रों में निरंतर हिस्सेदारी दिला रहे हैं?
- क्या आप उनके अंदर छिपी हुई अपार एवं ठोस क्षमताओं को खोज निकालने में सफल हो पाए हैं?
- क्या आप उनमें चुस्ती, स्फूर्ति, बुद्धिमानी, सच्चरित्रता, शिष्टाचार, व्यवहार कुशलता एवं संवेदनशीलता की हरियाली उगाना चाहते हैं?
- क्या आप अपने बच्चों को सबसे अलग, सबसे ऊंचा, सबसे स्वस्थ और सुंदर देखना चाहते हैं?

तो आइए, आकर्षक भविष्य के निर्माण में आरंभ से जुट जाइए, फिर देखिए कितनी जल्दी होते हैं आपके सपने साकार।

विख्यात शिक्षाशास्त्री **चुन्नीलाल सलूजा** की लेखनी से उपजी **बच्चों की प्रतिभा कैसे उभारें** एक ऐसी पुस्तक है, जो हर पग पर आपकी हर समस्या का समाधान करेगी और आपके बच्चों को असाधारण प्रतिभाशाली बनाने में भरपूर सहायक सिद्ध होगी। अपनी संतान की बेहतरी के लिए इस पुस्तक को अपनाएं।

डिमाई आकार • पृष्ठ: 152 • मूल्य: 48/- • डाकखर्च: 8/-

कामकाजी महिलाएं

समस्याएं एवं समाधान

-शीला सलूजा एवं चुन्नी लाल सलूजा

- आज की महंगी समाज व्यवस्था में प्रत्येक घर-परिवार को मजबूत आर्थिक आधार की बड़ी आवश्यकता रहने के कारण अब महिलाएं पूर्वापेक्षा अधिक संख्या में घर की चारदीवारी से बाहर निकल कर अर्थोपार्जन के लिए कर्म-क्षेत्र से निरंतर जुड़ती जा रही हैं। आज इनकी संख्या एक करोड़ से भी अधिक है। इनकी गृहस्थी और दांपत्य जीवन का कार्य-क्षेत्र के साथ सामंजस्य अति आवश्यक है, ताकि तनाव रहित रहकर सुचारु रूप से दायित्वों का निर्वाह कर सकें।

- पुरुष-प्रधान समाज में जटिल कार्य-स्थितियों में ये बेहतर सुरक्षा पा सकें और संपूर्ण संरक्षण के साथ अधिकारों को प्राप्त करने में सक्षम हो सकें। छल-कपट, उद्दंडता, स्वार्थ और आपाधापी वाली परिस्थितियों में यौन उत्पीड़न और दूसरे दबावों से संघर्ष करते हुए मर्यादित व्यवहार कर सकें। प्रख्यात लेखिका **शीला सलूजा एवं चुन्नीलाल सलूजा** ने ऐसी महिलाओं की समस्याओं और उनके समाधान को केंद्र में रखकर लिखी है यह पुस्तक **कामकाजी महिलाएं।**

डिमाई आकार • पृष्ठ: 160 • मूल्य: 48/- • डाकखर्च: 10/-

सफल वक्ता
एवं वाक्-प्रवीण कैसे बनें

-सुरेन्द्र डोगरा 'निर्दोष'

- आज की समूची व्यवस्था अर्थ प्रधान हो गई है। इसीलिए व्यक्ति के गुण और व्यवहार भी उसी दृष्टि से जांचे-परखे जाते हैं। वाक्-कला में भी अब प्रोफ़ेशनलिज्म को महत्व दिया जाने लगा है। प्रतिदिन के सामाजिक सम्बंधों के अतिरिक्त बिज़नेस मैनेजमेंट, प्रशासन, उद्योग-व्यापार, मार्केटिंग, प्रोफ़ेशन, राजनय और जन-सम्पर्क हो या सत्र, समारोह, सेमिनार, संगोष्ठी, क्लास या मीटिंग, अपनी बात को नपे-तुले, ठोस एवं प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करना अनिवार्य हो गया है। अपनी बात को मनवाने में आप जितने भी सक्षम होंगे, उतने ही सफल वक्ता कहलाएंगे। वर्तमान परिस्थितियों में ऐसे ही वक्ता की तलाश बनी रहती है।
- आज दुनिया के शिखर वक्ताओं में विवेकानंद, ओशो, अटल बिहारी वाजपेयी, चर्चिल, लिंकन, केनेडी, टैगोर, टाटा, देशबंधु, फ़ोर्ड जैसे महान् लोगों की गिनती करते हैं। इनका नाम इतना बड़ा इसलिए हुआ कि इनके पास ज्ञान का अपार भंडार तो रहा ही, अपनी बात को कहने का रोचक और आकर्षक ढंग भी रहा। तभी तो लाखों-लाख लोग इनके दीवाने बन गए।
- इधर के चर्चित युवा लेखक **सुरेन्द्र डोगरा 'निर्दोष'** ने श्रम से लिखी है यह पुस्तक **सफल वक्ता एवं वाक्-प्रवीण कैसे बनें**। इसमें उन्होंने वाक्-कला की तमाम तकनीकों, विधियों और प्रयोगों को बड़े ही रोचक और व्यावहारिक ढंग से समझाया है। आप इन्हें सीख कर निश्चय ही एक दिन सफल वक्ता बन जाएंगे।

डिमाई आकार • पृष्ठ: 136 • मूल्य: 48/- • डाकखर्च: 10/-

मानसिक दबाव, चिन्ता व तनाव से मुक्त होने के उपाय

सदा खुश कैसे रहें

शांत, सुखी एवं समृद्ध जीवन जीने के 115 व्यावहारिक उपाय सुझाने वाली आत्म-विकास की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक

लेखक:
एम.के. गुप्ता

(अंग्रेजी में भी उपलब्ध)

❑ **लोकप्रिय लेखक एम. के. गुप्ता द्वारा रचित इस पुस्तक में पाएंगे आप:** • एकाग्र बनें और सकारात्मक विचारों को व्यवस्थित करें • समस्याओं एवं कठिनाइयों से न घबराएं • एकान्त में मौन रहकर आत्मनिरीक्षण करें • भय, चिंता और हीन भावना को दूर भगाएं • समय बरबाद न करें • आत्म-संतोषी बनें, दूसरों को संतुष्ट करें • कमज़ोरियों को फटकने न दें • कर्म करें, नित नए परिवर्तनों को अपनाएं • टालने की आदत न डालें • छोटे-छोटे कामों पर खास ध्यान दें • निर्णय और चुनाव के समय अस्थिर न रहें • दूसरों से आशाएं न पालें • अच्छे लोगों की संगति करें • बंधनों को तोड़ें • सात्विक भोजन, नियमित व्यायाम करें • आराम और अच्छी नींद की आदत डालें • धैर्य, सहनशीलता एवं ईमानदारी के साथ रहें • बेझिझक सहायता लें • प्रत्येक क्षण को आनंद के साथ बिताएं • हर किसी से सीखें, सबको सिखाएं • विनम्र, शिष्ट और व्यावहारिक बनें।

...ये और ऐसे ही 115 उपाय हैं, जो सही मायनों में आपको सदा खुश रखने में सक्षम होंगे।

डिमाई आकार • पृष्ठ: 155 • मूल्य: 48/- प्रत्येक
डाकखर्च: 8/- प्रत्येक

विश्व की सर्वाधिक चर्चित पुस्तक

जीवन में सफल होने के उपाय

–स्वेट मार्डेन

- **स्वेट मार्डेन** जैसे विश्वविख्यात विचारक ने 'व्यक्तिगत सफलता पाने का विज्ञान' (Science of Personal Achievement) का विकास किया। इसके व्यावहारिक, मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक नियमों का अध्ययन कर स्वास्थ्य, सुख तथा सफलता पाने के रहस्यों का पता लगाया। उनकी इन प्रेरक पुस्तकों को पढ़कर दुनिया-भर के करोड़ों निराश एवं हताश लोगों ने अपने जीवन को सुखी, समृद्ध और सफल बनाया।
- **जीवन में सफल होने के उपाय** स्वेट मार्डेन की बहुचर्चित पुस्तक To Succeed in Life का हिन्दी रूपान्तर है। इसमें अपने में छिपी शक्तियों को पहचानने, तनाव और निराशा से मुक्त होने, भय को दूर भगाने और कर्म का आदर करने के उपाय सुझाए गए हैं। यह पुस्तक प्रेरणा ही नहीं देती, बल्कि प्रोत्साहित भी करती है तथा आत्मविश्वास से भरकर व्यक्ति को सुखद अनुभूति कराती है। यह वह मुख्य हथियार है, जिससे बाधाएं हटाकर अपने लिए ऐसा ठोस रास्ता चुना जाता है, जो हरेक को उन्नति के शिखर पर ले जाता है।
- सफलता की ओर पहला कदम उठाना, मानसिक तनाव को चुनौती देना, अमृतत्व की ओर जाने का रास्ता, कष्ट और पीड़ाओं का खुलासा, सदाबहार स्वास्थ्य का रहस्य, जीवन को आनंद-मंगल से परिपूर्ण बनाने के तौर-तरीके, उदासी छोड़ने और उत्साह बढ़ाने की विधियां, स्वस्थ अहम् का विकास करने के उपायों के साथ-साथ जो बीत गया, उसे भूल जाने की ठोस प्रेरणा जैसी विशेषताएं इस पुस्तक को अधिक व्यावहारिक एवं उपयोगी बना देती हैं।

डिमाई आकार • पृष्ठ: 144 • मूल्य: 48/- • डाकखर्च: 8/-

गुस्सा छोड़ो सुख से जिओ

क्रोध के कारण, निदान और प्रयोग

-सुरेन्द्रनाथ सक्सेना

हम क्यों गुस्से के सामने अपने को विवश पाते हैं? बार-बार प्रायश्चित्त करने के बाद भी हम क्यों दोहराते हैं इस पाप कर्म को? इसके पीछे शायद गुस्से के बारे में हमारी समझ का न होना ही प्रमुख कारण है। इस पुस्तक में इसी गुस्से का खुलासा किया गया है।

- इसमें गुस्से की विभीषिका, उसके रूप, उसके कारणों आदि की तो सविस्तृत चर्चा है ही, इस बात का भी विश्लेषण किया गया है कि इस ऊर्जा को कैसे हम रचनात्मक व सकारात्मक दिशा दें।

- इतना ही नहीं, पुस्तक में गुस्से से भरे व्यक्ति का सामना करने का भी जिक्र है और सबसे बड़ी विशेषता यह है कि गुस्से के सकारात्मक प्रयोगों को भी समझाने की कोशिश की गई है।

- इस तरह यह गुस्से पर समग्र दृष्टि डालती हुई हमें समझाने का प्रयास करती है कि यदि थोड़ी-सी समझ से काम लिया जाए, तो यह ज़हर औषधि का रूप ले सकता है। इससे आप शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य ही नहीं प्राप्त कर सकते, बल्कि औरों को भी सुखी व प्रसन्न होने में सहयोग दे सकते हैं।

डिमाई आकार • पृष्ठ: 96 • मूल्य: 40/- • डाकखर्च: 10/-

धैर्य एवं सहनशीलता

101 ways to develop patience

–पवित्र कुमार शर्मा

- क्या आप भी धैर्य एवं सहनशीलता का वरण कर जीवन में सबसे सफल एवं आदर्श व्यक्ति बनाना चाहते हैं?
- तो आइए, आज की जटिल, भयावह और बदहवास परिस्थितियों में भी हंसते-हंसते जीना सीखें।
- हर कष्ट, हर विपत्ति, हर तरह की अस्तव्यस्तता के प्रहारों को कोमल फूलों की वर्षा की तरह लें।
- सागर की तरह धीर, गंभीर और शांत बन जाएं।
- पाषाण की प्रतिमा की तरह सब चोटों को सहना सीखें।
- पर्वत की तरह आंधी, तूफ़ान और वर्षा में भी अडिग खड़े रहें।
- क्या आप में ऐसा बनाने की इच्छा शक्ति, साहस एवं आत्मविश्वास है?
- यदि है, तो सचमुच आप निश्चित रूप से सर्वगुण सम्पन्न बन जाएंगे और सहनशीलता आपकी रग-रग में रच-बस जाएगी।

क्या आपको मालूम है कि धैर्य एवं सहनशीलता ही वह दिशानिर्देशक यंत्र है, जो उन्नति का सही रास्ता दिखाता है? चिंतनशील रचनाकार **पवित्र कुमार शर्मा** ने रची है आपके लिए **धैर्य एवं सहनशीलता** जैसी यह अनूठी पुस्तक, जिसमें बताए गए 101 उपाय आपको सफलता के सर्वोच्च लक्ष्य की तरफ लेते चले जाएंगे।

डिमाई आकार • पृष्ठ: 152 • मूल्य: 48/- *• डाकखर्च:* 8/-

आनंद और उल्लास के साथ
सुखमय जीवन जीने का रास्ता

कैसे जिएं चिंतामुक्त जीवन

–डॉ. सरूप सिंह मरवाहा

प्रसिद्ध चिकित्सक तथा मनोरोगों के विशेषज्ञ **डॉ. सरूप सिंह मरवाहा** की पुस्तक **कैसे जिएं चिंतामुक्त जीवन** उनके लगभग 20 वर्ष के व्यावहारिक अनुभवों पर आधारित है। आज के भौतिकता से भरे जीवन में जबरदस्त होड़ और प्रतिस्पर्धा चल रही है। रोजमर्रा के तेज रफ्तार जीवन (फास्ट लाइफ़) ने पंजे गड़ा दिए हैं। आदमी बहुत अधिक व्यस्त हो गया है। इस सब के कारण वह भारी चिंताओं से दुखी रहने लगा है, जो उसे मनोरोगी बना देती हैं।

इन सबसे उसे घर-परिवार और बच्चों की चिंता, अपने और अपने से जुड़े लोगों के भविष्य की चिंता, समाज में अपनी प्रतिष्ठा और पहचान की चिंता, काम-धंधे, रोजगार और नौकरी की चिंता, सुखद जीवन के लिए आमदनी बढ़ाने की चिंता, रोग और शोक की चिंता निरंतर सताती रहती है और वह मानसिक रूप से अपने को रोगी पाने लगता है।

डॉ. मरवाहा ने अपनी इस पुस्तक में इन तमाम चिंताओं से छुटकारा पाने के स्वर्णिम उपाय बताए हैं। इन पर अमल करके आप अपने जीवन को आनंद और उल्लास से भरपूर बनाकर उन्नति के शिखर पर पहुंच सकते हैं।

डिमाई आकार • पृष्ठ: 144 • मूल्य: 48/- • डाकखर्च: 8/-